ज्ञान सरोवर

भाग १

शिक्षा मंत्रालय
भारत सरकार
१९५५

यह पुस्तक
शिक्षा मंत्रालय,
भारत सरकार के लिए
मक्तबा जामिग्रा लि०
जामिग्रा नगर, देहली
ने तैयार की ।

पहला संस्करण
१०,०००

१५ ग्रगस्त, १९५५

मूल्य दो रुपये

मुद्रक :
इंडिया प्रिंट
दिल्ली ।

विषय-सूची

देवी देवताओं की कथाएँ

विश्व-साहित्य

लोक साहित्य

जीवजन्तु और पौधे

कृषि विज्ञान

रोग पर विजय

विज्ञान की बातें

इंजिनियरी के चमत्कार

घरेलू उद्योग धन्धे

सौंदर्य की खोज में

राजनीति और अर्थशास्त्र

खेल कूद

भूमिका

देस में हमारी अपनी सरकार के बनते ही उसका ध्यान जिन जिन कामों की तरफ गया उनमें से एक यह था कि नए पढ़े हुए और कम पढ़े लोगों के लिए ऐसी किताबें लिखाई जाएं जिन्हें वे आसानी से पढ़ और समझ सकें और उनसे लाभ उठा सकें। हमारे देस में हज़ारों बरस से बिना किताबों के पढ़ाई का रिवाज रहा है। पर अब कई कारणों से उस तरह की पढ़ाई उतना काम नहीं दे सकती जितना पहले देती थी। लिखी हुई किताबों की मांग और उनका प्रभाव दिन दिन बढ़ता जा रहा है। इसलिए आम लोगों के लिए ठीक तरह की किताबों का तैयार किया जाना और भी ज़रूरी हो गया है।

नई सरकार की इस नीति ने कि देस के सब लोगों को पढ़ना लिखना सिखाया जाए, इस मांग को और भी बढ़ा दिया है कि जहां तक हो जल्दी इस तरह की किताबें तैयार करा कर लोगों के हाथ में दी जाएँ। पढ़े लिखे लोगों की गिनती देस में बढ़ती जा रही है। अगर उन्हें अच्छी किताबें नहीं मिलेंगी तो पढ़ाई लिखाई के फैलने से देस का बल बढ़ने की जगह हमारी कठिनाइयां बढ़ सकती हैं। इन नई किताबों के लिखाने में इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि जहां उन्हें पढ़ कर लोगों को अपनी समाजी और माली हालत सुधारने में मदद मिले, उनमें बुद्धि और साइंस की कदर बढ़े और उन में वैज्ञानिक मनोवृत्ति का विकास हो, वहाँ ऐसा भी न हो कि भारत की पुरानी सभ्यता में जो अच्छी अच्छी बातें हैं उन्हें वे भूल जाएँ।

इस मांग को पूरा करने के लिए भारत सरकार ने जन साधारण के लिए 'ज्ञान-सरोवर' के नाम से एक विश्वकोश लिखाने की व्यवस्था की है। इस विश्वकोश की तैयारी में यह ध्यान रक्खा गया है कि आम लोग इसे पढ़ें तो आजकल की

दुनिया में जो नए नए माली और राजकाजी विचार पैदा हो रहे हैं उनको समझने लगें और साइंस और तकनीक में जो दिन दिन बढ़ती हो रही है उसे भी जान लें। इस तरह अपनी जानकारी बढ़ा कर हमारे देस के लोग नए भारत के और अच्छे नागरिक बन सकेंगे। इन सब बातों को इस विश्वकोश में ऐसी बोली में बताने की चेष्टा की जाएगी जो आम लोगों की बोली है और जिसे सब सहल में समझ सकते हैं। हमें आशा है कि यह विश्वकोश इन बातों को पूरा करेगा और हमारे देस के लोगों को इस तरह की बातें बताएगा जिनसे वे अपनी पुरानी सभ्यता की सच्चाइयों को पूरी तरह समझते हुए, आजकल की साइंस और साइंसी ढंग की कदर करने लगें।

—हुमायूँ कबीर
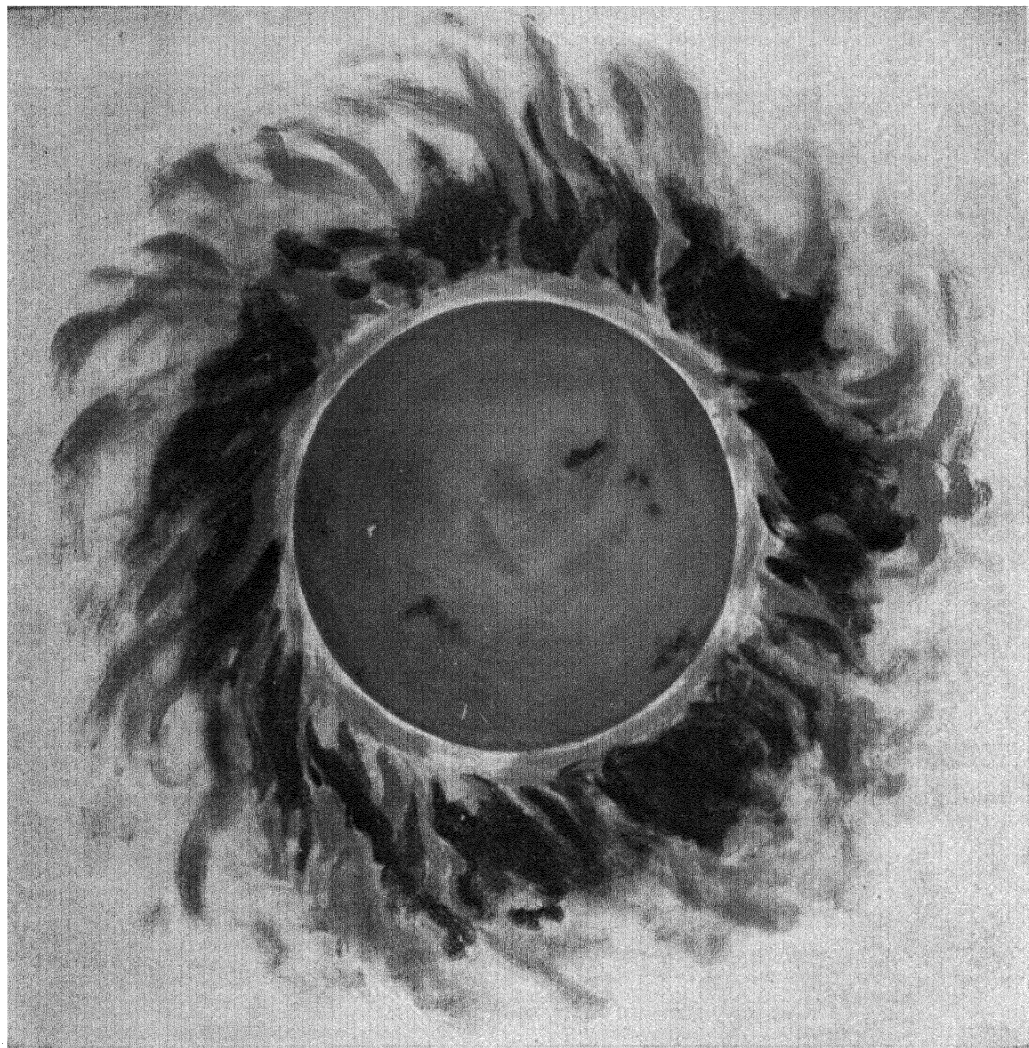
सूर्य—आग का दहकता हुआ गोला

*
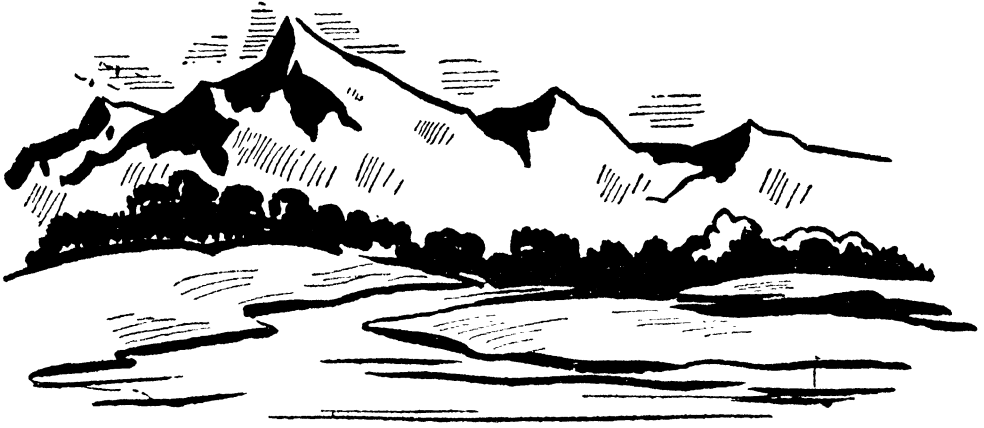
१

हमारी पृथ्वी

यह पृथ्वी जिस पर हम रहते हैं, एक बहुत बड़ी गेंद है। इस पर बड़े-बड़े पहाड़, नदियाँ, समुद्र, तरह तरह के पेड़-पौधे और पशु पाए जाते हैं। मगर इतनी बड़ी यह गेंद ब्रह्माण्ड में रेत के एक कण के समान है।

हमारी पृथ्वी के आस-पास करोड़ों नाचते-कूदते, जलते-उबलते सूर्य और दूसरे ग्रह हैं। इन्होंने अरबों वर्ष पहले जन्म लिया था। अब भी वे कुछ तो उसी रूप में और कुछ ठंडे होकर चक्कर लगा रहे हैं। उस सूर्य के सामने भी जो प्रतिदिन हमें दर्शन देता है, हमारी पृथ्वी एक छोटी-सी चीज है। यह अच्छा है कि हमारी पृथ्वी सूर्य से करोड़ों मील दूर है। यदि यह कुछ कम दूर होती, तो उसके अग्नि-भंवर में खिचकर इस तरह भस्म हो

जाती जैसे भट्टी में एक तिनका।

इस ब्रह्माण्ड में बहुत से सूर्य ऐसे हैं, जो हमारे सूर्य से भी लाखों गुना बड़े हैं। इन बड़े सूर्यों के अलावा आग के दहकते हुए बड़े-बड़े बादल भी हैं। यदि हमारी पृथ्वी को इनमें से किसी एक बादल में डाल दिया जाए, तो ऐसा लगेगा जैसे समुद्र में एक मटर का दाना पड़ा हो। हम यह ठीक-ठीक सोच भी नहीं सकते कि ब्रह्माण्ड कितना बड़ा है और उसमें कैसी-कैसी अनोखी चीजें हैं।

सूर्य और उसका परिवार

सूर्य हमें अपनी पृथ्वी से बहुत दूर मालूम होता है, मगर उसके प्रकाश को हम तक पहुँचने में कुछ मिनट ही लगते हैं। प्रकाश एक सेकेन्ड में १,८६,२८२ मील की चाल से चलता है। लेकिन बहुत से तारे ऐसे भी हैं जिनके प्रकाश को हम तक पहुँचने में सैकड़ों साल लग जाते हैं। अगर रात-दिन चलने वाली डाकगाड़ी से किसी एक तारे की यात्रा की जाए, तो भी उस तक पहुँचने में करोड़ों साल लग जाएंगे।

तनिक सोचिए तो, क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि यह पृथ्वी वृहस्पति, शुक्र, मंगल और दूसरे कई ग्रहों के साथ हजारों मील प्रति मिनट की चाल से सूर्य के चारों ओर चक्कर लगा रही है। फिर सूर्य का यह सारा परिवार तो उससे भी तेज चाल से खगोल में (जिसका कुछ ओर-छोर नहीं और जहाँ हवा भी नहीं है) चक्कर लगा रहा है।

अभी हमने सूर्य के परिवार की चर्चा की है। क्या सूर्य का भी कुटुम्ब हो सकता है ?

जिस तरह मुर्गी अपने बच्चों को लिए-लिए फिरती है, उसी प्रकार

सूर्य भी उन ग्रहों को जिन्हें उसने जन्म दिया है, अपने साथ-साथ लिए घूमता है। ये ग्रह उसके चारों ओर चक्कर लगाते रहते हैं। यही सूर्य का कुटुम्ब है। इसी को सौर-मण्डल कहते हैं।

सौर-मण्डल में सूर्य सब ग्रहों का पिता है। इसलिए हम पहले सूर्य के बारे में कुछ बातें बताएंगे।

सूर्य ने केवल हमारी पृथ्वी ही को पैदा नहीं किया, बल्कि धरती पर जो जिन्दगी है, वह भी उसी के कारण है।

सूर्य आग का दहकता हुआ गोला है। यह करोड़ों साल से रात-दिन अपने चारों ओर गर्मी और प्रकाश फेंक रहा है। क्या गर्मी के मौसम में आपने कभी दोपहर में सूर्य की गर्मी सही है? कैसी झुलसा देने वाली होती है। फिर भी सूर्य के प्रकाश और गर्मी के २,००,००,००,००० भाग में से केवल एक भाग पृथ्वी तक पहुँचता है।

सूर्य बहुत बड़ा है। अगर उसे दस लाख टुकड़ों में तोड़ दिया जाए, तो भी उसका हर टुकड़ा पृथ्वी से बड़ा होगा। वह इतना गरम है कि यदि हमारी पृथ्वी उतनी गरम हो जाए, तो पृथ्वी और इसकी सारी चीज़ें पिघलकर गैस बन जाएंगी और हवा हो जाएंगी।

सूर्य ने अपने कुटुम्ब को कैसे पैदा किया? इसका केवल अनुमान लगाया जा सकता है। ग्रहों के जन्म के बारे में बहुत से लोगों ने अटकलें लगाई हैं। पर आजकल सब मानते हैं कि पृथ्वी और दूसरे सभी ग्रह सूर्य से पैदा हुए।

हुआ यह कि करोड़ों वर्ष पहले सूर्य के कोई सन्तान न थी। वह बिना किसी ग्रह को साथ लिए आकाश में चक्कर लगा रहा था। इतने में

एक उससे भी बड़ा सूर्य घूमते-फिरते उसके पास आ निकला।

यदि यह बड़ा सूर्य हमारे सूर्य के और पास आ जाता, तो दोनों में बड़ी भयानक टक्कर हो जाती और हमारे सूर्य का तो काम ही तमाम हो जाता। लेकिन संयोग की बात, वह बड़ा सूर्य अधिक पास नहीं आया। दोनों सूर्यों में केवल खींच तान होकर रह गई। फिर भी जो ताक़तवर और बड़ा था, वह जीता। जो छोटा और कमज़ोर था, वह हार गया।

हमारे सूर्य की सतह से कुछ गैस एक बड़ी लहर के रूप में उठी और टूटकर सूर्य से इस तरह अलग हो गई जैसे दो बच्चों के झगड़े और खींच-तान में एक का कपड़ा फटकर अलग हो जाए। वह बड़ा सूर्य हमारे छोटे सूर्य का फटा कपड़ा, यानी वह गैस जो अलग हो गई थी, अपने साथ नहीं ले जा सका और उसे छोड़कर आगे बढ़ गया। यह गैस दोनों तरफ़ से खिचने के कारण सिगार की तरह लम्बी हो गई—सिरे पतले बीच का भाग मोटा। इसके बाद इस सिगार की तरह की गैस ने हमारे सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाना शुरू किया।

धीरे-धीरे यह गैस ठंडी होती गई और उसमें जगह-जगह गाँठें पड़ती गईं। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, ये गाँठें ठोस और अधिक ठंडी होती गईं। आख़िर में वे उन ग्रहों में बदल गईं जिन्हें हम सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाते देखते हैं। इन्हीं ग्रहों में से एक पृथ्वी भी है।
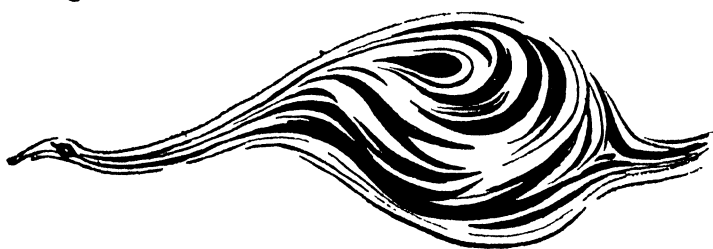
कहा जाता है कि पृथ्वी और दूसरे ग्रह सूर्य से पैदा हुए हैं। चित्र में दिखाया गया है कि जब एक अन्य बड़ा सूर्य हमारे सूर्य के पास से निकला, तो कुछ गैस एक बड़ी लहर के रूप में उठी और टूटकर अलग हो गई।

सूर्य और उसका पूरा कुटुम्ब एक ही तरह चक्कर लगाता है। उनकी चाल के नियम एक-से हैं। जहाँ तक हमें मालूम है, सबके सब एक ही प्रकार के पदार्थ से बने हैं। हो सकता है कि वे छोटे-बड़े, नये-पुराने हों, पर देखने में एक-से लगते हैं। ये सब सूर्य के चारों ओर घूमते रहते हैं।

सूर्य के बड़े-बड़े पुत्र-पुत्रियों की संख्या ९ है। इनमें से कुछ पृथ्वी से बड़े भी हैं। पर ये सब सूर्य से बहुत छोटे हैं।

पृथ्वी सूर्य के चारों ओर एक चक्कर ३६५¼ दिनों में पूरा करती है। हम इस समय को एक वर्ष कहते हैं। इसी प्रकार सब ग्रह अलग-अलग समय में सूर्य के चारों ओर अपना-अपना चक्कर पूरा करते हैं। इसलिए किसी ग्रह का साल छोटा होता है, किसी का बड़ा।

अन्य ग्रह सूर्य से कितने छोटे हैं

इस चित्र में दिखाया गया है कि यदि बड़े गोले को सूर्य मान लिया जाय तो अन्य ग्रह कितने छोटे होंगे। इस प्रकार मंगल, बुध, शुक्र और प्लूटो बिन्दु मात्र होंगे।

बुध और शुक्र दो ऐसे ग्रह हैं जो पृथ्वी के मुकाबले में सूर्य से अधिक नज़दीक हैं। बुध सूर्य के सबसे क़रीब है, फिर भी यह सूर्य से ३ करोड़ ६० लाख मील दूर है। यह सूर्य का एक चक्कर केवल ८८ दिनों में पूरा कर लेता है, यानी इसका साल केवल ८८ दिन का हुआ। इसके बाद शुक्र आता है जो सूर्य से ६ करोड़ ७० लाख मील दूर है। वह एक चक्कर २२५ दिनों में पूरा कर लेता है, यानी शुक्र का साल २२५ दिन का हुआ। तीसरा नम्बर पृथ्वी का है। यह सूर्य से ९ करोड़ ३० लाख मील दूर है और एक चक्कर ३६५¼ दिनों में पूरा करती है। मंगल, बृहस्पति,

शनि, यूरेनस, नेपच्यून और प्लूटो सूर्य से और भी दूर हैं। इसलिए वे सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाने में अधिक समय लेते हैं, यानी उनके साल की अवधि भी ज्यादा होती है। यह जानकर आपको आश्चर्य होगा कि प्लूटो नाम का ग्रह जो सब से छोटा है, अपना एक चक्कर लगभग २४८ सालों में पूरा करता है, यानी उसका वर्ष हमारे २४८ वर्षों के बराबर है और वह सूर्य से ३ अरब ६७ करोड़ मील दूर है।

इस से आप अनुमान लगा सकते हैं कि हमारे सूर्य का परिवार कितनी बड़ी जगह में फैला हुआ है।

पृथ्वी और उसकी बनावट

क्या आप जानना चाहते हैं कि पृथ्वी सचमुच कितनी बड़ी है? तो सुनिये। हमारी पृथ्वी इतनी बड़ी है कि अगर आप मोटर पर ३०० मील प्रति दिन के हिसाब से चलें, तो इस चाल से पृथ्वी के चारों ओर एक चक्कर लगाने में तीन महीने लगेंगे।

यह हाल तो पृथ्वी के बड़े होने का है। उसका कुल वज़न तो इतना है कि उसे सोचकर बुद्धि चकरा जाती है। यह कोई हज़ार दो हज़ार टन कोयले या मिट्टी का ढेर तो है नहीं जिसे आप आँख से देख लें या हिसाब लगा लें। पृथ्वी का भार
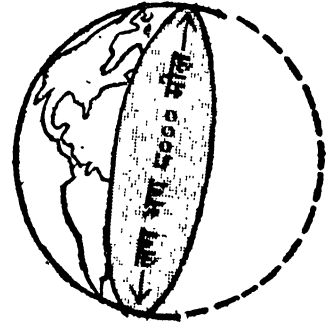
पृथ्वी का घेर लगभग २५००० मील है और आर पार की लम्बाई लगभग ८००० मील।

६,५,७०,०००००००,०००,०००,०००,००० टन है।

(६५७ महा शंख टन)

अगर आप पहाड़ियों और गड्ढों का विचार न करें और पृथ्वी पर दृष्टि डालें, तो यह चपटी जान पड़ेगी। पर असल में पृथ्वी गोल है। सेब या गेंद की तरह कह लीजिये, दोनों सिरों पर कुछ-कुछ चपटी। इसके गोल होने के बहुत से प्रमाण हैं। पहला तो यह कि अगर किसी जगह से सीधे चलना शुरू करें, तो कुछ समय बाद पृथ्वी का पूरा चक्कर काटकर उसी
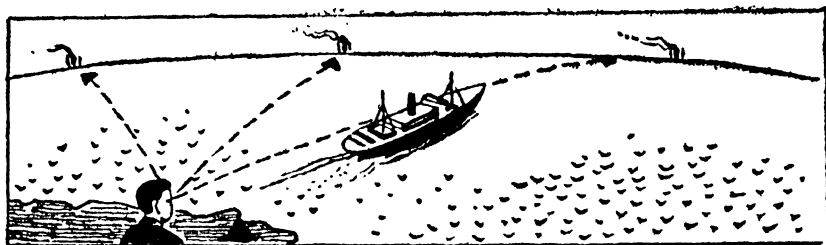
जगह आ जाएंगे जहाँ से चले थे। दूसरे, यदि आप समुद्र के किनारे खड़े होकर दूर से आने वाले जहाज़ को देखें, तो सब से पहले जहाज़ का मस्तूल दिखाई देगा, फिर बीच का भाग और अन्त में निचला भाग। यदि पृथ्वी चपटी होती, तो सारा का सारा जहाज़ एक साथ दिखाई दे जाता।

पृथ्वी सूर्य के चारों ओर तो घूमती ही है। साथ ही वह लट्टू की तरह अपनी धुरी पर भी घूमती है। इसीलिए पृथ्वी के उस हिस्से में जो सूर्य के सामने रहता है, दिन होता है। जो सामने नहीं रहता, वहाँ रात होती
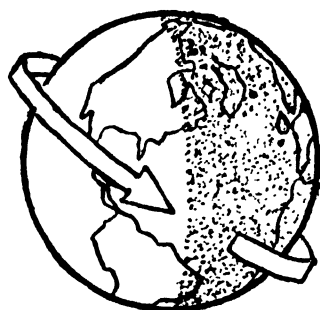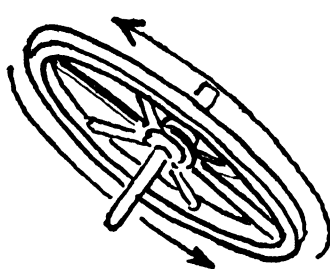
पृथ्वी अपनी धुरी पर एक पहिये की तरह घूमती है। इससे दिन और रात होते हैं।
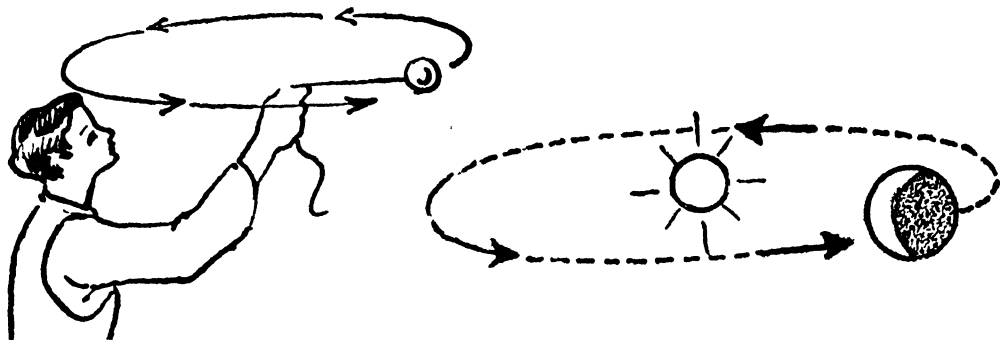
पृथ्वी सूर्य के चारों ओर इस प्रकार घूमती है जिस प्रकार एक पत्थर रस्सी के सिरे पर बांध कर घुमाया जाये। इससे मौसम होते हैं।

पृथ्वी का जो हिस्सा सूर्यके सामने होता है, वहाँ दिन होता है और जो सामने नहीं होता, वहाँ रात होती है।

है। लट्टू की तरह चक्कर लगाने से पृथ्वी का हर भाग बारी-बारी से सूर्य के सामने आता रहता है। रात के बाद दिन और फिर दिन के बाद रात का क्रम चलता रहता है।

पृथ्वी किस चीज़ की बनी है और उसमें क्या है ?

पृथ्वी का अधिक भाग चट्टानों और धातुओं से बना है। इसके ऊपरी भाग पर मिट्टी की एक चादर बिछी है। इस चादर की मोटाई कुछ इंचों से लगाकर कई फुट तक हो सकती है। इसके धरातल पर बहुत से गड्ढों में पानी भरा है, जिनसे झील और समुद्र बने हैं।

मिट्टी की चादर के नीचे पृथ्वी में तीस से लेकर पचास मील की गहराई तक ठोस चट्टानें हैं। इन ठोस चट्टानों और इनके साथ के धरातल की मिट्टी और पानी की चादरों को 'पृथ्वी का छिलका' कहते हैं। इस

छिलके के नीचे पृथ्वी की और भी कई परतें हैं।

हम जैसे-जैसे पृथ्वी के अन्दर जाते हैं, वैसे-वैसे गर्मी बढ़ती जाती है। हर ६० या ६५ फुट की गहराई पर तापमान एक डिग्री बढ़ जाता है। इस हिसाब से ३० से लेकर ५० मील की गहराई पर यानी 'पृथ्वी के छिलके के नीचे' इतनी गर्मी होनी चाहिए कि वहाँ सब चीजें पिघल जाएँ। परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि इस गहराई में केवल गर्मी ही नहीं है, बल्कि 'पृथ्वी के छिलके' का दबाव भी पड़ रहा है। यह दबाव हर वर्ग इंच पर १,५०,००० पौंड है। जब दबाव इतना अधिक हो, तो चीजें पिघल नहीं सकतीं। इसीलिए पृथ्वी में ६०० मील की गहराई तक जो पदार्थ मिलते हैं, वे गरम होने पर भी पिघले नहीं होते। इन पदार्थों को हम पृथ्वी की 'बाहरी परत' कह सकते हैं।
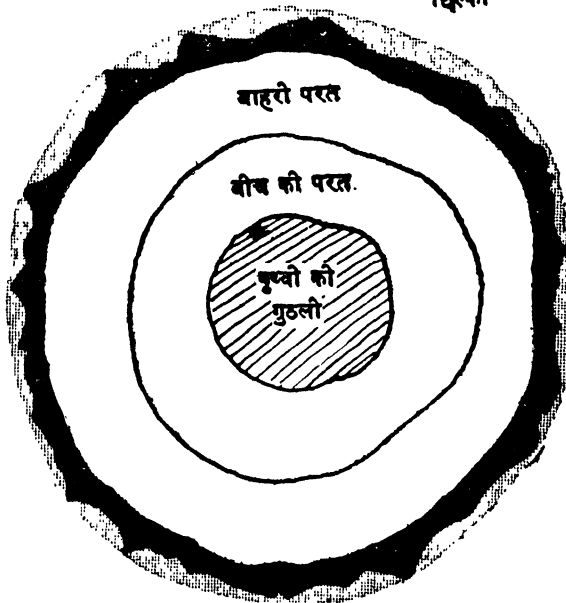
कहा जाता है कि जब पृथ्वी ठंडी हुई, तो सबसे भारी गैस और दूसरी वस्तुओं से तो पृथ्वी की गुठली बन गई, उससे हल्की वस्तुओं से बीच की परत बनी और सबसे हल्की वस्तुओं से पृथ्वी का छिलका बना।

छः सौ मील की गहराई के बाद पृथ्वी की 'बीच की परत' आती है।

इसमें अधिकतर लोहा, दूसरी बहुत सी धातुएँ और पथरीले पदार्थ हैं।

पृथ्वी के बीचों-बीच 'पृथ्वी की गुठली' है। इस पर पृथ्वी की सब परतों का दबाव पड़ रहा है। यह दबाव हर वर्ग इंच पर ४,५०,००,००० पौंड है। वैज्ञानिकों का विचार है कि यह "गुठली" लोहे और गिलट की बनी है, क्योंकि हम जितनी धातुएँ जानते हैं, इनमें यही सबसे भारी हैं।

आप पूछ सकते हैं कि हमें पृथ्वी का यह सब हाल कैसे मालूम हुआ ? इतनी गहराई तक कुएँ या सुरंगें तो खोदी नहीं जा सकतीं। बात यह है कि ज्वालामुखी पहाड़ पृथ्वी के सैकड़ों मील अन्दर की धातुएँ और चट्टानें धरती पर उगलते रहते हैं। इन पिघले हुए पदार्थों को हम लावा कहते हैं। उन्हें देखकर हम पृथ्वी के अन्दर की बहुत सी बातें जान सकते हैं। इसके अलावा भूकम्प बताने का एक यंत्र होता है। वह हमें बताता है कि भूकम्प की लहरें पृथ्वी के किन-किन भागों से आई हैं और वे भाग किन-किन पदार्थों के बने हैं।

आप जानते हैं कि पृथ्वी का धरातल सब जगह समान नहीं है। जब आप कहीं की यात्रा करते हैं, तो पहाड़, मैदान, नदियाँ, झीलें, समुद्र, दलदल, चौड़ी वादियाँ, सँकरी घाटियाँ, रेगिस्तान और जंगल, यानी भाँति-भाँति की चीज़ें देखते हैं। ये सब चीज़ें पृथ्वी पर सदा से नहीं हैं और न अचानक हो गई हैं। ये बनती और बिगड़ती रहती हैं और इनको उन बड़ी शक्तियों ने जन्म दिया है, जो दिन-रात ज़मीन की तोड़-फोड़ में लगी रहती हैं। सबसे पहले हम यह देखें कि आरम्भ में पृथ्वी का धरातल कैसा था।

शुरू में पृथ्वी सूर्य के समान बहुत गरम थी। ज्यों ज्यों समय बीतता गया, वह ठंडी होती गई और उसका ऊपर का छिलका कड़ा होकर चट्टान बन गया। उस समय सब तरफ़ चट्टानें ही चट्टानें थीं। जीवन के लिए मिट्टी की ज़रूरत थी। अभी इन चट्टानों को पिसकर मिट्टी बनना बाक़ी था। परन्तु इन्हें पीसता कौन ?

आपने यह कहावत सुनी होगी कि "प्रकृति की चक्की बहुत धीरे-धीरे पीसती है, लेकिन बहुत बारीक पीसती है।" इसलिए प्रकृति की चक्की ने पीसना आरम्भ किया। वर्षा और हवाएँ, बर्फ और ओले यानी प्रकृति के बहुत से कर्मचारी पहाड़ों और चट्टानों को तोड़ते.फोड़ते, घिसते-पीसते रहे और मिट्टी बनती रही।

पृथ्वी का छिलका कड़ा हुआ, तो ठंडा होकर सिकुड़ने भी लगा। उसमें जगह-जगह झुर्रियाँ और सिलवटें पड़ने लगीं। यही सिलवटें बड़े-बड़े पहाड़ बन गईं। कहीं-कहीं ज़मीन फट गई और इन बड़ी-बड़ी दरारों में से भाप और लावे की बड़ी-बड़ी धाराएँ बह निकलीं। पृथ्वी के भीतर का गरम पदार्थ पृथ्वी का खोल या परतें तोड़-तोड़ कर निकलता रहा। हर जगह ज्वालामुखी पहाड़ों ने राख और गैस उछालनी शुरू की। आकाश धूल और राख के बादलों से भर गया।
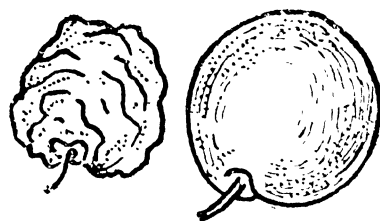
पृथ्वी ठंडी हुई तो उसमें सूखे सेब की तरह झुरियां पड़ गईं। इस प्रकार पृथ्वी पर पहाड़ हो गए।

पृथ्वी से निकली हुई गैस पृथ्वी के चारों ओर गिलाफ़ की भांति लिपटती चली गई और इस प्रकार वायु मण्डल बन गया। भाप के

बादलों ने पानी बरसाना शुरू किया, तो जल-थल एक हो गए। फिर यह सब पानी नदी-नालों से होकर बड़े-बड़े गड्ढों में जमा हुआ, तो दुनिया के समुद्र बने और स्थल के बड़े-बड़े भाग महाद्वीप बन गए। पहाड़ों की चोटियों पर बर्फ जम गई और वहाँ से नदियां समुद्र की ओर बह निकलीं।

कहा जाता है कि जब पृथ्वी बन रही थी तो उसका धरातल बहुत गरम और उजाड़ था। ज्वालामुखी पर्वत बहुत थे। गर्मी के कारण सारा पानी भाप बन गया था और राख के बादल आकाश पर छाए हुए थे। उस समय पृथ्वी पर कोई जीव न था।

करोड़ों वर्षों तक यह तोड़-फोड़ जारी रही। ज्वालामुखी पहाड़ चीखते, चिल्लाते और लावा उगलते रहे। पृथ्वी का धरातल तड़प-तड़प कर करवटें बदलता रहा। पहाड़ बनते रहे और चट्टानें पिस-पिस कर मिट्टी बनती रहीं। इस हड़बोंग में कई बार ऐसा हुआ कि समुद्रों से ऊँचे-ऊँचे पहाड़ निकल पड़े और सूखी धरती बड़े-बड़े समुद्रों के पेट में समा गई।

बहुत-बहुत समय के बाद जब पृथ्वी का खोल काफ़ी कड़ा हो गया, तो ज्वालामुखियों का आग उगलना भी कम हो गया और उसी के साथ-साथ धरातल पर अचानक उलट-फेर और परिवर्तन भी कम हो गए। फिर भी परिवर्तन होते रहे। आग, पानी, हवा, पाला और जीव पृथ्वी के धरातल को तोड़ते-फोड़ते रहे।

प्रकृति के ये कर्मचारी आज भी अपने कामों में लगे हुए हैं। नदियाँ अपने साथ मिट्टी बहा-बहा कर ले जाती हैं और समुद्र में डालती रहती हैं।

समुद्र अपने किनारों को काटता रहता है। हवाएँ करोड़ों मन मिट्टी इधर-उधर करती रहती हैं। धरती का कोई न कोई भाग बहुत धीरे-धीरे उभरता रहता है। कौन जाने, कोई ज्वालामुखी किस समय और कहाँ फट पड़े और सब कुछ उलट-पलट डाले ?

वायु मंडल

जिस प्रकार पृथ्वी के भीतर बहुत सी परतें या खोल हैं, उसी प्रकार उसके ऊपर हवा का एक गिलाफ़ भी चढ़ा है। जिस प्रकार मछलियाँ समुद्र की तह में रहती हैं, उसी प्रकार हम भी हवा के बहुत बड़े समुद्र की तह में रहते हैं। यह हवा बहुत सी गैसों से मिलकर बनी है। अगर हवा न होती, तो धरती पर कोई प्राणी न होता। हवा पृथ्वी के चारों ओर कई सौ मील मोटे कम्बल की तरह लिपटी हुई है और मिट्टी-पानी की तरह पृथ्वी के साथ-साथ घूमती है।

हवा बहुत हल्की चीज़ है। समुद्र के धरातल पर एक घनफुट (एक फुट लम्बी, एक फुट चौड़ी और एक फुट ऊँची) हवा का भार एक औंस या करीब आधी छटाक है। हम जितना ऊपर जाते हैं, हवा का भार भी उतना ही कम होता जाता है। हवा कितनी ही हल्की क्यों न हो, फिर भी उसकी मात्रा इतनी ज्यादा है कि पृथ्वी पर उसका भारी दबाव पड़ता रहता है।

समुद्र के धरातल पर हवा का दबाव १४·७ पौंड प्रति वर्ग इंच होता है। हवा का दबाव हम पर भी पड़ता है, लेकिन हम इससे कुचल नहीं जाते, क्योंकि यह दबाव हर दिशा में बँटा होता है। जितना दबाव हमारे शरीर के बाहर होता है, उतना ही हमारे शरीर में भी होता है। हाँ, अगर हम बहुत ऊँचाई पर चले जाएँ, जहाँ हवा का दबाव काफ़ी कम

गुब्बारे में मनुष्य की सबसे ऊंची उड़ान ७२३९५ फ़ुट
हवाईज़हाज की सबसे ऊंची उड़ान ५६०४६फ़ुट
एवरेस्ट की चोटी २९००२ फ़ुट
आदमी ४२० फ़ुट तक डुबकी लगा सकता है।
पनडुब्बी नाव ६०० फ़ुट तक डुबकी लगा सकती है।
सबसे गहरी खान ९००० फ़ुट
सबसे गहरा तेल का कुआं १६००० फ़ुट
हवा की दूसरी परत
गुब्बारे की उड़ान
हवाई जहाज की उड़ान
सबसे ऊंचे बादल
हवा की पहली परत
तरह तरह के बादल
समुद्र की सतह
आदमी की डुबकी
पनडुब्बी नाव
पृथ्वी की औसत ऊँचाई ६२५ फ़ुट
सबसे गहरी खान
समुद्रों की औसत गहराई २½ मील
सबसे गहरा तेल का कुआं
समुद्र की अधिक से अधिक गहराई लगभग पौने सात मील
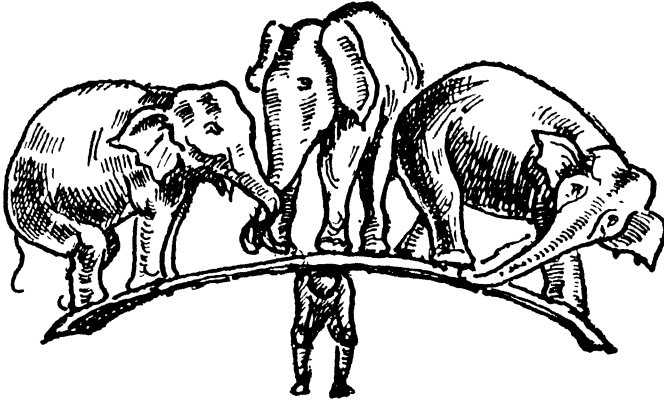
किसी आदमी के लिए पीठ पर तीन हाथियों का भार लेकर चलना असम्भव है, परन्तु प्रत्येक आदमी अपनी पीठ पर तीन हाँथियों के भार के बराबर वायु का दबाव लिए फिरता है और उसे यह भार मालूम भी नहीं होता।

हो जाता है, तो शरीर में ख़ून के दबाव के कारण कान और नाक से ख़ून बहने लगेगा।

पृथ्वी की तरह वायुमंडल को भी हम कई परतों में बाँट सकते हैं। सबसे निचली परत जो पृथ्वी से मिली है, 'घूमने वाली परत' कहलाती है। इस परत में हवा हमेशा चलती रहती है। हम इसी परत या खोल में रहते और साँस लेते हैं। जलवायु और मौसमों का सम्बन्ध भी इसी से है। यह परत आठ-दस मील मोटी है। इसमें मिट्टी, धूल, भाप और बादल मिलते हैं।

इस घूमने वाले खोल के ऊपर एक और खोल है जिसकी मोटाई ५० मील है। इस खोल के बीच में ओज़ोन गैस की एक मोटी परत है। वह सूर्य से आने वाली अति बैंगनी किरणों को अपने में सोख लेती है। ये किरणें बहुत तेज होती हैं। यदि यह गैस इन किरणों को न सोख ले, तो पृथ्वी के सारे प्राणी मर जाएं।

इस दूसरे खोल के ऊपर हवा का तीसरा और आख़िरी खोल है। इसकी मोटाई ६५० मील है। यही वह खोल है जिसमें रेडियो की लहरें यात्रा करके दुनिया के हर भाग में पहुँच जाती हैं।

२

सभ्यता के उदय तक

बड़े-बूढ़े सदा से यह कहते आए हैं कि उनके बचपन में दुनिया की हालत कुछ और थी, अब कुछ और है। यह बात ठीक है। जीवन बदलता रहा है और बदलता रहेगा। उस समय से जब आदमी दुनिया में आया, जीवन इतना बदल गया है कि हम उसका अनुमान भी नहीं लगा सकते। कभी आदमी बनमानुसों की कुछ जातियों से बहुत भिन्न न था और जानवरों की भाँति अपना जीवन बिताता था। आज उसकी चौमुखी प्रगति देखकर बुद्धि चकरा जाती है। कहाँ वह भयानक जंगली जीवन और कहाँ आजकल के शहरों की चहल-पहल, बिजली का प्रकाश, मोटर, रेल, हवाई जहाज और वे सब सुविधाएँ जो आदमी का जीवन आनन्दमय बनाती हैं। इस उन्नति

का कारण यह है कि आदमी सोच सकता है और सोचता रहता है। उसकी कहानी इसी सोचने, समझने और समझ कर काम करने की कहानी है।

विद्वानों का मत है कि बच्चा आरम्भ में मस्तिष्क से नहीं अपने हाथों से सोचता और समझता है। इसी लिए वह जिस चीज को देखता है, उसकी ओर हाथ बढ़ाता है और उसे छूना चाहता है—चाहे वह किसी आदमी का मुंह हो, या कोई फूल हो, या आग का अंगारा हो। आदमी की कहानी इससे आरम्भ होती है कि उसके हाथ थे। आदमी आदमी न होता, यदि उसके हाथ न होते।

संसार के पहले मनुष्य की आँखें पेड़ों के फलों को देखती होंगी। उन्हें वह हाथों से तोड़ कर खाता होगा। आँखें पौधों को देखती होंगी। हाथ उन्हें उखाड़ कर उनकी कोमल जड़ों को जमीन से निकाल लेते होंगे। पशुओं की भाँति आदमी के जीवन का भी सारा समय भोजन की खोज में बीतता होगा। परन्तु उसके हाथों ने बताया होगा कि कुछ काम ऐसे हैं, जो वह नहीं कर सकता। उधर ये काम इतने जरूरी थे कि उनके बिना उसका जीना कठिन था।
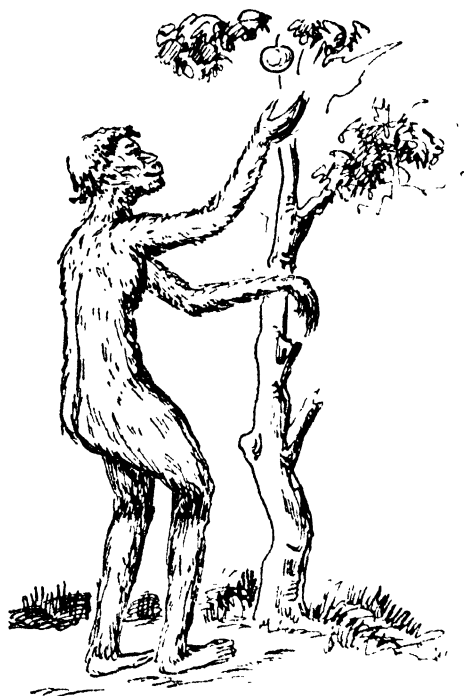
काटने, खुरचने, छीलने और खोदने का काम आदमी के हाथ नहीं कर

सकते थे। इससे दो बड़ी हानियां थीं। एक तो यह कि ग्रादमी पशुग्रों से ग्रौर दूसरे ग्रादमियों से ग्रपना बचाव नहीं कर सकता था। दूसरे वह फलों, जड़ों ग्रौर कुछ छोटे पशुग्रों के सिवा ग्रौर कुछ नहीं खा सकता था।

ग्रादमी ने ग्रपने हाथों से ही यह बात जानी होगी कि एक चीज़ दूसरी से ग्रधिक मज़बूत होती है। पक्की लकड़ी कच्ची से ग्रौर मोटी लकड़ी पतली से ग्रधिक मज़बूत होती है। पत्थर सूखी लकड़ी से ग्रधिक मज़बूत होता है ग्रौर कुछ पत्थर ऐसे भी होते हैं जिन्हें दूसरे पत्थरों से तोड़ा जा
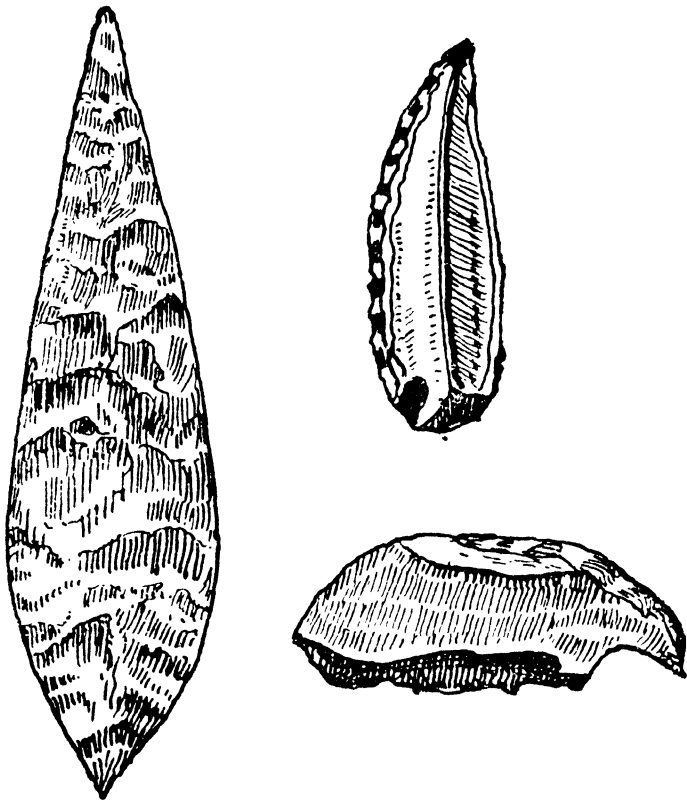
सकता है। इस प्रकार ग्रादमी ने पहले ग्रौजार बनाए होंगे, जिनसे वह काटने, खुरचने, छीलने ग्रौर खोदने का काम ले सकता था। ग्रौर इस तरह

औज़ार आदमी के हाथों के सहायक बन गए होंगे।

इसी प्रकार आदमी को यह भी मालूम हुआ होगा कि वह आग जिसे वह कभी-कभी देखता था, पत्थरों को रगड़कर पैदा की जा सकती है। आग आसानी से पैदा न होती होगी। इसलिए उसे एक बार जलाने के बाद बुझने न दिया जाता होगा। जहाँ आग जलती होगी, वहाँ जंगली जानवर न आते होंगे। वहाँ मांस भूना जा सकता होगा और जाड़ों में गरमी पैदा की जा सकती होगी। आग ने आदमी को एक जगह रहना सिखाया।

आग जल गई और उसका जलते रहना ज़रूरी हो गया, तो आदमी ने ऐसी गुफाऐं ढूंढ़ी होंगी जिनमें वह बराबर रह सके।

यह युग, जब आदमी पत्थर के औज़ार बनाने लगा और गुफाओं में रहने लगा, 'पुराना पत्थर का

युग' कहलाता है। इस पड़ाव से गुजरने में आदमी को हज़ारों वर्ष लग गए। इन हज़ारों वर्षों में एक बार ऐसा हुआ कि संसार में सर्दी अचानक बढ़ गई। बीच के भाग के सिवा धरती बर्फ़ से ढँक गई। फिर सर्दी कम हुई, बर्फ़ पिघली और बड़े-बड़े जंगल उग आए। संसार में चार बार इस प्रकार बर्फ़ का दौर आया और गया। इसके बाद आदमी की दशा बिल्कुल बदली हुई थी।

परिवारों में रहने का स्वभाव तो आदमियों में बहुत-बहुत पुराना है। जब उन्होंने पौधे उगाना शुरू किया, तो कई परिवार एक साथ रहने लगे। इस प्रकार समाजी जीवन की नींव पड़ी। उन्होंने समझा कि साथ रहने से लाभ तभी होगा जब काम का बँटवारा कर लिया जाए। इससे कारीगरी और उन कारीगरियों को काम में लाने वाले पैदा हुए। उन्होंने यह भी समझा कि जब आदमी साथ रहें और उनमें काम का बँटवारा हो, तो कोई ऐसा भी होना चाहिए जो सब से वे नियम मनवाए जिन्हें सब उपयोगी मानते हों। इस प्रकार राज्य और राजनीति का आरम्भ हुआ।

आदमी ने देखा होगा कि कुछ बातें बराबर होती रहती हैं। सूरज निकलता है, डूबता है, और फिर निकलता है। एक विशेष समय पेड़ों में नई कोंपलें निकलती हैं, फूल-फल आते हैं, पत्तियाँ झड़ जाती हैं। गर्मी होती है, सरदी होती है। फिर गर्मी होती है। इस प्रकार उसने अपने स्वभाव को और अपने रहन-सहन को धीरे-धीरे इस जगत की बदलती चीज़ों के अनुसार बदलना सीखा होगा। उसने यह भी देखा होगा कि आदमी पैदा होते हैं और फिर मरते हैं। इस बात ने उसके मन में वे विचार पैदा किए होंगे जिन्होंने धीरे-धीरे धर्म का रूप लिया।

अनुभव से आदमी ने यह भी समझा होगा कि जंगली फलों और जंगली जानवरों के मांस पर बसर करना असम्भव है। उसने यह देखा था कि पेड़ों और कुछ पौधों में बीज होते हैं। जब वे ज़मीन पर गिरते हैं, तो उनसे नए पौधे पैदा होते हैं। सो उसने बीजों को इकट्ठा करके खुद बोना आरम्भ कर दिया होगा।

जंगली पशुओं में से कुछ ऐसे थे, जो आदमी के पास बिल्कुल न फटकते थे। परन्तु कुछ पशु ऐसे भी थे, जो उसके पास आते थे। उसने इन्हें पालना शुरू किया। उसने कुत्ते इसलिए पाले होंगे कि वे रक्षा करते थे
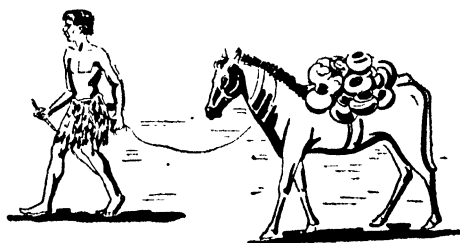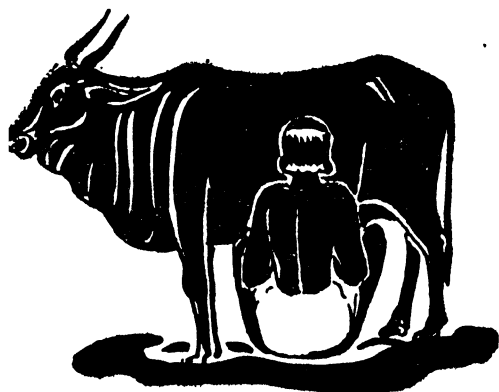
और शिकार में सहायता देते थे। गाय, बैल और घोड़े उसने इसलिए पाले होंगे कि वे बोझ उठा सकते थे और उनका दूध पिया जा सकता था।

इस तरह आदमी ने सोचकर अपने जीवन को समाजी जीवन का रूप दिया। अपना बचाव करना, खेती करना, औजार, बर्तन और दूसरी ज़रूरत की चीजें बनाना समाज के अलग-अलग लोगों में बांट दिया। इसी युग को 'नया पत्थर का युग' कहते हैं। अनुमान है कि यह युग अब से दस-बारह हज़ार साल पहले आरम्भ हुआ होगा।
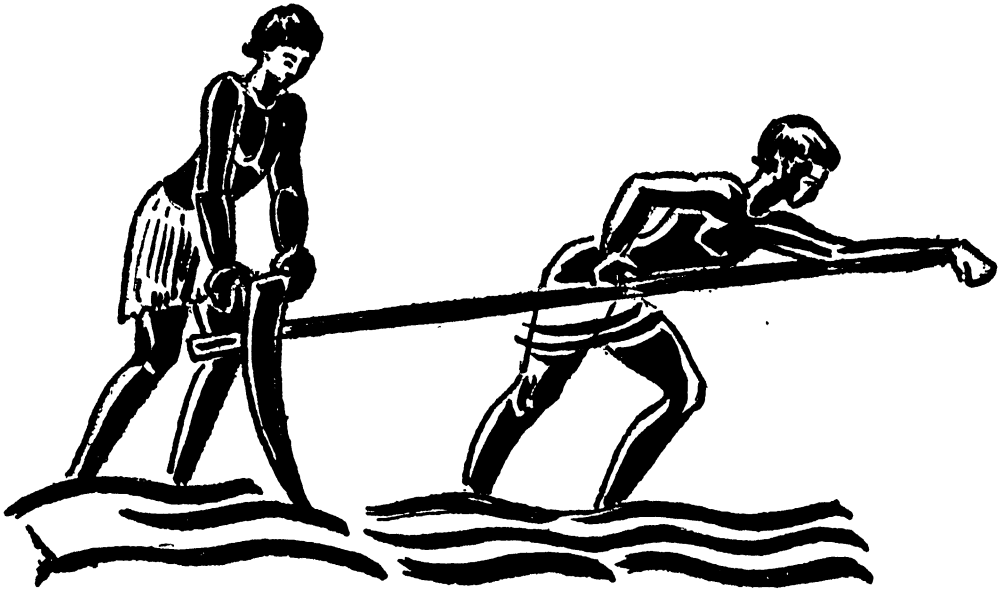
इस युग की चीज़ें संसार के अलग-अलग भागों में मिली हैं। उनसे पता चलता है कि आदमी ने इस समय तक कितनी उन्नति कर ली थी। पत्थर के औज़ार सुघड़ और पहले की तुलना में बहुत अधिक काम के थे। मिट्टी के बर्तन बनने लगे थे और आदमी बस्तियों में रहते थे। इन बस्तियों की रक्षा का प्रबन्ध था और ये बस्तियां काम के बँटवारे के कारण अपनी आवश्यकताएँ स्वयं पूरी कर लेती थीं।
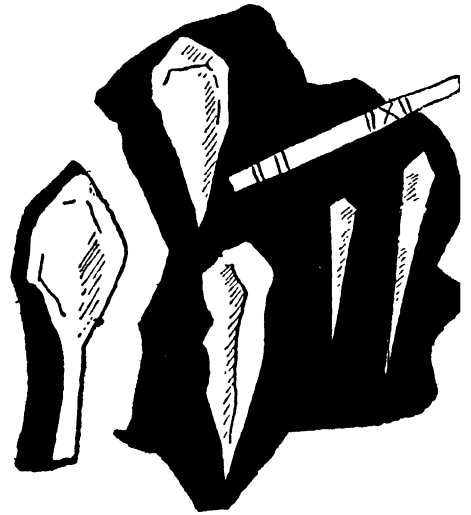
काम का बँटवारा हो जाने के कारण लोग अपने-अपने काम में अधिक कुशल हो सकते थे। औज़ार बनाने वालों ने पत्थर से अच्छी चीज़ की खोज में धातुओं का पता लगा लिया था। वे तांबे और कांसे की चीज़ें बनाने

लगे थे। पत्थर और धातुओं का काम करने वालों में से कुछ ने सुन्दर पत्थरों के और कुछ ने सोने-चाँदी के गहने बनाने शुरू कर दिये थे। मिट्टी के बर्तन बनाने वाले चाक से काम लेते थे। इस प्रकार बहुत सुडौल बर्तन बनने लगे थे।

आदमियों में अच्छी चीज़ों का शौक पैदा हो गया था और इसका फल यह हुआ था कि एक जगह की बनी हुई चीज़ें दूसरी जगह पहुँचाई जाने लगी थीं। इस प्रकार इस युग में व्यापार का आरम्भ हुआ।

व्यापार का माल पहले बोझा ढोने वाले पशुओं पर लादकर एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाया जाता था। फिर पहिया बना और दो पहियों की गाड़ियाँ सामान ले जाने के लिए काम में लाई जाने लगीं। घोड़ों की सवारी का चलन भी इसी समय आरम्भ हुआ।
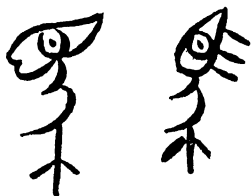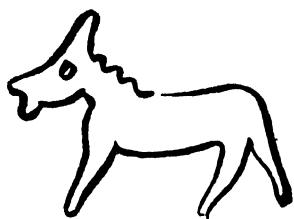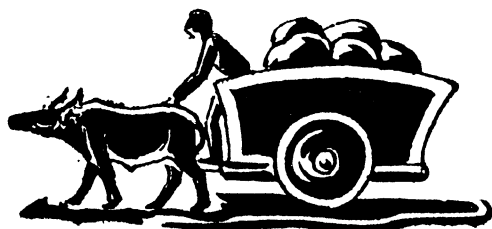
इसी समय भाषाएँ भी बोली जाने लगीं। पहले आमदनी और खर्च का हिसाब रखने, फिर अपने विचार प्रकट करने के लिए लिखने के ढंग निकाले गए। कुशल-

मंगल और उन्नति की इच्छा ने मंदिरों और पूजा-पाठ का चलन किया।

इस प्रकार इस समय वह चीज आरम्भ हुई, जिसे आजकल हम सभ्यता कहते हैं।

इस युग के बाद उन्नति की गति बहुत तेज़ हो गई। इसका बड़ा कारण यह था कि लिखने के ढंग निकल चुके थे और ज्ञान को सुरक्षित करने और एक से दूसरे तक पहुँचाने की सुविधा हो गई थी। पुराने पत्थर के युग में भी आदमी बोलते रहे होंगे, परन्तु जितनी समझ थी उतना ही वह समझते और बतलाते होंगे। धीरे-धीरे एक ओर समझ और

जानकारी बढ़ी होगी, दूसरी ओर जीभ और ओठों में ध्वनि को ठीक निकालने की योग्यता आई होगी।

कुछ गुफाओं में जहाँ आदमी पुराने पत्थर के युग में रहते थे, पशुओं के चित्र बने हुए मिले हैं। हम नहीं जानते कि ये चित्र बरकत यानी समृद्धि के विचार से या शिकार में सफलता की आशा या केवल शौक के लिए बनाए गए थे। परन्तु कुछ चित्रों को देख कर विश्वास होता है कि

इनका उद्देश्य केवल आकार बनाना नहीं, बल्कि कुछ कहना था। इसी कारण से समझा जाता है कि लिखने का जो ढंग सबसे पहले चला, उस में जिस चीज की चर्चा होती, उसका चित्र बनाया जाता।

मिस्र में इसका बहुत अधिक चलन था और इसके बहुत से नमूने अब तक पाए जाते हैं। मिस्र ही में पूरा चित्र बनाने के बदले उसका चिह्न बनाया जाने लगा। इस प्रकार लिखने में कुछ सरलता हो गई। इसके बाद यह हुआ कि चिह्न किसी चीज का चिह्न माने जाने के बदले किसी ध्वनि का चिह्न माना जाने लगा। फोनेशिया की भाषा में घर को 'बेत' कहते थे। लिखने के लिए पहले घर का चित्र बनाया जाता था। फिर इस चित्र के बदले एक चिह्न बनाया जाने लगा और उसको 'बेत' कहने लगे। इससे 'बे' की ध्वनि निकली और 'बे' एक अक्षर बन गया।
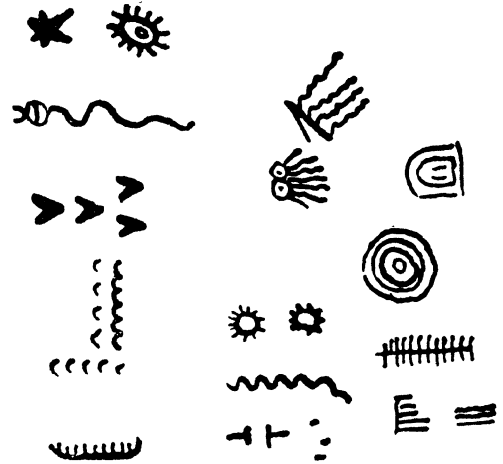
यह उन्नति इस कारण हुई कि आदमियों के अलग-अलग समाजों में आपसी सम्बन्ध थे। यदि फोनेशिया वालों का ऐसे लोगों से सम्बन्ध न होता, जिनकी भाषा में घर को बेत नहीं कहते, तो बेत के चिह्न से 'बे' का अक्षर न बनता।

चीन के रहने वालों का सम्बन्ध दूसरे देशों के लोगों से इतना नहीं था, इसी कारण उनकी लिखाई का ढंग अधिक उन्नति न कर सका। उनकी भाषा की अब तक कोई वर्णमाला नहीं है। वे पूरे शब्द ही

लिखते हैं।

मिस्र में लिखने के लिए बाँस की कलम और कागज की जगह एक पौधे की छाल काम में लाई जाती थी। बाबुल में कागज के स्थान पर मिट्टी की तख्तियाँ और कलम के स्थान पर एक नोकदार औजार काम में लाया जाता था। चीनियों ने कागज बनाकर और छपाई का ढंग निकालकर दुनिया का बहुत बड़ा उपकार किया। परन्तु इससे वह पूरा लाभ न उठा सके, क्योंकि उनकी भाषा में वर्णमाला न थी।

संसार में सभ्यता के पहले केन्द्र नील, फरात, सिन्ध और यांगट्सी नदियों के किनारे थे। यहाँ खेती के लिए भूमि थी, सिंचाई के लिए पानी था, और जलवायु ऐसी थी कि आदमी गर्मी और सर्दी दोनों के कष्टों से बचा रहे। यहाँ सभ्यता ने बहुत उन्नति की। चारों ओर से और संसार के दूसरे भागों से कम सभ्य या जंगली कबीले सभ्यता के इन केन्द्रों की ओर उसी प्रकार खिंच-खिंच कर आते रहे जैसे दीये के प्रकाश की ओर पतिंगे। इससे एक संघर्ष छिड़ा, जिसने सभ्यताओं को मिटाया और मिटाकर बनाया। हानि पहुँचाई और उस हानि से लाभ के रास्ते निकाले।

सुमेर
चीन
सभ्यता का उदय
मिस्र
सिन्ध
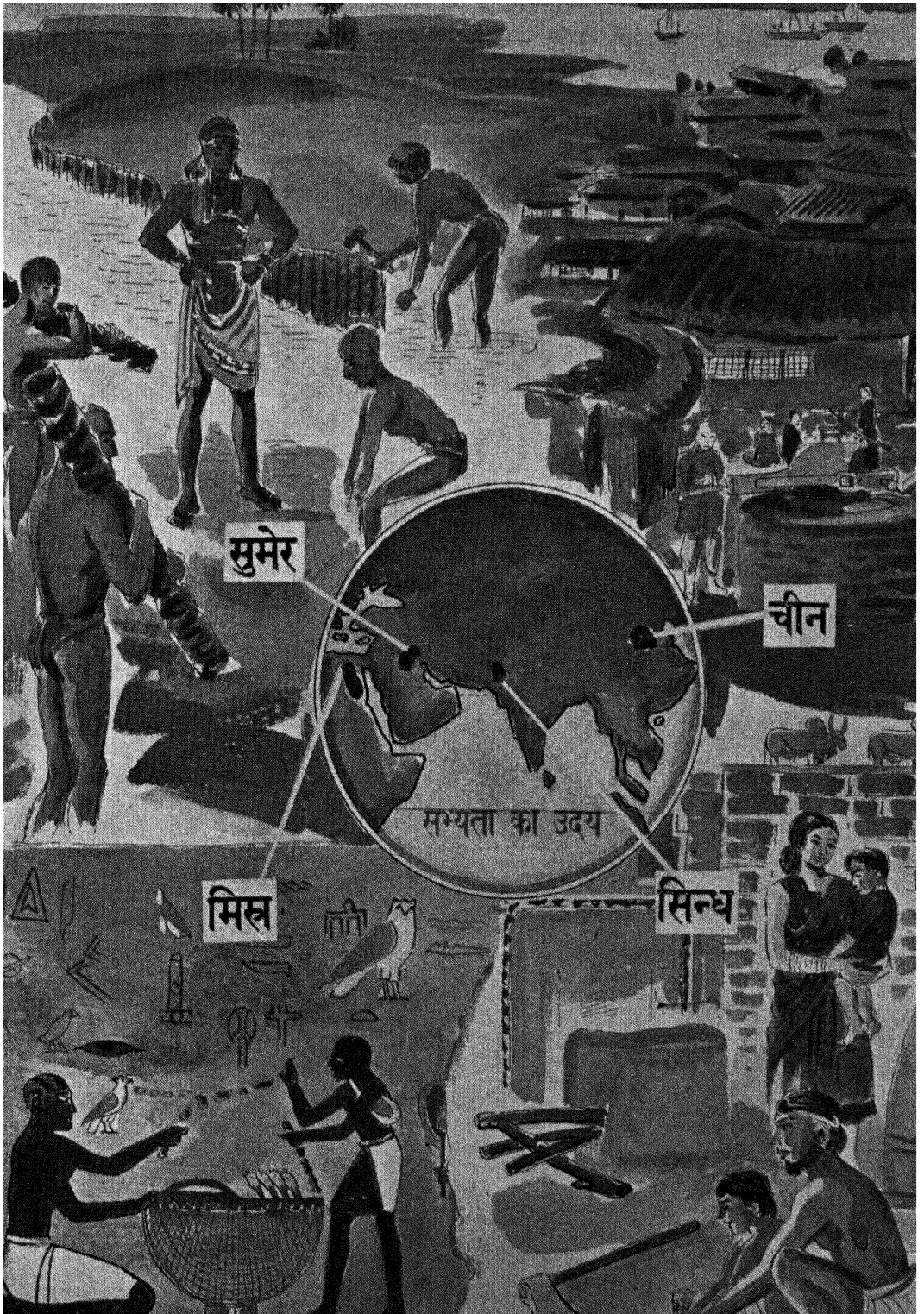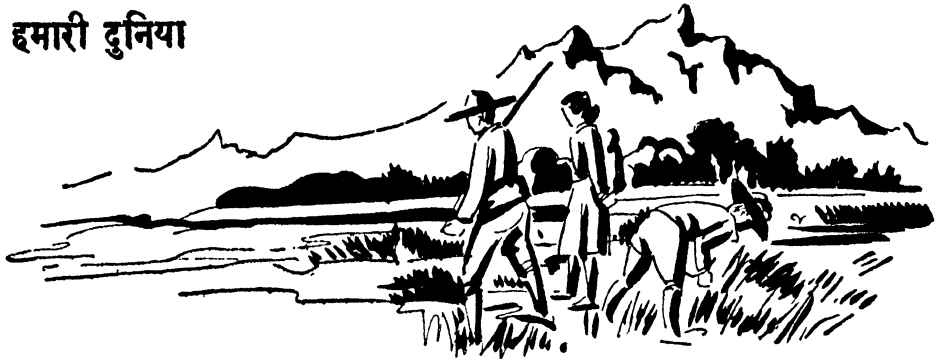
३

धरती की रूपरेखा

यह धरती जिस पर हम रहते हैं, हमारा घर है । वैसे तो सबको अपना घर अच्छा लगता है, परन्तु सच्चाई यह है कि हमारा यह घर बहुत ही अनोखा और मन को भाने वाला है । आइए, ज़रा अपने इस अनोखे घर की सैर करें ।

लीजिए, हम एक हवाई जहाज़ में बहुत-बहुत ऊँचाई पर उड़ रहे हैं । हम देख रहे हैं कि पृथ्वी पर कहीं स्थल के बड़े-बड़े भाग हैं और कहीं जल के ।

स्थल के बड़े-बड़े भागों को महाद्वीप और पानी के बड़े-बड़े भागों को महासागर कहते हैं । एशिया, अफ्रीका, यूरोप, उत्तरी अमरीका, दक्खिनी

अमरीका और आस्ट्रेलिया स्थल के बड़े-बड़े भाग यानी महाद्वीप हैं। इनके अलावा एक बर्फ़ से ढँका हुआ उजाड़ महाद्वीप भी है। यह पृथ्वी के दक्खिनी भाग यानी दक्खिनी ध्रुव प्रदेश में है। प्रशान्त महासागर, अटलांटिक महासागर, भूमध्य सागर, हिन्द महासागर और आर्कटिक महासागर पृथ्वी पर पानी के बड़े-बड़े भाग हैं।

हमारी दुनिया में कुल कितनी ज़मीन है और कितना पानी
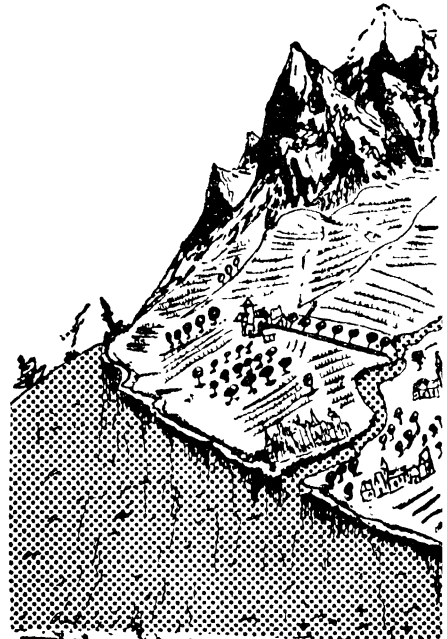
पहाड़ों और समुद्रों के बीच मे मैदान हैं और अधिकतर मनुष्य इन्हीं मैदानों में बसते हैं।

हिसाब लगाइए, तो मालूम होगा कि पृथ्वी का दो-तिहाई भाग पानी से ढँका है। केवल एक-तिहाई भाग स्थल है। इसी एक तिहाई भाग में आदमी रहते हैं और करोड़ों करोड़ प्रकार के पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े और पेड़-पौधे पाए जाते हैं। परन्तु हम देखते हैं कि इस स्थल के भी सब भाग ऐसे नहीं हैं, जिनमें प्राणी रह सकें।

अब तनिक ऊँचाई से कुछ नीचे उतरिए। हमारी यह पृथ्वी कैसी

रंग-बिरंगी है। कहीं भूरे और सफ़ेद पहाड़ हैं, तो कहीं हरियाली ही हरियाली है और गर्मी और पानी अधिक होने के कारण घने जंगल हैं। कहीं रेत के सिवा और कुछ नहीं दिखाई देता और कहीं बर्फ़ ही बर्फ़ है--सफ़ेद-सफ़ेद और जगमगाती हुई बर्फ़। ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों की चोटियाँ भी बर्फ़ से ढँकी हुई हैं। पछाड़ खाती नदियाँ पहाड़ी ढालों से उतरकर मैदानों में रेंगती हुई समुद्र की ओर जा रही हैं।

तनिक इन ऊँचे पहाड़ों की माला को तो देखिए। एशिया के पच्छिम
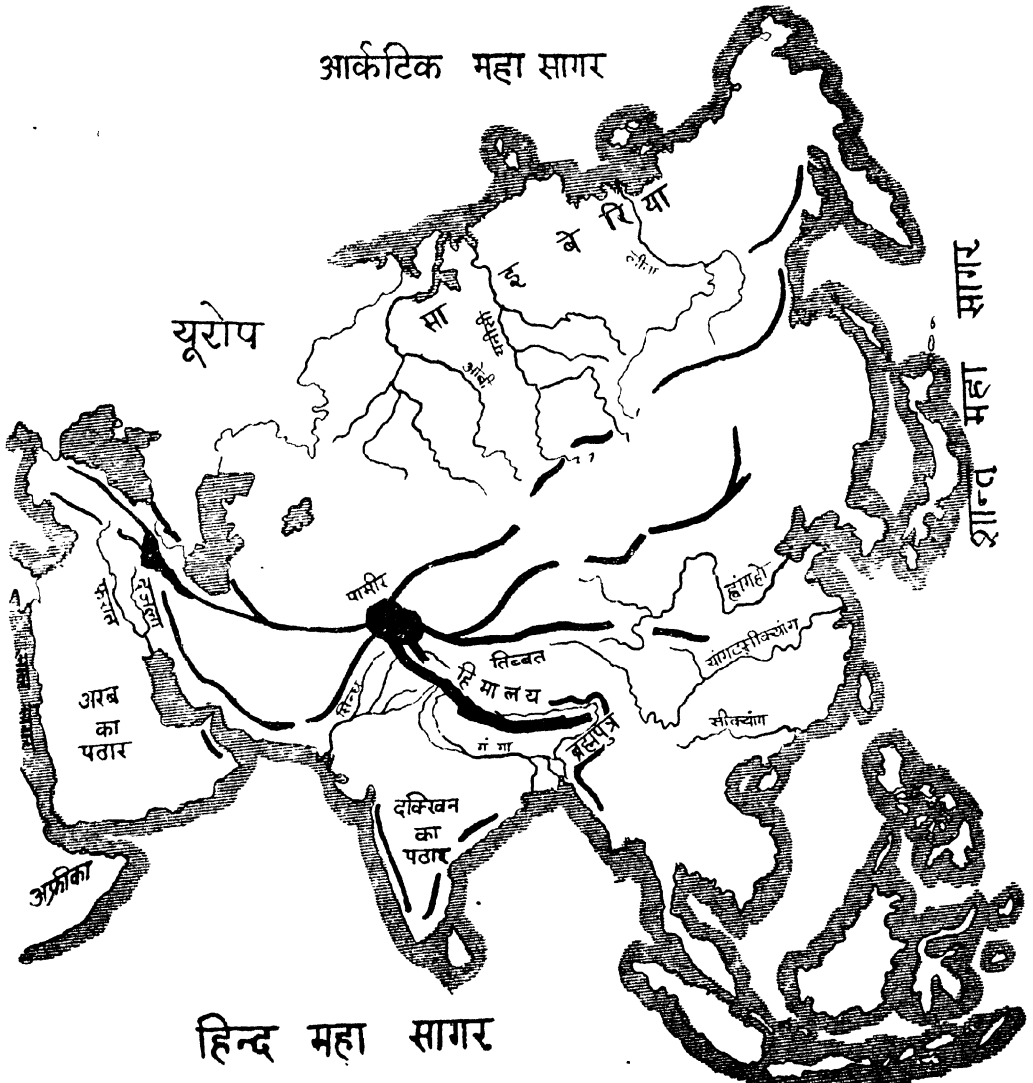
से दो पर्वतमालाएँ आरम्भ होती ह और बहुत दूर तक एक दूसरे के बराबर-बराबर चलकर पामीर में एक दूसरे से मिल जाती हैं। पामीर का पठार अपनी ऊँचाई के कारण 'दुनिया की छत' कहलाता है। पामीर से पूरब एक पर्वतमाला ऊँची दीवार की भाँति चली गई है। बर्मा और हिन्द-चीन पहुँच कर यह पर्वतमाला अचानक दक्खिन की ओर मुड़ जाती है।

हिमालय दुनिया का सबसे ऊँचा पहाड़ है। यह इतना ऊँचा है कि आकाश को छूता हुआ जान पड़ता है। इसकी चोटियाँ हमेशा बर्फ़ से ढँकी रहती हैं। हिमालय का अर्थ है 'बर्फ़ का घर'।

इस पहाड़ की सबसे ऊँची चोटी एवरेस्ट है। यह २९,००२ फुट या लगभग ५½ मील ऊँची है। इस पर कुछ दिन पहले तक किसी आदमी ने पैर नहीं रखे थे। परन्तु बराबर कोशिश करने के बाद अन्त में मई, १९५३ ई० में एवरेस्ट की चोटी पर आदमी ने विजय पाई। तेनसिंह और हिलेरी नाम के दो वीरों ने एवरेस्ट की चोटी पर सफलता का झण्डा फहराया। तेनसिंह तो हमारे ही देश के हैं और हिलेरी अंग्रेज हैं।

हिमालय के दक्खिनी ढालों पर वर्षा अधिक होती है, इसलिए इन ढालों पर बड़े-बड़े और घने जंगल हैं।

आप बड़े-बड़े पहाड़ों को देख चुके। अब तनिक इन पहाड़ों के बीच ऊँचे-ऊँचे पठारों पर भी नजर डालिए। ये सपाट भाग न तो पहाड़ों की भाँति ढालू हैं, और न उनकी भाँति ऊँचे। फिर भी इनमें कहीं-कहीं पहाड़ियाँ उभरी हुई दिखाई पड़ती हैं। इन पठारों में नदियों ने जगह-जगह अपने लिए रास्ता काटकर घाटियाँ बनाई हैं।

मध्य एशिया में कई ऊँचे-ऊँचे पठार हैं। इनमें पामीर दुनिया में सबसे ऊँचा है। पामीर के पूरब में तिब्बत का लम्बा-चौड़ा पठार है।

तिब्बत का पठार चारों तरफ ऊंचे पहाड़ों से घिरा हुआ है।

दक्खिनी एशिया में अरब और दक्खिनी भारत के पठार आसपास की ज़मीन से अलग उभरे हुए दिखाई देते हैं। पहाड़ों के चारों ओर लम्बी लम्बी नदियाँ बहती नज़र आती हैं। इनके किनारे बड़े बड़े शहर बसे हुए हैं और ख़ूब चहल-पहल है।

ये नदियाँ अपने साथ बहुत अधिक मिट्टी लाकर मैदानों में बिछाती रहती हैं। आदमी की अंगुलियों की हल्की सी गुदगदी से यह मुलायम मिट्टी खिलखिला उठती है और थोड़े परिश्रम से अच्छी अच्छी फसलें तैयार हो जाती हैं।

एशिया में हिमालय के उत्तर में एक बड़ा मैदान है। इसका ढाल दक्खिन से उत्तर को है। यह साइबेरिया का मैदान कहलाता है। इसका बिल्कुल उत्तरी भाग बहुत ठण्डा है। ज़मीन बर्फ़ से ढँकी रहती है, कोई चीज़ उग नहीं सकती। इसलिए जो लोग यहाँ रहते हैं, वे बर्फ़ में रहने वाले जानवरों और मछलियों का गोश्त खाते और उनकी खालों के कपड़े बना कर पहनते हैं। इस मैदान में ओबी, यनीसी और लीना बड़ी

नदियाँ हैं। ये नदियाँ इस इलाक़े में उत्तर को बहती हुई आर्कटिक महा सागर में गिरती हैं। साल के अधिकतर भाग में इन नदियों के मुहानों पर बर्फ़ जमी रहती है, इसलिए पानी न निकल सकने के कारण आस-पास के इलाकों में फैल जाता है। इससे बड़े बड़े दलदल बन जाते हैं।

दक्खिनी एशिया में नदियों के बनाए हुए दो बड़े मैदान हैं। एक गंगा, सिंध और ब्रह्मपुत्र का मैदान। दूसरा दजला और फरात का। ये दोनों दुनिया के बहुत ही उपजाऊ प्रदेशों में से हैं। इनमें मनुष्य की ज़रूरत की सब चीज़ें बहुतायत से होती हैं। इसलिए यहाँ आबादी भी बहुत घनी है। आजकल हमारे देश में बहुत सी नदियों पर बाँध बनाए जा रहे हैं, जिससे अधिक से अधिक सिंचाई हो सके और पन-बिजली तैयार की जा सके।

हिमालय से पूरब की ओर बहने वाली नदियों ने चीन में बड़े बड़े उपजाऊ मैदान बनाए हैं। एक ह्वांगहो या पीली नदी का मैदान है। इस मैदान में करोड़ों चीनी बसते और खेतीबारी करते हैं। दूसरा यांगट्सी-क्यांग या नीली नदी का मैदान है। यह नदी तिब्बत से निकलकर एक सँकरे पहाड़ी रास्ते से होकर ऐसे मैदान में जा पहुँचती है जहाँ झीलों और तालाबों की भरमार है। इस इलाके में बारिश भी काफ़ी होती है और गरमी भी अच्छी पड़ती है। पानी और गर्मी की अधिकता के कारण यहाँ धान बहुत होता है, यही यहाँ के रहने वालों का मुख्य भोजन है।

जिस प्रकार एशिया में हिमालय बहुत बड़ा पहाड़ है, उसी प्रकार

मनुष्य धरती का रूप बदल सकता है

वाल्गा के पानी से बनाई एक झील

वाल्गा पर एक बड़ा बिजली घर
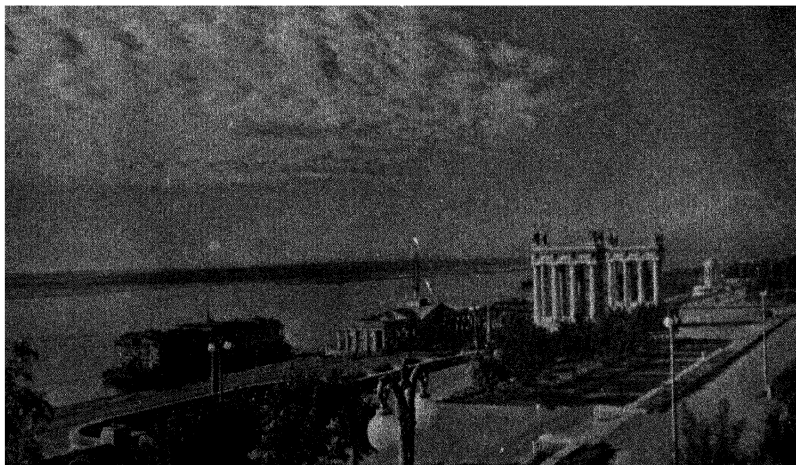
स्तालिनग्राड में वाल्गा का ब

बायें—न्यूयार्क का एक दृश्य जहाँ आकाश से बातें करती इमारतें हैं। सामने संसार की सबसे ऊँची इमारत 'एम्पाथर स्टेट बिल्डिंग'।

नीचे—अमरीका के उपजाऊ मैदान का एक खेत। मशीन से मकई के भुट्ट काटे और इकट्ठा किए जा रहे हैं।
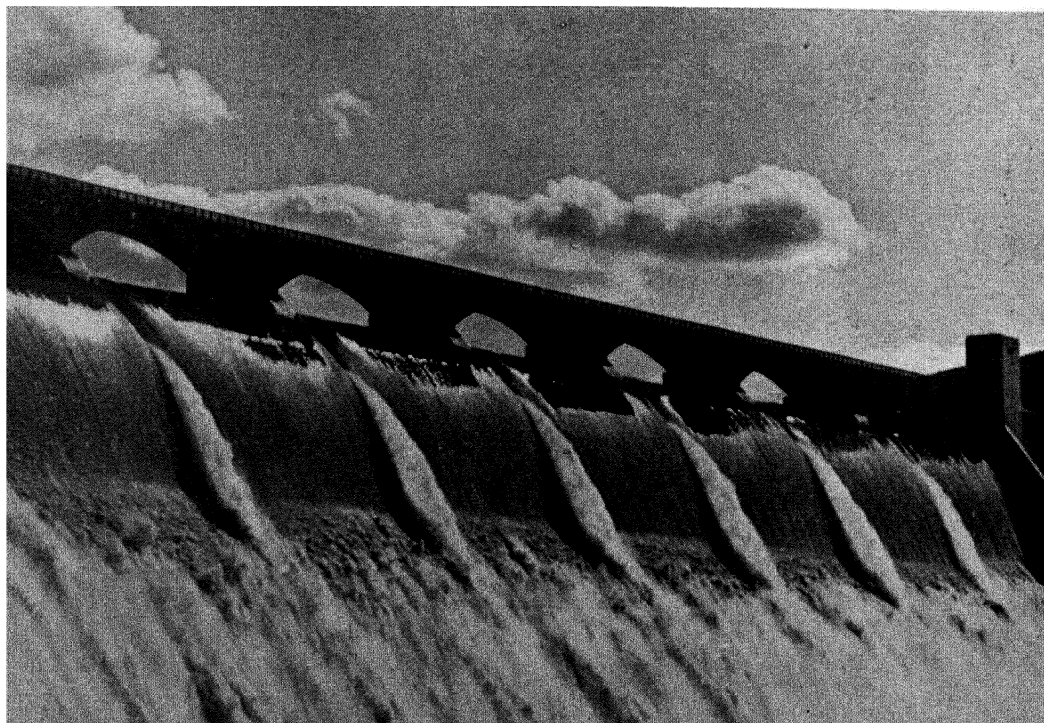
यूरोप में आल्प्स है। यूरोप के बीचोंबीच आल्प्स की शाखाएँ चारों ओर फैली हुई हैं। इसकी कुछ चोटियाँ समुद्र की सतह से लगभग १४००० फुट या ढाई मील ऊँची हैं और उन पर हमेशा बर्फ़ जमी रहती है।
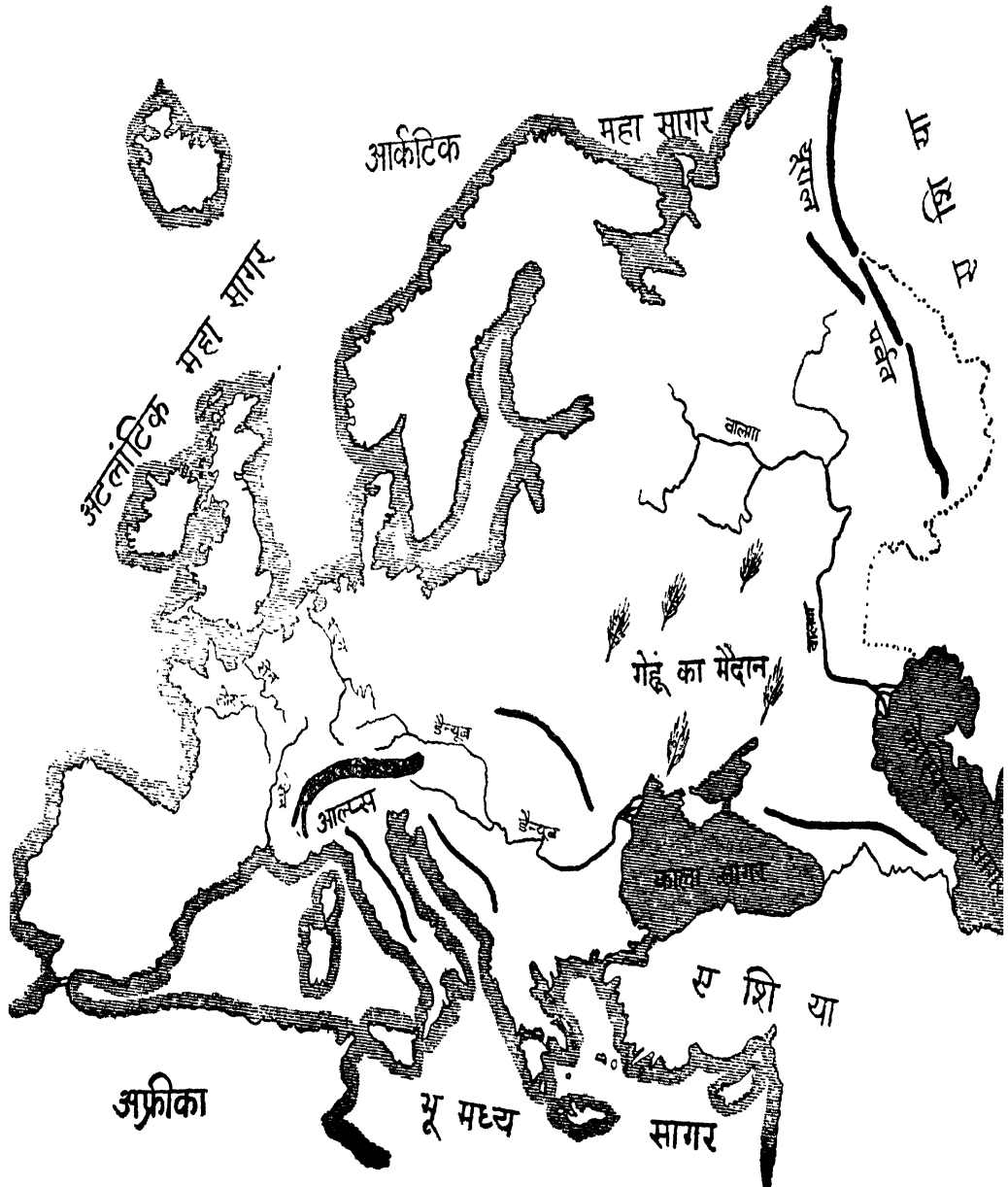
यूरोप के पूरब में यूराल नाम का पहाड़ है। यह यूरोप को एशिया से अलग करता है। यूराल के पच्छिम में रूस का बड़ा मैदान है। जाड़े में यहाँ कड़ाके की सर्दी पड़ती है, लेकिन गर्मियों में इतनी गर्मी हो जाती है कि गेहूँ खूब पैदा हो सके। इस मैदान का दक्खिनी भाग गेहूँ की पैदावार के लिए दुनिया भर में मशहूर है। यूरोप की सबसे बड़ी नदी वाल्गा इस मैदान से होकर उत्तर से दक्खिन को बहती है। जाड़े में इस पर बर्फ जम जाती है। इसलिए इसमें जहाज़ नहीं चल सकते। हाँ, पच्छिमी यूरोप की नदियाँ राइन, सेन, लोएर, रोन और डैन्यूब विशेष उपयोगी हैं। इनमें राइन नदी सबसे अधिक महत्व की है। इससे बहुत व्यापार होता है। वैसे यूरोप की नदियाँ व्यापार के लिए तो बहुत उपयोगी नहीं है, फिर भी इनसे दूसरे बहुत से लाभ हैं। जगह जगह इनसे सिंचाई होती है और इनके झरनों से बिजली भी तैयार की जाती है।

एशिया और यूरोप के अलावा पहाड़ों की दूसरी बहुत बड़ी पाँत उत्तरी और दक्खिनी अमरीका में है। उत्तरी अमरीका के पच्छिमी किनारे के बराबर बराबर हरे भरे पहाड़ों की कई पाँतें हैं। यह पर्वतमालाएँ राकीज़ कहलाती हैं। राकीज़ पर कई प्रकार की इमारती लकड़ियों के घने जंगल हैं। यह जंगल देश की बहुत बड़ी सम्पत्ति हैं।

राकी पहाड़ से घिरा हुआ कोलोरेडो का पठार है। इसी पठार से होकर कोलोरेडो नाम की एक अनोखी नदी बहती है। यह नदी दो हज़ार मील तक बहुत ही सँकरी और गहरी घाटी में होकर गुज़रती है। इसकी मील भर गहरी घाटी की दीवारों में रंग-बिरंगी चट्टानों की तहें इतनी सुन्दर लगती हैं कि आदमी घंटों देखता रह जाता है।
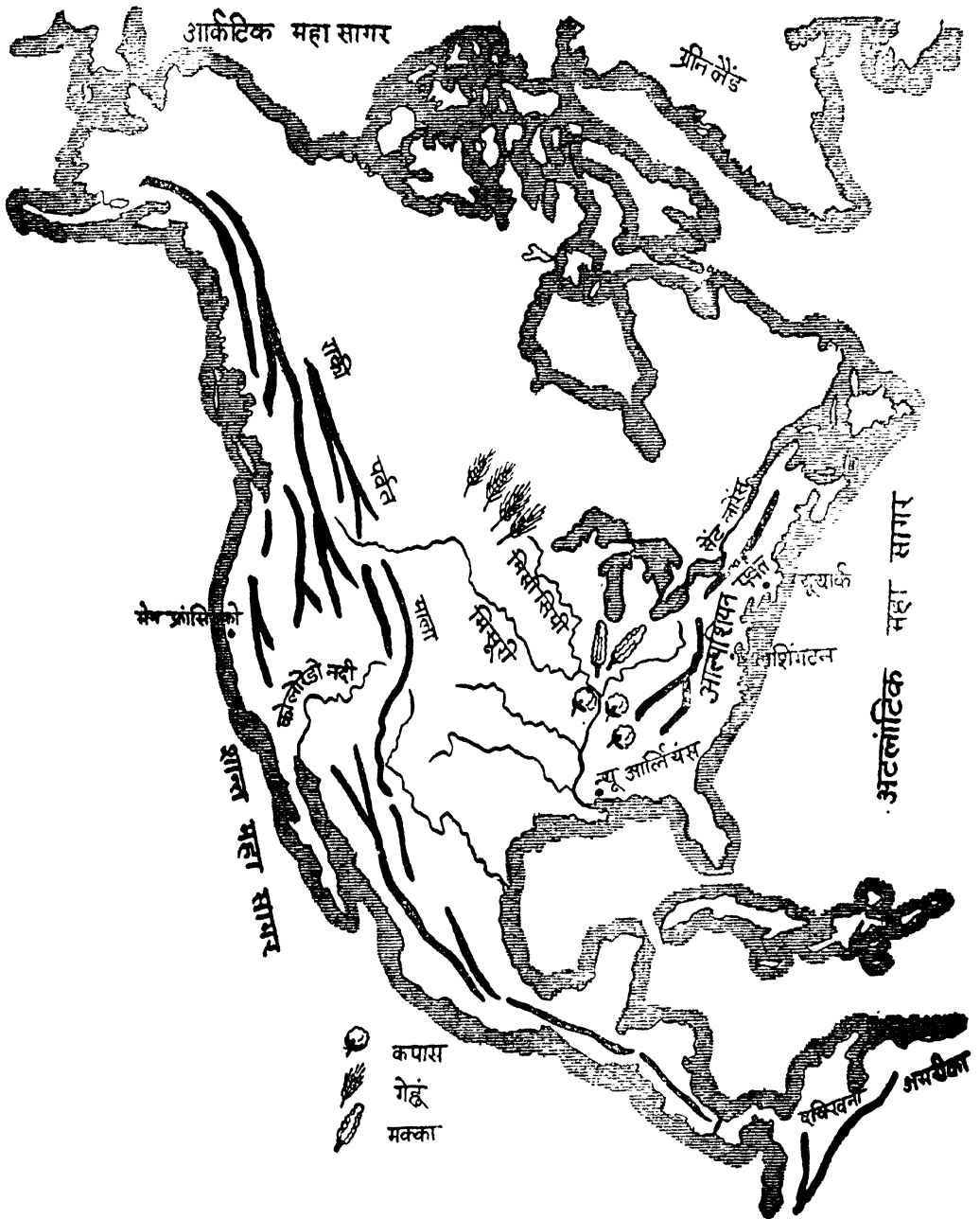
उत्तरी अमरीका के पूर्वी भाग में आलपशियन पहाड़ियाँ हैं जो अट-लांटिक के किनारे-किनारे दो हजार मील तक फैली हुई हैं। राकीज और

आल्पशियन पहाड़ियों के बीच उत्तरी अमरीका का बड़ा मैदान है। इस मैदान का बिलकुल उत्तरी भाग साइबेरिया के समान बहुत ठंडा और उजाड़ है। बाकी हिस्सा बहुत ही उपजाऊ है। यहाँ गेहूँ, मकई और कपास बहुतायत से होती है। इस मैदान को कई बड़ी बड़ी नदियाँ सींचती हैं। इनमें सबसे बड़ी और मुख्य नदी मिसीसिपी है। वह करोड़ों मन उपजाऊ मिट्टी लाकर मैदान में बिछा देती है। परन्तु व्यापार के लिए सेंट लारेंस नदी मिसीसिपी से अधिक उपयोगी है। यह नदी आल्पशियन पहाड़ियों के उत्तर में है और बहुत सी झीलों को समुद्र से जोड़ती है।

एशिया के बीच में हिमालय पहाड़ एक ऊँची दीवार की भाँति पच्छिम से पूरब को चला गया है, जिससे गंगा और सिंध का मैदान साइबेरिया की तीर सी चुभने वाली ठंडी हवाओं से बच जाता है। परन्तु अमरीका में कोई ऐसा पहाड़ नहीं है। इसलिए जाड़ों में उत्तर की ठंडी हवाएँ दक्खिन तक अपना असर डालती हैं और गर्मियों में दक्खिन की गर्म हवाएँ उत्तर तक चली जाती हैं। यही कारण है कि इस पूरे मैदान में जाड़े में अधिक जाड़ा और गर्मियों में अधिक गर्मी होती है।

उत्तरी अमरीका की पर्वतमाला राकीज़ की पाँतें दक्खिनी अमरीका में भी चली गई हैं। वहाँ इनका नाम एंडीज़ है।

दक्खिनी अमरीका के पूर्वी भाग में ब्राज़ील और गायना नाम के दो पठार हैं।

इन दोनों पठारों और एंडीज़ पर्वतमाला के बीच नदियों से लाई हुई मिट्टी का बहुत बड़ा मैदान है। इस मैदान में अमेजन नदी बहती है जो ३,५०० मील लम्बी है। यह संसार की सबसे बड़ी नदी है। कहीं-कहीं
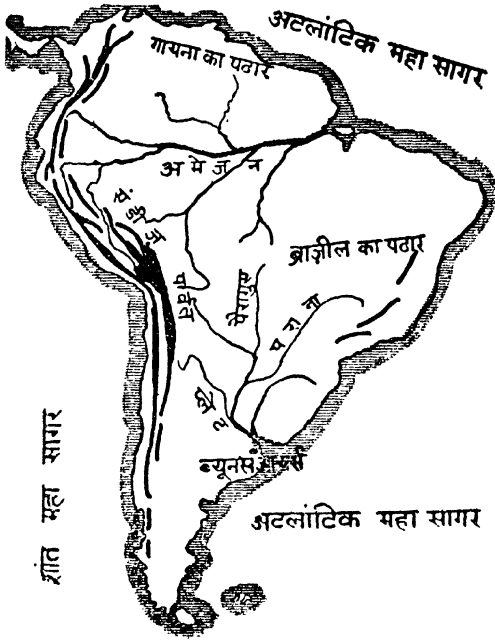
इसका पाट पचास मील से भी अधिक और गहराई १७५ फुट से भी ज्यादा है। अमेजन नदी ऐसे इलाके से होकर बहती है जहाँ पूरे साल बहुत गर्मी पड़ती है और वर्षा भी अधिक होती है। इसी कारण यह पूरा इलाका घने जंगलों से भरा हुआ है। इनमें इमारती लकड़ी और रबड़ पैदा होती है। लेकिन रास्ते न होने के कारण इनसे पूरा-पूरा लाभ नहीं उठाया जा सकता।

एशिया, यूरोप और अमरीका के बाद अब अगर हम अफ्रीका की ओर आएं, तो देखेंगे कि यहाँ ऊँचे ऊँचे पहाड़ बहुत कम हैं। केवल उत्तरी भाग में एक बड़ा पहाड़ एटलस है। यह पहाड़ यूरोप के आल्प्स पर्वत के बराबर समुद्र की सतह से कोई ढाई मील ऊँचा है और एवरेस्ट की ऊँचाई के
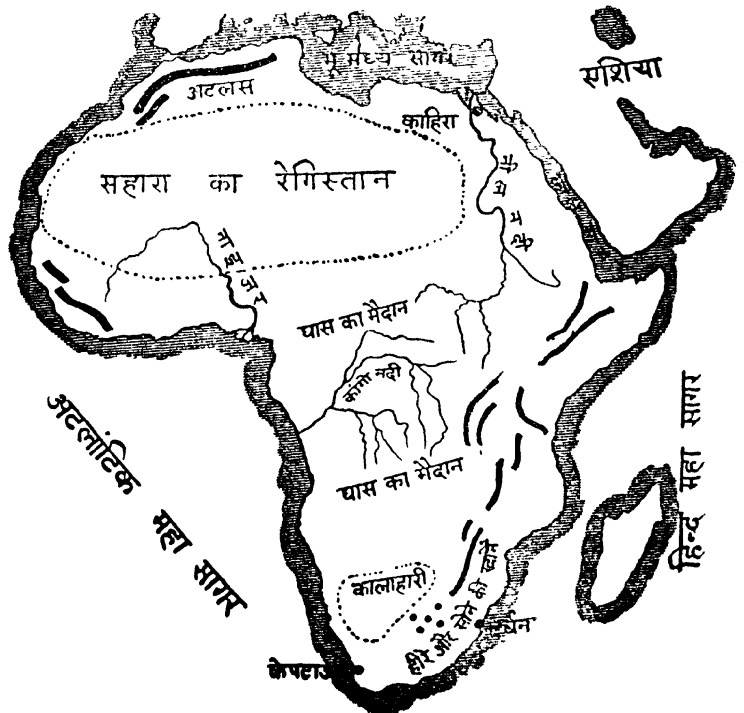
ग्राधे से भी कम है। अफ्रीका का बहुत बड़ा महाद्वीप प्रायः पूरा का पूरा एक लम्बा-चौड़ा पठार है। यह पठार उत्तर से दक्खिन चार हज़ार मील लम्बा है और पूरब और दक्खिन की ओर ऊँचा होता चला गया है।

एटलस के दक्खिन में हमें दुनिया का सबसे बड़ा रेगिस्तान दिखाई पड़ता है। यह सहारा है। यह हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दोनों के क्षेत्रफल से दुगुना है और उत्तरी अफ्रीका के आधे से अधिक भाग को घेरे हुए है। सहारा ने इस महाद्वीप के एक बड़े भाग को उजाड़ और भयावना बना दिया है।

अफ्रीका के उत्तरी-पूर्वी कोने में नील नदी बहती है। कहा जाता है कि "नील जिन्दगी का एक छोटा-सा सोता है जो किसी न किसी तरह मौत

के मुंह से बच निकलता है।" सच बात तो यह है कि मिस्र का इतना उपजाऊ होना, इतना भरा-पूरा होना और इतना आबाद होना इसी नदी पर निर्भर है। यदि नील नदी न होती, तो मिस्र भी रेगिस्तान होता।
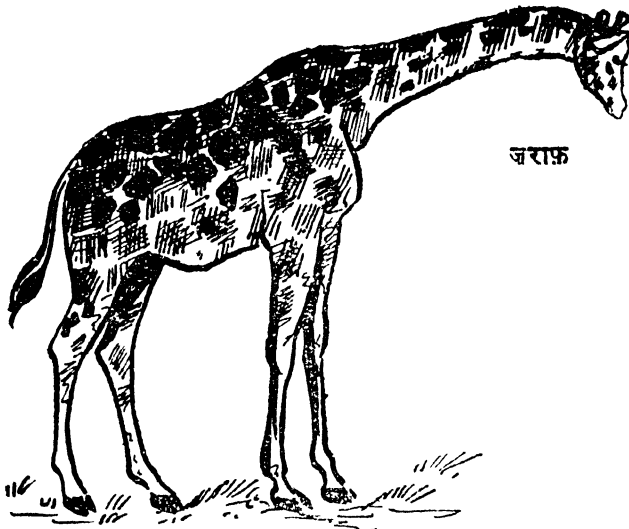
अफ्रीका में नील के सिवा और भी कई बड़ी बड़ी नदियाँ हैं। कांगो नदी घने, अँधेरे और भयानक जंगल में चक्कर काटती है। इस जंगल और इसके उत्तर और दक्खिन के मैदानों में बहुत से ऐसे जानवर पाए जाते हैं जो दुनिया में और कहीं नहीं मिलते, जैसे दरियाई घोड़ा, गैंडा, ज़ेबरा और
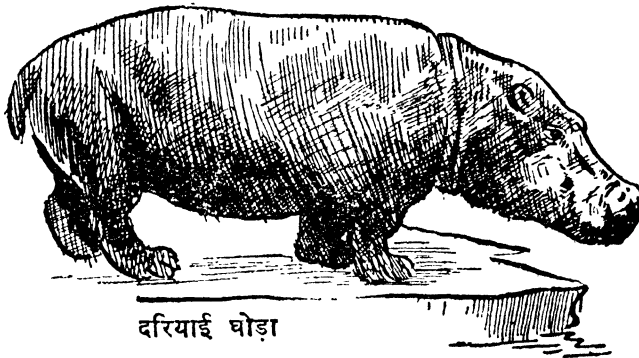
दरियाई घोड़ा

ज़राफ़। नाइजर नदी सहारा रेगिस्तान की दक्खिनी सीमा पर पच्छिम से पूरब की ओर धनुष के रूप में बहती हुई अटलांटिक महासागर से मिल जाती
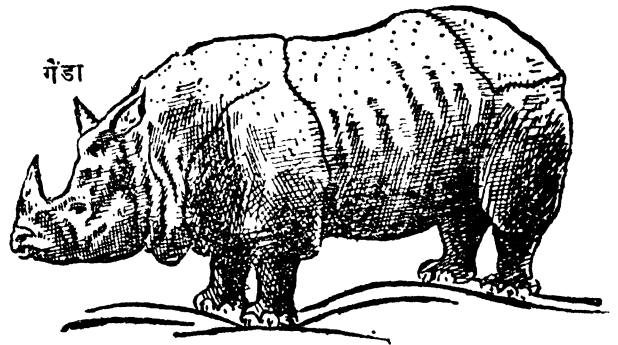
गैंडा

है। दक्खिनी अफ्रीका की प्रसिद्ध नदी ज़ेम्बज़ी है। जब यह विक्टोरिया

झरने पर तीन सौ साठ फुट की ऊँचाई से गिरती है, तो छींटों के बड़े-ब
बादल उड़कर सैंकड़ों फुट तक जा पहुँचते हैं।
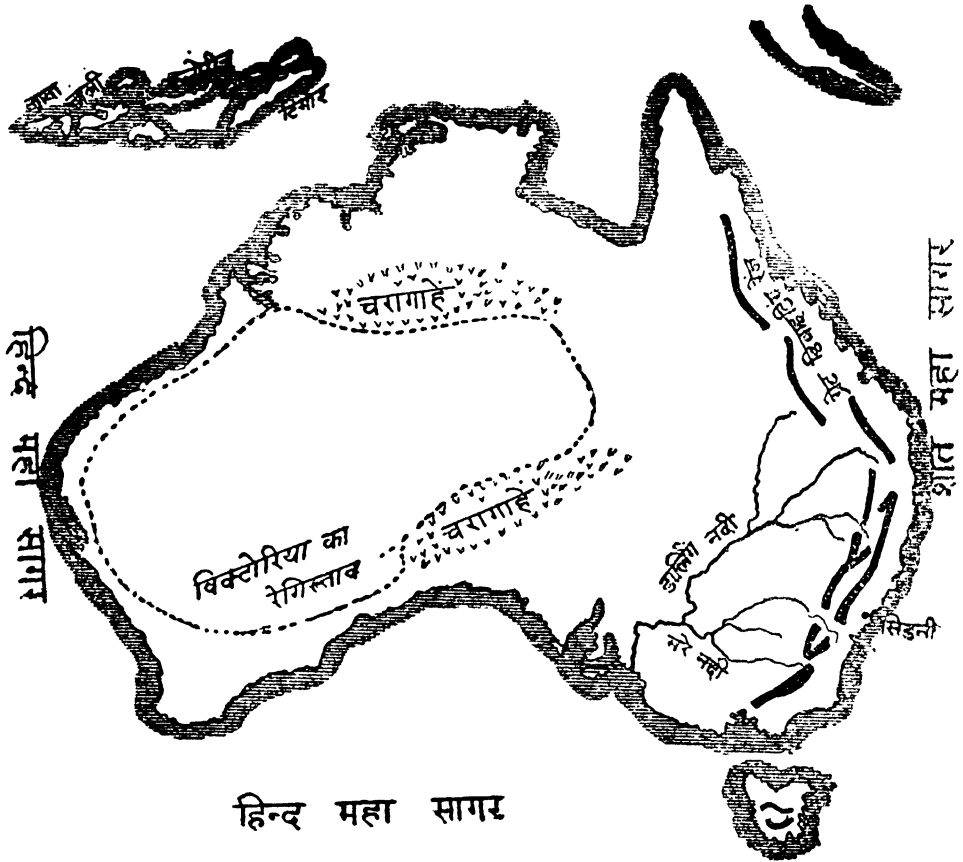
क्षेत्रफल की दृष्टि से अफ्रीका दुनिया का दूसरा बड़ा महाद्वीप है
एशिया सबसे बड़ा है और आस्ट्रेलिया सब से छोटा। आस्ट्रेलिया की धर
कहीं भी बहुत ऊँची नहीं है। ऊँची से ऊँची चोटी केवल सात हजार फ
है। पूर्वी किनारे पर दो हजार मील तक फैली पर्वतमाला 'ग्रेट डिवाइडि
रेंज' कहलाती है।

इस पूर्वी किनारे के सिवा यह पूरा का पूरा महाद्वीप बहुत ही सूर
है। नदियों में वैसे भी बहुत पानी नहीं होता। गर्मी में तो रहा-सहा

अच्छी गायें आस्ट्रेलिया की बड़ी सम्पति हैं
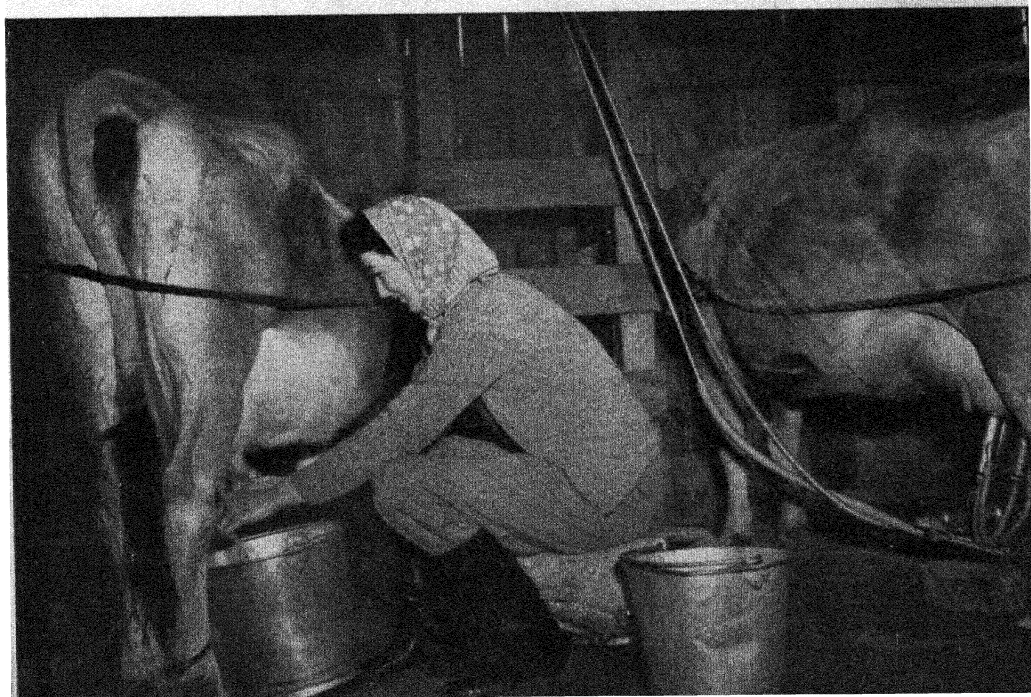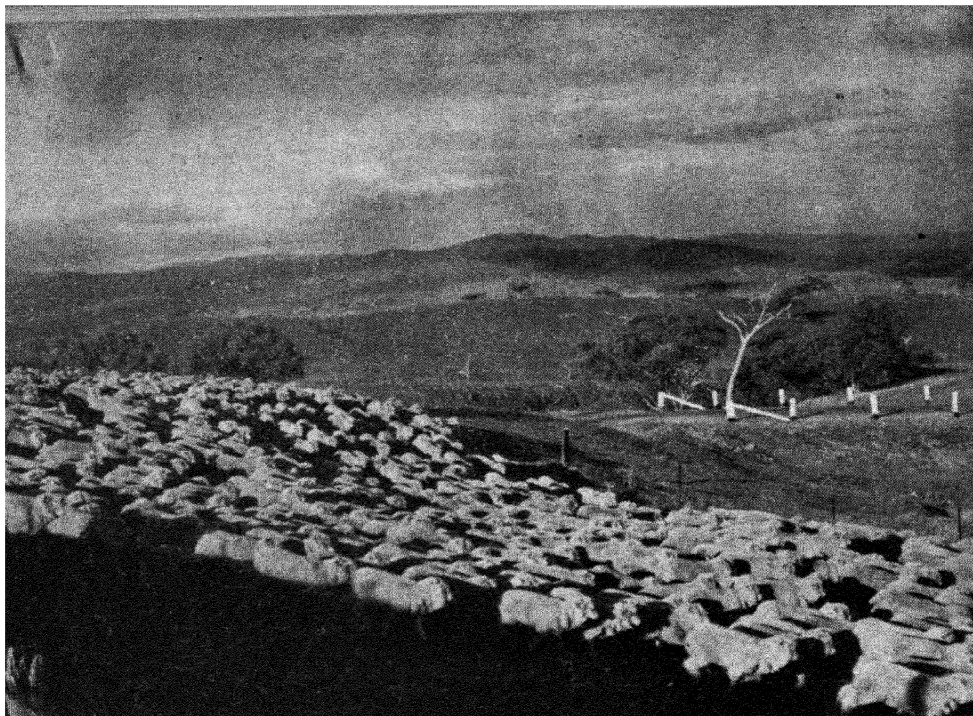
आस्ट्रेलिया की दूसरी बड़ी सम्पत्ति उसकी भेड़ें हैं
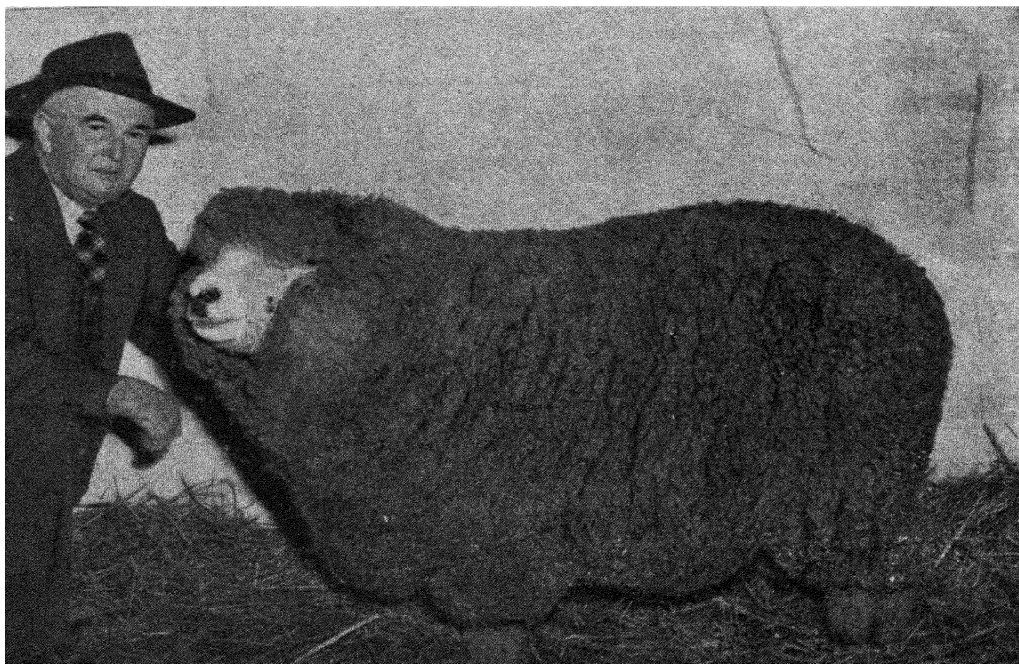
सूख जाता है । इन नदियों में केवल मरे और डार्लिंग ऐसी हैं जिनका नाम लिया जा सकता है । अधिकतर आबादी भी दक्खिनी पूर्वी किनारे पर है । पच्छिमी भाग पठार और रेगिस्तान है और वहाँ आबादी भी कम है ।

आस्ट्रेलिया के बड़े-बड़े मैदानों में भेड़ें और गायें बहुत पाली जाती हैं। यह देश ऊन, दूध और पनीर के लिए सारे संसार में प्रसिद्ध है। अच्छी जाति के इन पशुओं की यह देन है ।

क्षेत्रफल में आस्ट्रेलिया से दुगुना एक महाद्वीप अंटार्कटिका है । यह दक्खिनी ध्रुव में फैला हुआ है । अंटार्कटिका बारहो मास बर्फ से ढँका रहता है और बिलकुल उजाड़ है । पिनग्युन चिड़ियों के सिवा यहाँ दूर-दूर तक किसी और जीव-जन्तु के दर्शन नहीं होते ।
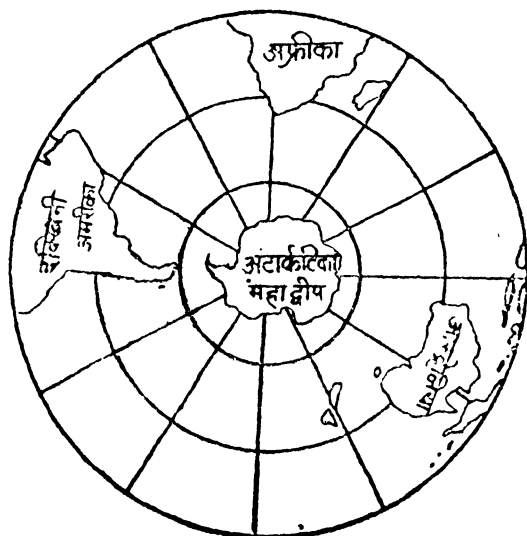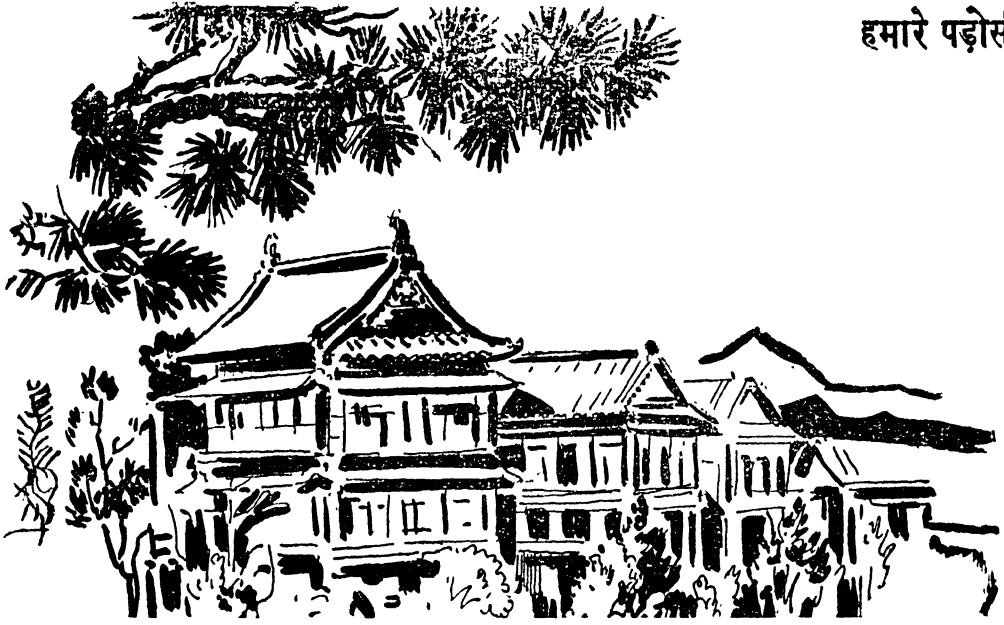
४

चीन

हमारा पड़ोसी चीन आबादी में दुनिया का सबसे बड़ा देश है। यहां लगभग साठ करोड़ लोग बसते हैं। यह विशाल देश हिमालय के लगभग ३७ लाख वर्ग मील में फैला हुआ है। पहाड़ों का एक सिलसिला देश को दो भागों, उत्तरी चीन और दक्खिनी चीन में बांटता है। चीन की भूमि बहुत उपजाऊ है। उत्तरी चीन में गेहूँ अधिक होता है। वर्षा बहुत होने के कारण दक्खिनी चीन में सब देशों से अधिक चावल पैदा होता है। यहां शहतूत के पेड़ भी बहुत हैं। रेशम, चावल, चाय, सूत, समूर और अंडे चीन से दूसरे देशों को भेजे जाते हैं।

अब तक की खोज से पता चलता है कि मिस्र, सुमेरिया, सिन्ध घाटी

और चीन की सभ्यताएं दुनिया में सब से पुरानी हैं।

कोई पाँच हजार साल पहले नील नदी, दजला-फरात और सिन्ध के किनारे सभ्यता का विकास हो रहा था। लगभग उसी समय दक्खिन-पच्छिम की ओर से कुछ लोग चीन पहुँचे और ह्वांगहो नदी के किनारे किनारे बस गए। उन्होंने 'याव' नाम के एक आदमी को अपना राजा चुन
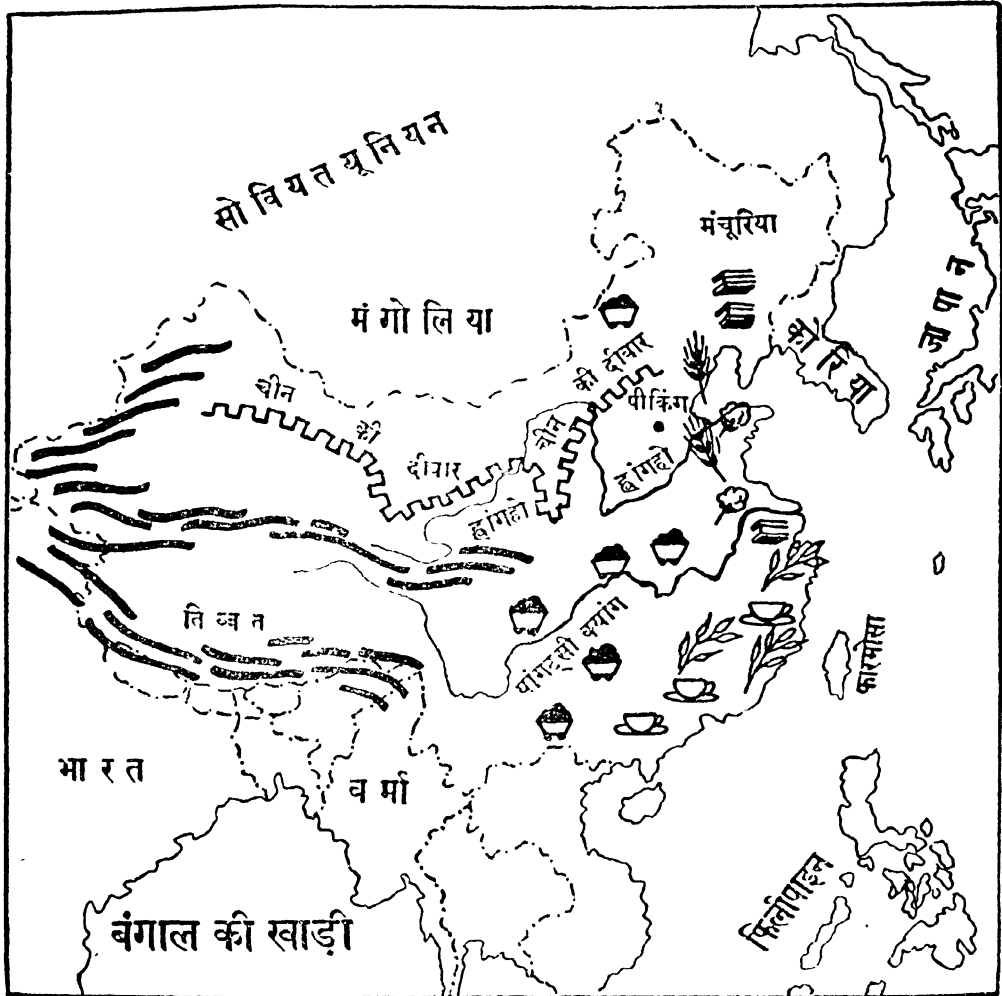
चीन की दीवार

लिया। याव जब बूढ़ा हुआ, तो उसने एक योग्य आदमी को राज का उत्तराधिकारी बनाया। 'याव' के बाद उसने और फिर उसके परिवार वालों ने कोई ४०० साल तक चीन पर राज किया। इसके बाद चीन में 'शुंग' और 'चाओ' वंशों का राज रहा। यह बात ईसा से कोई पांच सौ बरस पहले की है। इसी समय चीन में कन्फ्यूशस और लाओत्जे नाम के दो बड़े दार्शनिक और सुधारक हुए। 'चाओ' वंश के बाद चीन का विशाल देश टुकड़े टुकड़े हो गया। फिर सम्राट् 'चिन' ने पूरे देश पर अधिकार कर लिया। इस देश का नाम 'चीन' इसी सम्राट् के नाम पर पड़ा। चीन की मशहूर दीवार भी उसी समय बनी। यह दीवार संसार की सात अनोखी चीज़ों में से एक है।

जिस समय चीन में चिन वंश का राज शुरू हुआ, उस समय भारत में सम्राट् अशोक का राज था। यह ईसा से कोई ढाई सौ साल पहले की बात है।

चिन वंश के बाद कई और वंशों ने चीन पर राज किया। इनमें

तुंग वंश का समय चीन के इतिहास का सब से शानदार जमाना समझा जाता है। इन्होंने लगभग ६०० ई० से ६०० ई० तक कोई तीन सौ साल राज किया। इस काल में न सिर्फ सभ्यता और संस्कृति उन्नति की चोटी पर पहुँच चुकी थी, बल्कि जनता बड़ी सुखी थी। प्रसिद्ध यात्री हुएनसांग इसी काल में भारत आया था। इस समय भारत में सम्राट् हर्ष वर्द्धन राज करते थे।

तुंग वंश के बाद चीन के इतिहास में दूसरा जगमगाता युग मिंग वंश का है। मिंग का अर्थ भी चमकदार है। इन्होंने चौदहवीं सदी से लेकर सत्तरहवीं सदी तक राज किया। इस समय देश में शान्ति रही और विदेशों से भी अच्छे सम्बन्ध रहे। भारत में सोलहवीं और सत्तरहवीं सदी में मुग़लों का जमाना था।

चीन का आख़िरी राजवंश 'मांचू' था। इनका शासन १९११ ई० तक रहा। मांचू वंश में कांग ही सब से योग्य राजा हुआ है। इसने चीनी भाषा का एक बहुत बड़ा शब्द कोश और कई सौ जिल्दों का विश्वकोश तैयार कराया।

सम्राटों के समय की दीवार जिसमें ९ अजगर बने हैं। अलग-अलग रंगों की पालिश की हुई ईंटें बहुत भली लगती हैं।
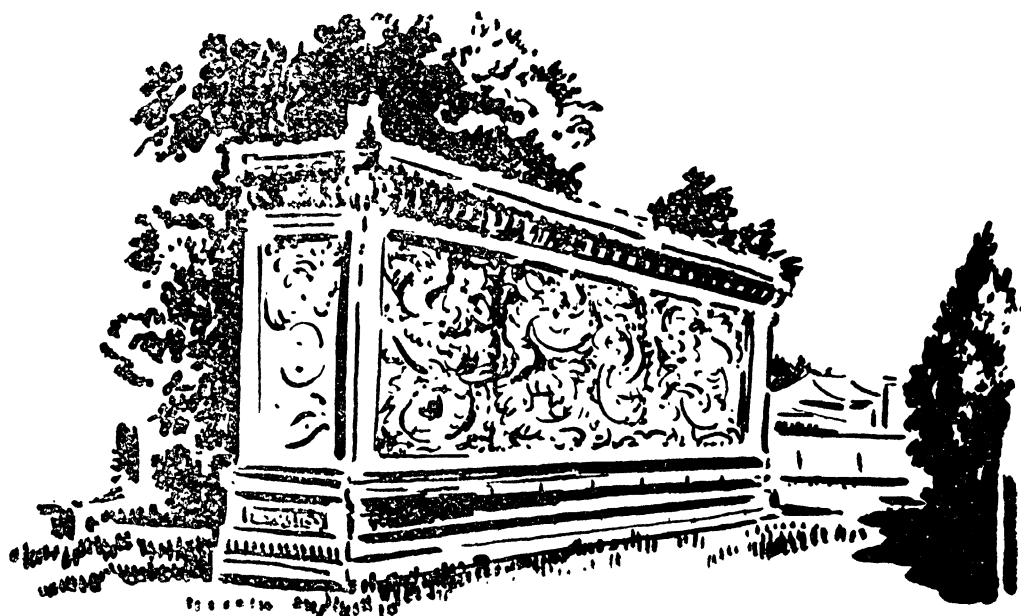
१६११ ई० में चीन में एक भारी क्रांति हुई ग्रौर मांचू शासन का ग्रन्त हो गया। इसी के साथ राजतन्त्र भी समाप्त हुग्रा ग्रौर एक राष्ट्रीय
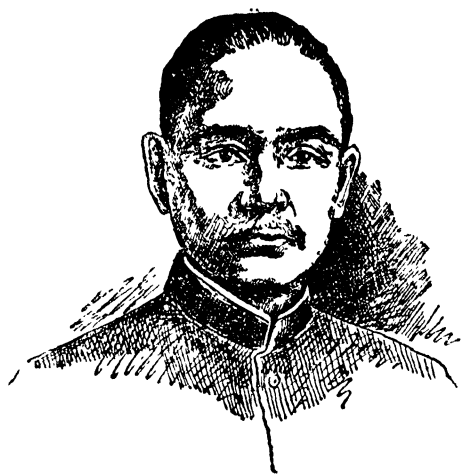
सरकार बनी। यह क्रांति चीन के उस समय के राष्ट्रीय दल कोमिनतांग की ग्रोर से हुई थी। डाक्टर सन यात सेन इसके सब से बड़े नेता थे। देश के सब लोग इस दल के पीछे थे।

१६२५ ई० में डाक्टर सन यात सेन की मृत्यु के बाद कोमिनतांग ग्रौर चीन की कम्यूनिस्ट पार्टी में मतभेद हो गया। बहुत दिनों तक दोनों का झगड़ा चलता रहा। १६४६ ई० में कम्यूनिस्टों की विजय हुई ग्रौर चीन में एक नया लोक-राज बना। राज काज चलाने के लिए एक जन-सलाहकार-समिति की स्थापना की गई। इस समिति में चीन के सब दलों के ६६२ प्रतिनिधि थे। इस समिति ने चीन का सामन्ती ढांचा खत्म करके एक ऐसा ग्रार्थिक प्रोग्राम बनाया जिस पर सब दल सहमत थे। इसी समय चीन में नई केंद्रीय सरकार का चुनाव हुग्रा। माग्रोत्से तुंग इसके पहले प्रधान चुने गए ग्रौर पीकिंग को चीन की राजधानी बनाया गया। पहली ग्रक्तूबर, १६४६ ई० को चीन के 'नए लोकराज' का एलान हुग्रा।

नए चीन में खेती की ग्रोर बहुत ग्रधिक ध्यान दिया जा रहा है। जमीन्दारियां खत्म कर दी गई हैं ग्रौर हर किसान ग्रपनी ज़मीन का मालिक है। सिंचाई का भी ग्रच्छा प्रबन्ध किया गया है। ग्रब चीन ग्रपनी

ज़रूरत से बहुत अधिक अन्न पैदा कर रहा है।

चीन में खनिज पदार्थ बहुत हैं। यहाँ की खानों से हर साल कोई दो करोड़ टन कोयला निकाला जाता है। लोहा, तांबा, टीन, सीसा, और कांसा चीन के दूसरे खनिज पदार्थ हैं। इनसे पूरा लाभ उठाने के लिए बहुत से कारखाने खोले

गए हैं। चीन के कुछ बड़े बड़े कारख़ानों में सरकार की पूंजी लगी है। पर लोगों को निजी तौर पर या मिल कर व्यापार करने का भी अधिकार है। इस समय चीन में कपड़ा, काग़ज़, रबड़ और पटसन के कारख़ाने काफ़ी खुल गए हैं। घरेलू दस्तकारियों में भी चीन बहुत बढ़ा हुआ है। यहां के कारीगर

चीनी के बर्तनों पर बहुत ही बारीक और सुन्दर बेलबूटे बनाते हैं, रेशम पर ज़री का काम बड़ा सुन्दर करते हैं, और तरह तरह की खादी भी बुनते हैं।

नए चीन में तनख़्वाहें अनाज की क़ीमत के हिसाब से दी जाती हैं, इसीलिए अनाज का भाव घटने बढ़ने के साथ ही तनख़्वाहें भी घट बढ़ जाती हैं। मान लीजिए कि किसी की तनख़्वाह एक मन अनाज की क़ीमत के बराबर है। यदि इस समय अनाज का भाव दस रुपए मन है, तो उसे दस रुपये दिए जाएंगे। अनाज के दाम बीस रुपए मन हो जाएं, तो उसकी तनख़्वाह भी बीस रुपए हो जाएगी। अनाज के दाम घट जाने पर तनख़्वाह भी उसी हिसाब से घट जाएगी।

चीन में जनता के स्वास्थ्य की देखभाल का भी अच्छा प्रबन्ध किया जा रहा है। गांवों में लगभग १,८०० स्वास्थ्य केन्द्र हैं। गर्भवती स्त्रियों की देखभाल के लिए १,००० से अधिक अस्पताल हैं। लगभग ४० मेडिकल कालिज हैं जिनमें २५,००० से ऊपर विद्यार्थी डाक्टरी की शिक्षा पा रहे हैं। चीन दुनिया में सब से अधिक आबादी वाला देश है। उसका इलाका भी बहुत दूर दूर तक फैला हुआ है। केन्द्रीय सरकार इस तरफ ध्यान दे रही है कि मुल्क के सब लोगों को अच्छी डाक्टरी सहायता पहुँचाई जा सके।

चीन में शिक्षा का प्रसार तेज़ी से हो रहा है। प्राइमरी स्कूलों में पांच करोड़ से अधिक बच्चे शिक्षा पाते हैं। देश में छोटी बड़ी साठ यूनिवर्सिटियां हैं। परन्तु विद्यार्थियों की संख्या अभी लगभग डेढ़ लाख है। यह आशा की जाती है कि कुछ ही वर्षों में शिक्षा और बढ़ जाएगी और बहुत कम

草原上

चीनी लिपि का नमूना

लोग अनपढ़ रह जाएंगे ।

चीन का साहित्य बहुत पुराना है । चीनी लेखक बराबर साहित्य का भंडार बढ़ाते आए हैं । इस समय भी बहुत अच्छा साहित्य रचा जा रहा है। खेती बाड़ी में होने वाले सुधार, बाल विवाह का विरोध, स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार, देश-प्रेम और संसार में शान्ति, जैसे विषयों की ओर लेखकों का ध्यान अधिक है ।

चीन की कला भी उसके इतिहास की भांति ही बहुत पुरानी है। चीन के चित्रकार काग़ज़ या रेशम की लम्बी पट्टियों पर भांति भांति के चित्र बनाते हैं, जो अपनी बारीकी और मोहकता के लिए सारे संसार में प्रसिद्ध हैं ।

गाना बजाना, थियेटर और फ़िल्म चीनियों के मनोरंजन के साधन हैं । गाने और नाटकों पर इनके जीवन की गहरी छाप है । इन लोगों को खेल-कूद और तैराकी का भी बहुत शौक है ।

चीन ने अपने पांच हज़ार साल के इतिहास में बड़े बड़े काम किए हैं । कुतुबनुमा, काग़ज़, छपाई के टाइप, बारूद और रेशम की ईजाद का सेहरा इसी देश के सिर है ।
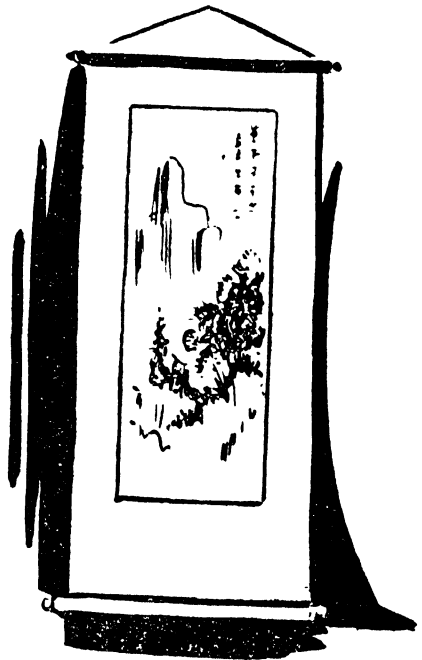
५

इन्डोनेशिया

हमारे देश के दक्खिन-पूरब में हिन्द महासागर से शान्त हमासागर तक छोटे बड़े टापुओं की एक लड़ी फैली हुई है। यह लगभग ३,००० मील लम्बी और १,१०० मील चौड़ी है। टापुओं के इस समूह का नाम 'इन्डोनेशिया' है। गिनती में ये टापू कोई तीन हज़ार हैं। इनमें बड़े टापू सुमात्रा, जावा, सेलीबीज़, बोर्नियो और न्यूगिनी हैं। न्यूगिनी सब से बड़ा है।

इन टापुओं की अधिकतर भूमि पथरीली है। संसार में ज्वालामुखी पहाड़ों का सबसे बड़ा सिलसिला इन्डोनेशिया ही में है। इन ज्वालामुखियों से निकले हुए लावे ने यहां की भूमि को बहुत उपजाऊ बना दिया है। इन्डोनेशिया की कुल भूमि का एक तिहाई भाग खेती के योग्य है। इस पर
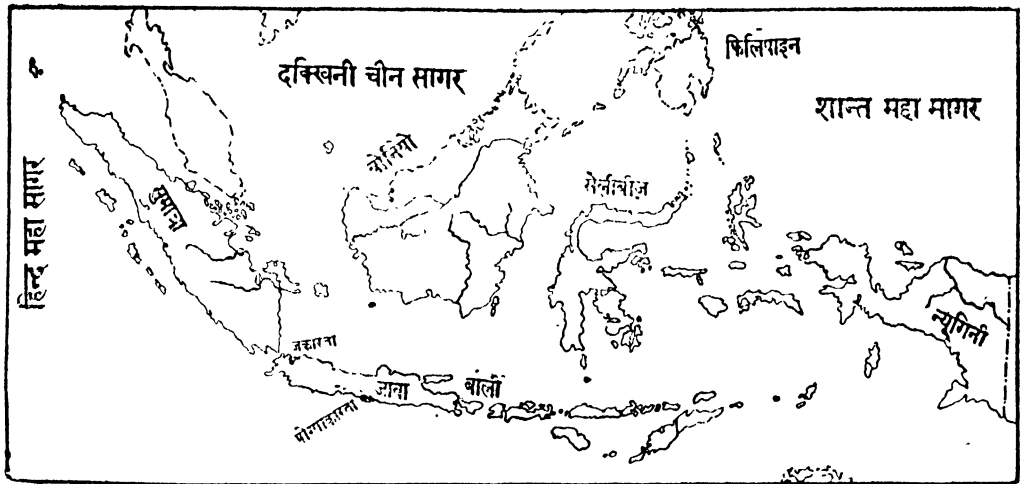
धान, मकई, साबूदाना, चाय, क़ाफ़ी और सिन्कोना बोए जाते हैं। इन्डोनेशिया के चारों ओर के समुद्र में मछलियां बहुत पाई जाती हैं। यहाँ से दूसरे देशों को भेजी जाने वाली चीज़ों में पेट्रोलियम, टिन, रबड़, नारियल और चाय ख़ास हैं।
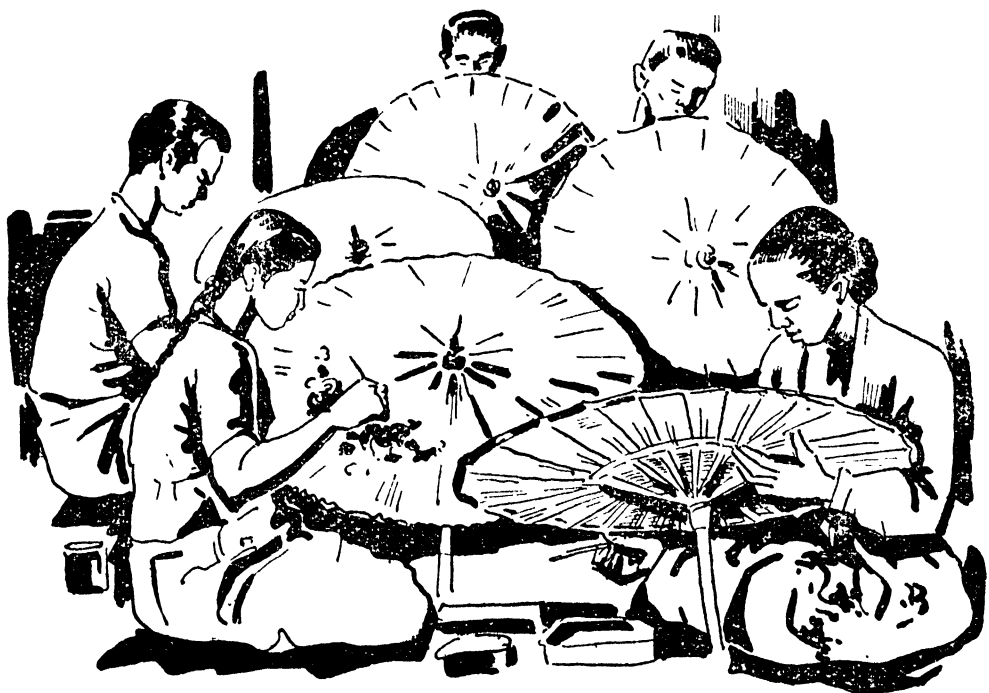
इन्डोनेशिया में झीलों और नदियों की भरमार है। नदियां गहरी नहीं हैं, पर बहती बहुत तेज़ हैं। बड़े बड़े जंगल और घने बन भी इन टापुओं में जगह जगह हैं। इनमें शेर, गैंडा, सूअर और दूसरे भयानक जानवर घूमते रहते हैं। जंगली गाय, सांप और तरह तरह के ज़हरीले कीड़े भी पाये जाते हैं। रंग रंग के चमकीले और सुन्दर पक्षी भी इधर उधर उड़ते दिखाई देते हैं। यहां के एक पक्षी को बहुत सुन्दर होने के कारण 'स्वर्ग का पक्षी' कहा जाता है।

इन्डोनेशिया के टापू ज्वालामुखी पहाड़ों, नारियल के ऊँचे ऊँचे वृक्षों, निर्मल झीलों, और समुद्र तट के कारण बहुत ही सुन्दर दिखाई देते हैं। मनुष्य के हाथों ने स्थान स्थान पर प्रकृति की इस सुन्दरता को और अधिक बढ़ा दिया है।

इन टापुओं के चारों ओर पानी ही पानी है। इसलिए जलवायु अच्छा और मौसम सुहावना रहता है। बरसात लगभग सारे साल होती है। यहां गर्मी ९० से ९६ डिग्री तक रहती है। यानी न अधिक सर्दी, न अधिक गर्मी।

इन्डोनेशिया में अलग अलग रंग रूप के आदमी बसते हैं। इनमें 'मलायी' जाति के लोग अधिक हैं। पिछली जन-गिनती में इन टापुओं

की आबादी कोई आठ करोड़ थी।

इन्डोनेशिया में पुरुष अधिकतर निकर या तहमत पहनते हैं। शहरी स्त्रियों का पहनावा यूरोपियन ढंग का है।

इस देश में कोई पच्चीस भाषाएं बोली जाती हैं, जिन में मलायाई भाषा का प्रचार सब से अधिक है। यही इन्डोनेशिया की राष्ट्र-भाषा भी है।

यहाँ की सभ्यता पर बहुत से देशों की सभ्यताओं का प्रभाव पड़ा है। लेकिन अरब सभ्यता का असर अधिक है। हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म और ईसाई धर्म ने भी बारी बारी से अपना असर डाला है। यहाँ सब धर्मों को मानने वाले रहते हैं। इनमें मुसलमान सब से अधिक हैं।

नाच की कला में इन्डोनेशिया बहुत समय से प्रसिद्ध रहा है। बाली टापू के नाच का दुनिया में दूर दूर तक नाम है।

इन्डोनेशिया के बड़े शहर जकरता, जोग्याकारता और सराबिया

हैं। जोग्याकारता इस देश की राजधानी है। इन्डोनेशिया में कई अच्छे बन्दरगाह हैं। इनमें यहां के व्यापार-केन्द्र सराबिया का बन्दरगाह "टॅंजिंग पैराक़" सब से बड़ा और खास है।

यह देश अब स्वतंत्र लोक-राज है। १७ अगस्त, १९४५ ई० को इन्डोनेशियाई लोक-राज बना था। इस लोक-राज की नींव वहां के लोगों के अनुसार पांच बातों पर है—परमात्मा में विश्वास, सारे राष्ट्र के एक होने की भावना, लोक-राज की भावना, न्याय और मानवता। इसी को वे लोग 'पंच शिला' कहते हैं।
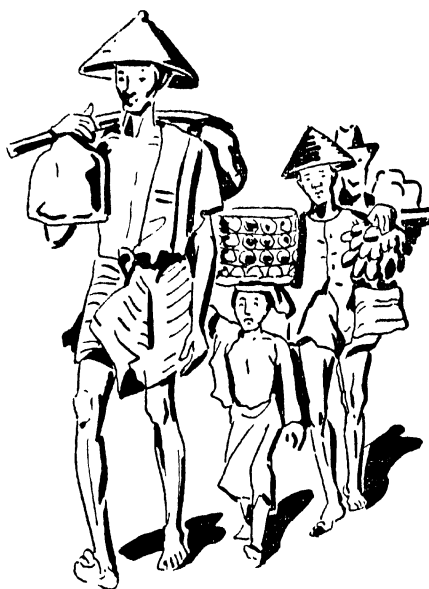
बोरोबोदुर के स्तूप का एक दृश्य। यह इन्डोनेशिया की कला का सुन्दर नमूना है।
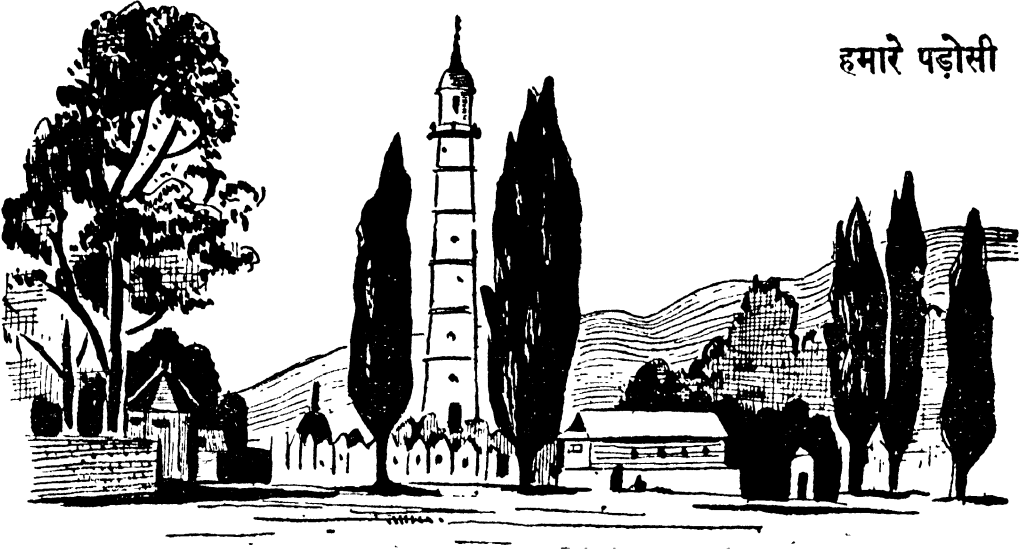
६

नेपाल

भारत के उत्तर में, कुमाऊं और सिक्किम के बीच, पहाड़ों, जंगलों और उपजाऊ घाटियों की एक पट्टी है। यह कोई सवा पांच सौ मील लम्बीहै। इसकी चौड़ाई कहीं १४० मील है और कहीं ६० मील। इसी का नाम नेपाल है। नेपाल के उत्तर में तिब्बत और दक्खिन में हमारे देश के उत्तर-प्रदेश और बिहार के इलाके हैं। नेपाल के दक्खिनी भाग में जंगल और खेती के योग्य ज़मीन है। इसे तराई का इलाक़ा कहते हैं। उत्तरी भाग पहाड़ी है। यह ऊँचा नीचा इलाक़ा उत्तर में तिब्बत की सीमा को छूता है। धौलगिरि, कंचनजंघा और एवरेस्ट की ऊँची ऊँची चोटियाँ इसी भाग में हैं। एवरेस्ट दुनिया की सबसे ऊँची चोटी है। इसकी ऊँचाई समुद्र
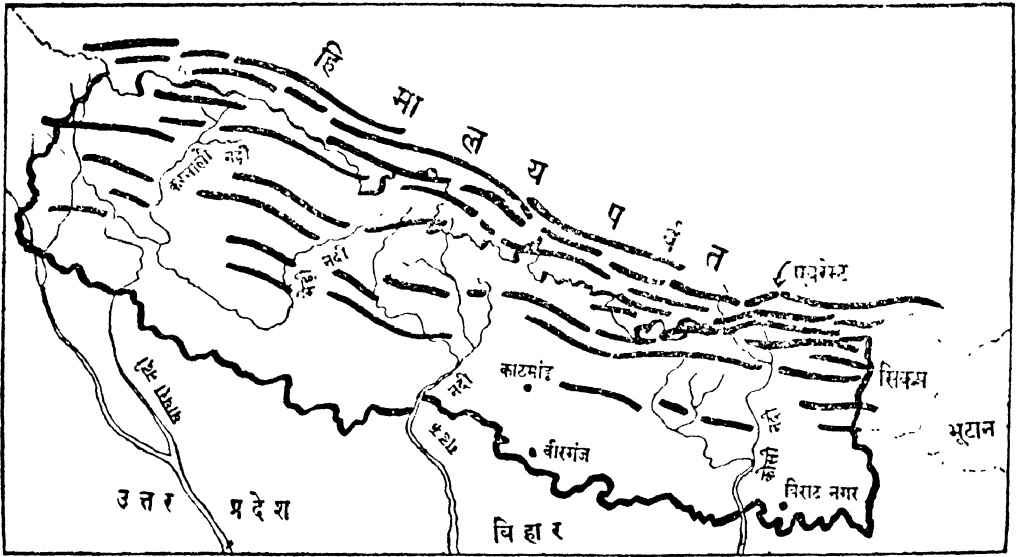
की सतह से २९,००२ फुट या करीब-करीब साढ़े पाँच मील है।

नेपाल की उपजाऊ घाटियों में कपास, चावल, गेहूँ, गन्ना और तम्बाकू की अच्छी खेती होती है। कई तरह की दालें भी बोई जाती हैं। फल और तरकारियाँ भी खूब होती हैं। साल और शीशम के घने जंगल नेपाल की बड़ी दौलत हैं। तरह तरह के बांस भी यहां पाए जाते हैं। दो हज़ार फुट से चार हज़ार फुट तक की ऊँचाई वाले भागों में चाय भी पैदा होती है।

भारत की तरह नेपाल में भी

तीन मौसम हैं--सरदी, गरमी और बरसात। पर यहां गर्मी ज्यादा नहीं पड़ती। हाँ, बारिश खूब होती है। जंगल अधिक होने का एक कारण यह वर्षा भी है। इन जंगलों में बड़े-बड़े जानवर, जैसे शेर, चीते, हाथी, भेड़िये, लकड़बग्घे बहुत हैं। कस्तूरी यानी मुश्क वाला हिरन नेपाल ही के पहाड़ों पर पाया जाता है। पालतू जानवरों में भैंसों की संख्या अधिक है।

नेपाल की धरती के नीचे तांबा, जस्ता, सीसा, आदि का ख़ज़ाना भरा पड़ा है। यहां भूरे रंग का कोयला और चूने का पत्थर भी काफ़ी मिलता है। कहीं कहीं संगमरमर भी पाया जाता है।

नेपाल की आबादी कोई ८०-९० लाख है। अधिकतर नेपाली मंगोल जाति के हैं। उत्तर में ऊँचे ऊँचे पहाड़ों की गोद में रहने वाले लोग या तो तिब्बती हैं, या मिली जुली नस्ल के हैं। ये "भोटिये" कहलाते हैं। दक्खिन की ओर ब्राह्मणों और क्षत्रियों के परिवार हैं। इनके पुरखे किसी समय भारत से गए थे। नेपाल वालों पर बौद्ध और हिन्दू, दोनों धर्मों का असर है, इसीलिए ये लोग इन दोनों धर्मों में विश्वास रखते हैं। नेपाल में २,७०० से अधिक मन्दिर हैं।

नेपाल की तराई में अधिकतर गोरखाली रहते हैं। यही वह गोरखा जाति है, जिसकी बहादुरी और वफ़ादारी की कहानियां संसार के कोने कोने में कही जाती हैं।

यहाँ कई भाषाएं बोली जाती हैं। इनमें 'परबतिया' या पहाड़ी भाषा का अधिक प्रचार है। यह हिन्दी से बहुत मिलती जुलती है। भोटिये
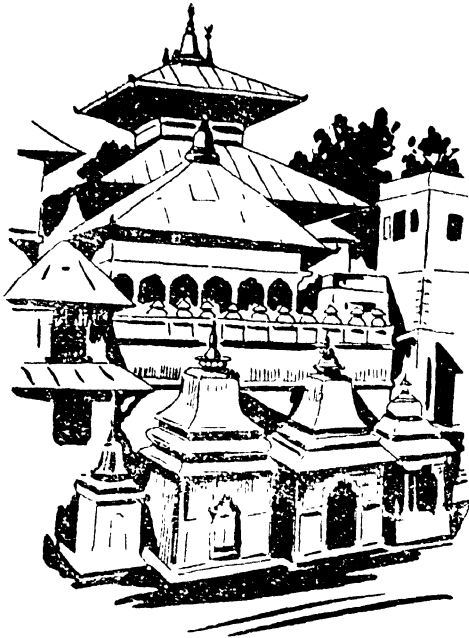
पशुपतिनाथ का मन्दिर

तिब्बती भाषा बोलते हैं और लिखने में भी उसी भाषा की लिपि काम में लाते हैं।

काठमांडू नेपाल की राजधानी है। यहीं नेपाल के महाराजा रहते हैं। पहाड़ों की गोद में बसा यह सुन्दर नगर नेपाल के राजनीतिक और सामाजिक जीवन का केन्द्र है। १९५० ई० तक नेपाल में राजतंत्र था। वहाँ के महाराजा और उनके मन्त्री जो राणा कहलाते थे, राज करते थे। मन्त्री का पद खानदानी था और उनको बहुत अधिकार थे। लेकिन इसके बाद नेपाल में लोक-राज या जनता के राज की मांग होने लगी। महाराज ने जनता का यह अधिकार मान लिया। अब नेपाल लोक-राज के पथ पर आगे बढ़ रहा है।

नेपाल में उद्योग-धन्धे अधिक नहीं हैं। विराट नगर में दो जूट मिलें, एक शक्कर मिल, एक दियासलाइयों का कारखाना और एक सूती मिल है। वीरगंज नेपाल का दूसरा कारबारी नगर है। यहाँ एक दियासलाइयों का कारखाना और एक सिगरेट बनाने का कारखाना है। धान कूटने वाली मिलें तो तराई में और भी कई जगह हैं।

शिक्षा का प्रसार कम हुआ है। स्कूलों की संख्या अधिक नहीं है। कालेज काठमांडू और वीरगंज में हैं। अभी कोई विश्वविद्यालय नहीं खुला

है। यहां के कालेजों का सम्बन्ध पटना विश्वविद्यालय से है। नेपाल के विद्यार्थी ऊँची शिक्षा लेने भारत भी आते हैं। हमारे देश के साथ नेपाल का दोस्ती का सम्बन्ध बहुत पुराना है।

कुछ समय पहले तक नेपाल के बारे में लोगों की जानकारी बहुत कम थी। अब भारत से काठमांडू तक अच्छी सड़क बन गई है और यात्रियों के लिये बड़ी सुविधा हो गई है। नेपाल वासी भी अब भारत और अन्य देशों को आसानी से आ जा सकते हैं। सिंचाई और बिजली की एक योजना भी यहाँ आरम्भ हो चुकी है। इसके सफल होने पर नेपाल उन्नति के पथ पर तेजी से आगे बढ़ेगा।

७

एवरेस्ट पर विजय

हिमालय पहाड़ भारत के उत्तर में है। इसकी सबसे ऊंची चोटी का नाम एवरेस्ट है। यह नाम एक अंग्रेज़ सर जार्ज एवरेस्ट के नाम पर पड़ा। उन्होंने सन् १८४१ ई० में हिमालय का सर्वे किया था। एवरेस्ट साहब इस चोटी के ऊपर नहीं चढ़े। उन्होंने केवल नीचे से और दूर से इस चोटी को देखा और कई यंत्रों की सहायता से इसकी ऊंचाई का ठीक ठीक हिसाब लगाने की कोशिश की। एवरेस्ट साहब के अनुसार इस चोटी की ऊंचाई २६,००२ फुट है। इतनी ऊंचाई पर किसी मनुष्य का रहना तो क्या, वहां पहुँचना भी जान पर खेलना है, और जान पर खेलना हिम्मत वालों ही का काम है। पिछले तीस बत्तीस बरस से

बराबर अलग अलग देशों के लोग इस चोटी पर चढ़ने की कोशिश करते रहे। पर हर बार उन्हें निराशा का सामना करना पड़ा। फिर भी साहसी लोग हिम्मत न हारे। अन्त में २९ मई, सन् १९५३ ई० को मनुष्य इस चोटी पर पहुँच ही गया।

यूरोप के लोगों ने एवरेस्ट पर सबसे पहली चढ़ाई की कोशिश १९२१ ई० में की। चढ़ाई करने वाले लंदन की भूगोल सोसायटी के कुछ लोग थे। हावर्ड बैरी इनके नेता थे। ये लोग तिब्बत की ओर से गए थे। इन्होंने चारों ओर घूम फिर कर नक्शे बनाए और प्रसिद्ध यात्री मेलोरी नें चोटी पर चढ़ने का रास्ता मालूम किया। पर उस साल यह दल ऊपर तक नहीं गया। दूसरे साल एक और दल ने जनरल ब्रूस की अगुवाई में इस चोटी पर चढ़ने की कोशिश की। मौसम साथ देता तो यह दल जरूर सफल हो जाता। ये लोग दार्जिलिंग की तरफ से जा रहे थे और चढ़ते चढ़ते २६,९८५ फुट की ऊँचाई तक पहुँच गए थे। पर एकाएक मौसम ख़राब हो गया। मानसूनी झक्कड़ चलने लगे और इन्हें लाचार होकर लौटना पड़ा। वापसी में बरफ़ का एक तोदा ऐसा फिसला कि उसमें इनके साथ के सात कुली दब कर मर गए। ये जानें तो गईं, पर मनुष्य पहली बार लगभग २७,००० फुट की ऊँचाईं पर पहुँच गया। सन् १९२४ में एवरेस्ट पर तीसरी चढ़ाई की गई। इस बार इस दल के दो वीर मेलोरी और ईर्विन २८,००० फुट से भी ऊपर जा पहुँचे। परन्तु न ये वापस आए और न इनका कोई समाचार ही मिला। कुछ भी पता न चलने पर यह मान लिया गया कि ये दोनों वीर सदा के लिए हिमालय की गोद में सो गए। यह तीसरी चढ़ाई एवरेस्ट विजय के इतिहास में बड़े महत्व की है,

इसलिए कि एक तो मेलोरी और इर्विन जैसे वीर इस चढ़ाई में शहीद हुए। दूसरे मनुष्य पहली बार २८००० फुट से भी ऊपर पहुँच गया।

मंजिल अब भी दूर थी और अभी बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना था। मनुष्य ने अभी हार न मानी थी। वह बराबर कोशिश करता रहा। १९३३, १९३५, १९३६, और १९३८ ई० में साहसी पुरुषों के अलग अलग दलों ने इस चोटी पर विजय पाने की कोशिश की। १९३६ ई० में इंगलैंड के दो हवाई जहाज एवरेस्ट के ऊपर उड़े। १९५२ ई० की गर्मियों में स्विटजरलैंड का एक दल एवरेस्ट विजय के लिए चला, पर मौसम की कठोरता के कारण इसे भी निराश होना पड़ा। यह दल २८,२५० फुट तक ही चढ़ पाया।

एवरेस्ट पर चढ़ने की कोशिश मई के महीने में की जाती रही है, क्योंकि इन दिनों सर्दी कुछ कम और मौसम अच्छा रहता है। और सालों की तरह १९५३ ई० की मई में एवरेस्ट पर एक और चढ़ाई की गई। इस का संबंध ब्रिटिश हिमालय दल से था। इस के सरदार कर्नल हंट थे। हर बार चढ़ने वालों को कुछ तिब्बतियों या नेपालियों की सहायता लेनी पड़ती थी। इस बार तेनसिंह शेरपा नाम के एक युवक ने केवल सहायता ही नहीं दी, बल्कि उसने चोटी पर सबसे पहले चढ़ जाने का मान भी पाया। शेरपा जाति के लोग पहाड़ों पर चढ़ने में बड़े निपुण होते हैं। ये लोग
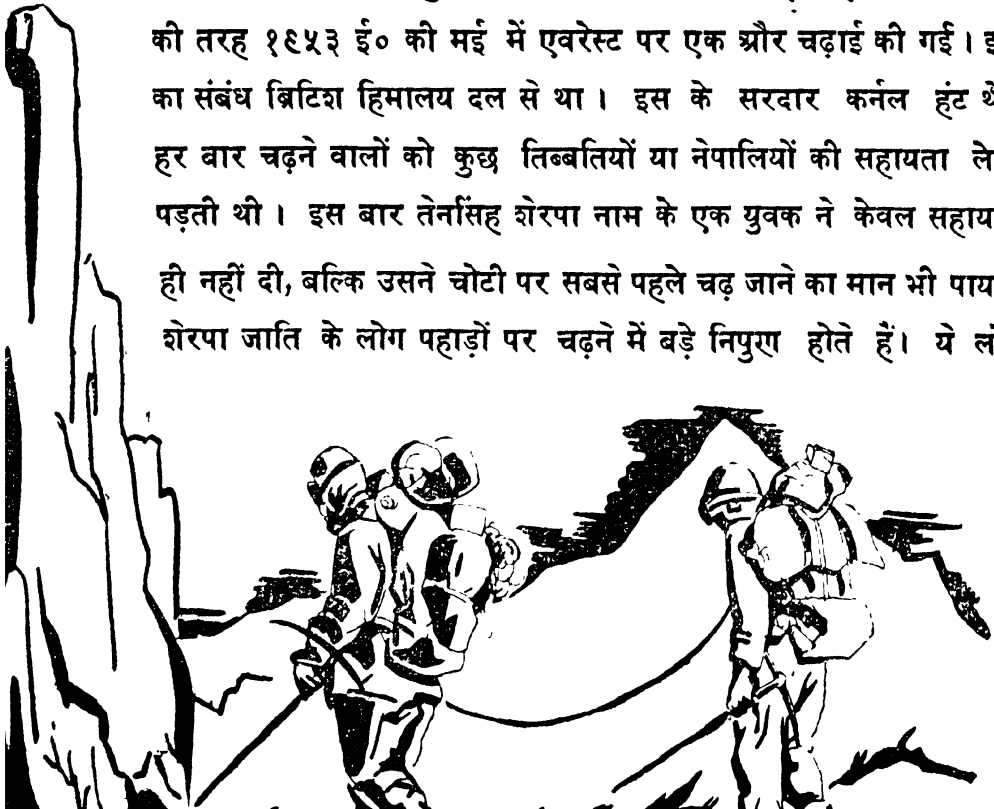
तिब्बती हैं, पर बहुत दिनों से नेपाल में बस गए हैं। तेनसिंह इन्हीं शेरपाओं में से एक हैं।

२९ मई, १९५३ का दिन मनुष्य के साहस की कहानी में महान् दिन था। इसी दिन तेनसिंह और उनके साथी कप्तान हिलेरी ने अपने कदम एवरेस्ट पर रखे। इन्होंने चोटी पर संयुक्त राष्ट्र संघ (यू० एन० ओ०) का झंडा और भारत, नेपाल और ब्रिटेन के राष्ट्रीय झंडे फहराए।

पिछले दलों के अनुभवों को सामने रखकर इस दल ने अच्छे वैज्ञानिक, भूगोल जानने वाले, डाक्टर, फोटो उतारने वाले और पत्रकार अपने साथ लिए थे। चौदह आदमियों की यह टोली हर तरह से एक दूसरे का हाथ बटाती रही।

ऊँचे पहाड़ों की चढ़ाई में आक्सीजन की कमी सबसे बड़ी रुकावट होती है। आक्सीजन एक तरह की गैस है जो हवा में रहती है। सभी जीवधारियों के लिए यह बहुत जरूरी है। २६,०००फुट की ऊँचाई पर यह गैस इतनी कम रहती है कि साँस लेना भी कठिन हो जाता है। इसलिए पहाड़ों

पर चढ़ने वाले अपने साथ आक्सीजन से भरे सेलेंडर या बेलन रखते हैं और जब आक्सीजन की कमी जान पड़ती है, तो साँस लेने में इससे सहायता लेते हैं। कर्नल हंट और उनके साथी आक्सीजन के काफी सेलेंडर अपने साथ ले गए थे।

एवरेस्ट पर ऐसी ठंडी बर्फीली हवाएं चलती हैं कि अच्छे से अच्छा गरम कपड़ा भी बेकार हो जाता है। इस दल के लोग अपने साथ ऐसे विशेष ढँग के कपड़े तैयार करा के ले गए जो शरीर को हवा, पानी और बर्फ से बचाने के साथ साथ हलके भी थे। इसी प्रकार विशेष ढंग के जूते भी बनवाए गए जिनपर सर्दी और बर्फ का प्रभाव न पड़े। इन चीजों के सिवा संदेश भेजने वाले यंत्रों, खाने के डिब्बों, चूल्हों, खेमों, दवाइयों, एवरेस्ट के नकशों और दूसरी सैकड़ों चीजों का भी प्रबन्ध किया गया।

यह सारा सामान पहले नेपाल की राजधानी काठमांडू पहुँचाया गया। यहाँ से सारे सामान के साथ यह दल थ्यांग बोचे को रवाना हुआ जो १७ दिन का पैदल का रास्ता है। यहाँ पहला कैम्प बनाया गया। थ्यांग-बोचे कोई १२,००० फुट की ऊँचाई पर है। यहाँ से एवरेस्ट की चोटी तक आठ कैम्प और लगाए गए। ये कैम्प इस लिए लगाए जाते हैं कि यदि कोई बीमार पड़ जाए, तो उसे नीचे के कैम्प में भेज दिया जाए। रात में यह सोने के भी काम आते हैं। सभी कैम्पों में खाने की चीजों और रात बिताने के लिए कपड़ों का उचित प्रबन्ध था। आखिरी कैम्प २७,६०० फुट की ऊँचाई पर लगाया गया जिससे रात बिताने के बाद दूसरे दिन सवेरे ही चोटी पर पहुँचने का प्रयत्न किया जाए।
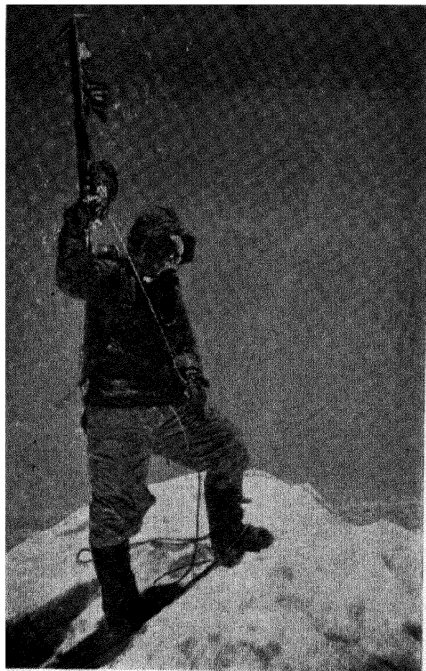
तेनसिंह एवरेस्ट की चोटी पर
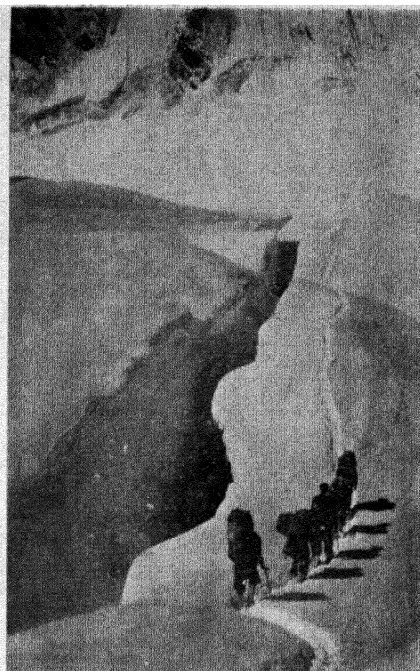
बर्फ से ढका रास्ता

थ्यांगबोचे में पहला कैम्प

एक कठिन चढ़ाई

तेनसिंह और हिलेरी
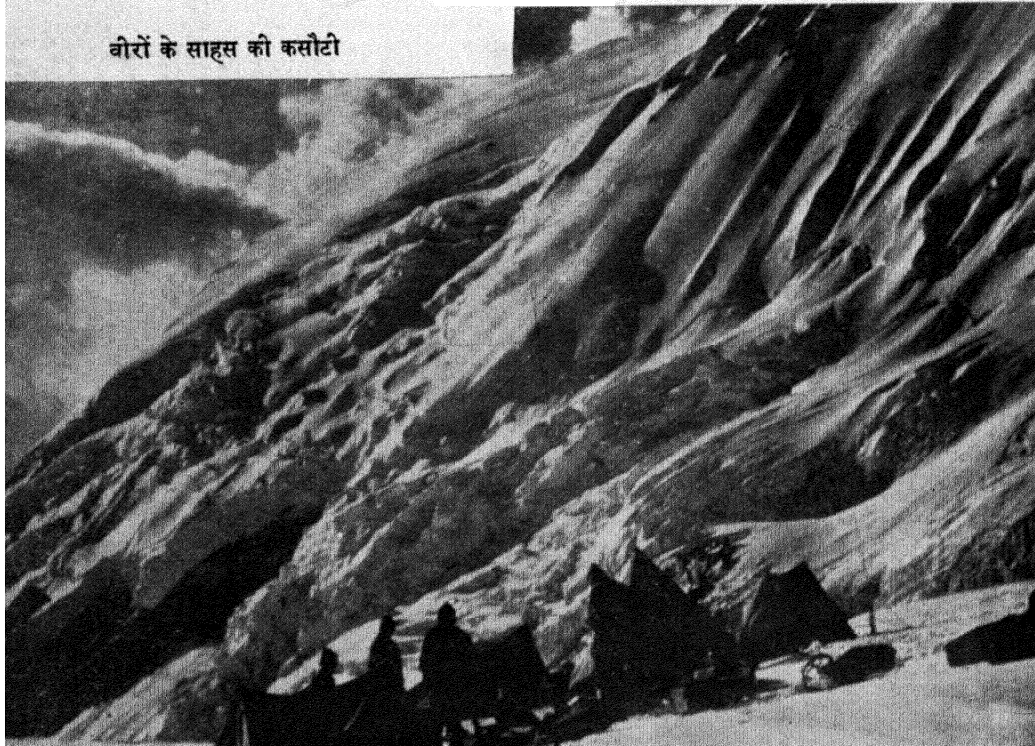
वीरों के साहस की कसौटी
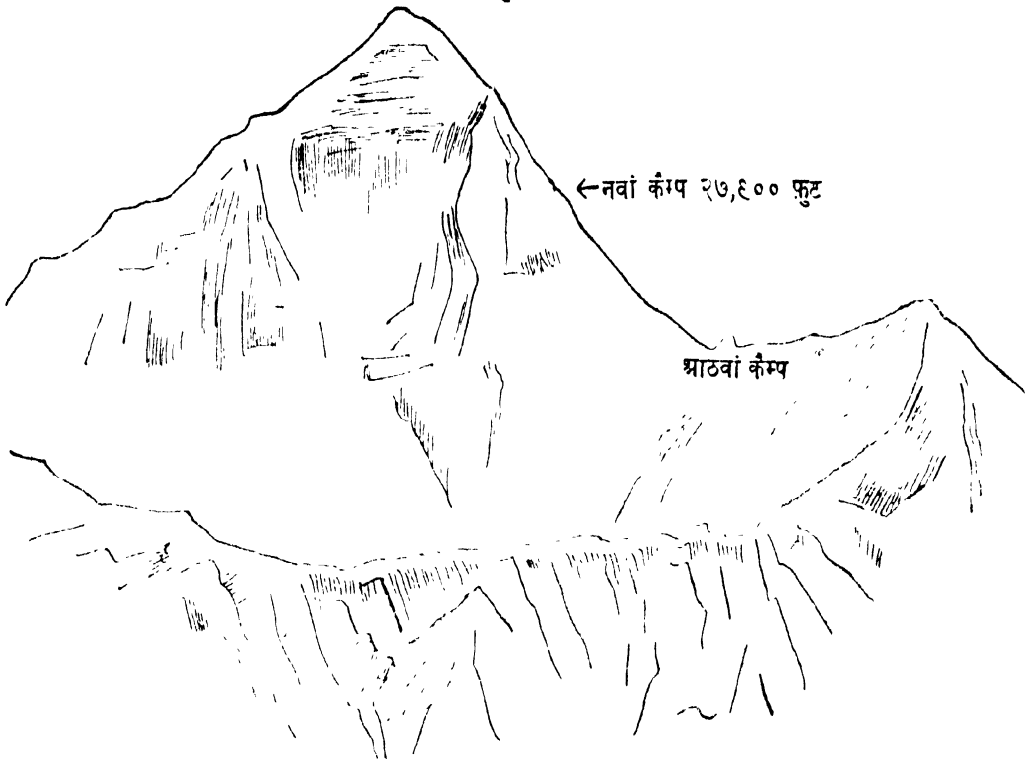
२६ मई को तेनसिंह और हिलेरी सवेरे ही नवें कैम्प से एवरेस्ट विजय को चल पड़े और ११½ बजे चोटी पर पैर रखे। यहाँ वे लोग २० मिनट तक रहे। जिधर नजर जाती थी, उधर बर्फ ही बर्फ दिखलाई पड़ती थी। दूर दूर पर हिमालय की बर्फ से ढँकी दूसरी चोटियाँ नजर आ रही थीं।

एवरेस्ट पर कुल ग्यारह बार चढ़ाई की गई। इन में से दस बार सफलता न मिली। परन्तु मनुष्य हार नहीं मानता। असफलता से अनुभव प्राप्त करता है। इसी का फल था कि अन्त में वह एवरेस्ट की चोटी पर पहुँच गया।

८

श्रीकृष्ण

श्रीकृष्ण आज से कई हजार बरस पहले महाभारत के समय में हुए थे। वह ईश्वर के अवतार माने जाते हैं। कहते हैं कि जब दुनिया में पाप बहुत बढ़ जाता है, भगवान आप धरती पर उतरते हैं। उनका काम यह होता है कि वह लोगों को फिर से धर्म का ठीक रास्ता दिखलाएं।

श्रीकृष्ण की जीवन-कहानी महाभारत और भागवत पुराण में मिलती है। उन दिनों उग्रसेन मथुरा के राजा थे। वह यदुवंश के थे। उनकी बेटी देवकी का विवाह वसुदेव से हुआ था। उग्रसेन के बेटे का नाम कंस था। वह बड़ा अत्याचारी और पापी था। अपने बाप को क़ैद में डालकर

वह आप राजा बन बैठा। एक बार उसे यह आकाशवाणी हुई थी कि 'हे कंस, देवकी का पुत्र ही तुम्हारे नाश का कारण होगा।' यह सुनते ही कंस ने अपनी बहन देवकी और बहनोई वसुदेव को भी कैद में डाल दिया। वसुदेव और देवकी के सात बच्चे हुए, और उन सातों को कंस ने मरवा डाला। आठवीं बार कृष्ण का जन्म हुआ। उस दिन भादों बदी अष्टमी

थी। आधी रात के समय उसका जन्म हुआ, और उसी समय वसुदेव बच्चे को उठा कर किसी तरह कैदखाने से निकल गए। यमुना पार गोकुल नाम का गांव था। वहां के मुखिया नंद वसुदेव के मित्र थे। वसुदेव अपने मित्र के घर पहुँचे और बालक कृष्ण को उनके सुपुर्द कर दिया।

नन्द और उनकी पत्नी यशोदा ने कृष्ण को अपने बच्चे की तरह लाड़ के साथ पाला। कृष्ण का बचपन गोकुल में और लड़कपन पास ही के गांव वृन्दावन में ग्वाल-बालों के बीच बीता। कृष्ण ने अपने बचपन में ही बड़े साहस के काम कर दिखलाए। कई अत्याचारियों को उन्होंने मारा। गाँव वालों को बड़े बड़े संकटों से बचाया। गोवर्द्धन उठाने की कहानी बहुत प्रसिद्ध है। कृष्ण बड़े ही सुन्दर और होनहार बालक थे।

सभी नर नारी उन्हें प्यार करते थे। भक्तों और कवियों ने कृष्ण की बाल लीला और राधा-कृष्ण के प्रेम का बहुत ही सुन्दर ढंग से बखान किया है।

बड़े होकर कृष्ण मथुरा लौटे। उन्होंने कंस को मारा और लोगों ने चैन की सांस ली। कंस को मार कर वह आप राजा नहीं बने, बल्कि कंस के पिता उग्रसेन को कैद से निकाल कर गद्दी पर बैठाया। कुछ समय बाद कृष्ण जो द्वारका में जा बसे और वहाँ से भारत की राजनीति में भाग लेना शुरू किया और बहुत जल्दी वे उस पर छा गए।

इसी समय कुरु वंश में कौरवों और पांडवों के बीच, जो आपस में चचेरे भाई थे, झगड़े शुरू हो गए। श्रीकृष्ण ने इन झगड़ों को मिटाने की बहुत कोशिश की, पर दोनों तरफ़ की भूलों से झगड़े बढ़ते ही गए। अन्त में जब लड़ाई की नौबत आ गई, तो श्रीकृष्ण ने पांडवों का साथ दिया, क्योंकि पांडवों का पक्ष सच्चा था। हस्तिनापुर का कुरुवंश भारत में सब

से बलवान राजकुल था। इसलिए जब ये झगड़े बढ़े, तो आसपास के सब राजा इनकी लपेट में आ गए। किसी ने एक का साथ दिया, तो किसी ने दूसरे का। अन्त में कुरुक्षेत्र के मैदान में दो बड़ी सेनाएं जमा हो गईं।
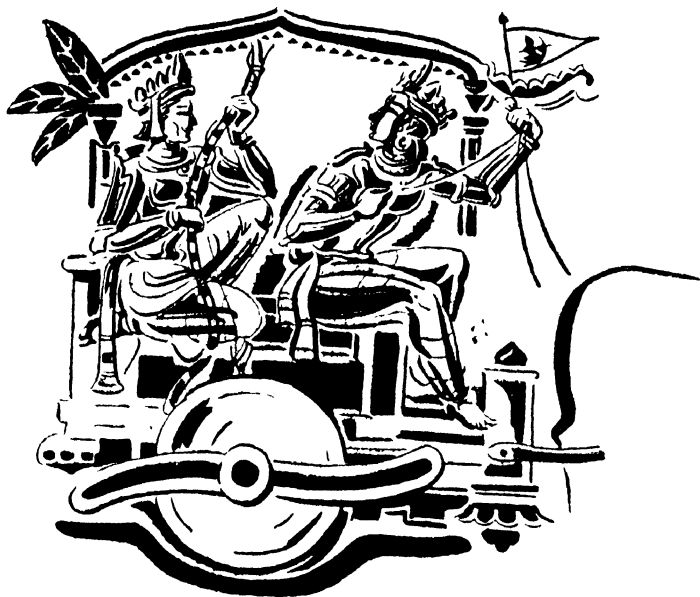
अठारह दिन तक घमासान का युद्ध हुआ। दोनों ओर के बड़े बड़े वीर काम आए। यही लड़ाई महाभारत की लड़ाई कहलाती है। इसमें जीत पांडवों की हुई, पर इस जीत का सेहरा श्रीकृष्ण के सिर था। उन्होंने पांडवों के सेनापति अर्जुन का रथ स्वयं हांका। समय समय पर पांडवों को अपनी अनमोल सलाहें दीं, और कई तरह के संकटों से निकाला। लड़ाई के शुरू ही में अर्जुन के मन में तरह तरह की शंकाएं और डर पैदा होने लगे थे। उसी समय श्रीकृष्ण ने अर्जुन को वह अमर उपदेश दिया, जिसे आज सारा संसार 'भगवत् गीता' के नाम से जानता है।

महाभारत की लड़ाई के बाद श्रीकृष्ण द्वारका लौट गए और वैराग्य का जीवन बिताने लगे। अब उनका काम पूरा हो चुका था। वहीं कुछ बरस बाद जंगल में अचानक किसी शिकारी का तीर लग जाने से उनकी संसार लीला पूरी हुई।

श्रीकृष्ण हमारे सामने तीन रूपों में आते हैं। पहले अपन बाल रूप में, जब निडर और साहसी बालक कृष्ण ने अपनी प्रतिभा से सबको चकित कर दिया। उस समय वे आसपास के गांवों के नेता बने, और लोगों को पाप और अत्याचार का सामना करना सिखलाया।

इसके बाद कृष्ण हमारे सामने एक राजनीतिज्ञ के रूप में आत हैं। देश के एक कोने में बैठ कर उन्होंने भारत को एक सूत्र में बांधने की कोशिश की।

उनका तीसरा रूप इन दोनों रूपों से कहीं बढ़ कर है। इसमें वह हमारे सामने एक बहुत बड़े ज्ञानी और मार्गदर्शक के रूप में आते हैं। गीता का जो ज्ञान उन्होंने अर्जुन को कुरुक्षेत्र में दिया, उसमें मानव जीवन के हर पहलू पर बड़ी गहराई से विचार किया गया है।

उस समय वेदों की रचना हो चुकी थी। उपनिषदों का सिलसिला भी, जिनमें ईश्वर, जीव और जगत पर बहुत गहराई से विचार किया गया है, काफ़ी आगे बढ़ चुका था। श्रीकृष्ण ने इन सबका निचोड़ लेकर अपने निजी अनुभव से उसे चमका दिया। गीता उसी उपदेश का नाम है। यह उपदेश किसी एक जाति, देश, समय या एक धर्म वालों के लिए नहीं है। सचाई की खोज करने वाला चाहे कोई हो, गीता से वह बहुत कुछ सीख सकता है और लाभ उठा सकता है।

श्रीकृष्ण के उपदेशों को थोड़े में इस प्रकार कहा जा सकता है—आत्मा अमर है। शरीर के कटने, जल जाने, या किसी तरह भी नष्ट हो जाने से आत्मा नष्ट नहीं होती। ईश्वर एक है। वही सबका ईश्वर है। दुनिया के सब धर्म अपने अपने ढंग से आदमी को

उसी एक ईश्वर तक पहुँचाते हैं। धर्म का असली सार किसी तरह की पूजा-पाठ, रीति-रिवाज या कर्मकांड नहीं है। असली सार है अपने आप को जीतना, अपनी इन्द्रियों को काबू में रखना, सुख दुख और हानि लाभ सब में एक रस रहना, सबके साथ सच्चाई और नेकी का बर्ताव करना, सबकी भलाई के कामों में लगे रहना, और एक ईश्वर में अपने मन को लगाना। फल की चाह न कर कर्त्तव्य पर डटे रहना, यह गीता के उपदेशों का सार है।

१

मुहम्मद साहब

मुहम्मद साहब का जन्म सन् ५७० ई० में अरब देश के मक्का शहर में हुआ था। उन की माता का नाम आमिना और पिता का नाम अब्दुल्ला था। उनके ख़ानदान के लोग या तो मक्के के पुराने तीर्थ-स्थान, काबे के महन्त होते थे, या व्यापार से अपना गुज़र बसर करते थे।

अरब भारत से कुछ दूर पच्छिम में ईरान और अफ्रीका के लगभग बीच में एक देश है। मुहम्मद साहब के जन्म के समय उस देश की दशा बहुत गिरी हुई थी। देश भर में सैकड़ों छोटे छोटे क़बीले थे, जो अक्सर एक दूसरे से लड़ते रहते थे। इन क़बीलों की आपसी लड़ाइयां पीढ़ियों तक चलती थीं। हर क़बीले का अपना एक देवता होता था, जो रंग रूप में दूसरे

क़बीलों के देवताओं से अलग होता था । हर क़बीला अपने ही देवता को पूजता था । क़बीले वालों की लड़ाइयां इन देवताओं की लड़ाइयां भी समझी जाती थीं और कभी कभी तो जीतने वाला क़बीला हारे हुए क़बीले के 'देवता' को क़ैद करके अपने यहां ले आता था । यह विचार कि सब का एक ही ईश्वर या अल्लाह है, उस समय अरब में बहुत ही कम लोगों को था ।

अरब के अलग अलग भागों में अलग अलग राजा थे। उत्तर का बहुत सा इलाक़ा रोम के सम्राट् के अधीन था । पूरब और दक्खिन के इलाकों पर ईरान का राज था । पच्छिम का एक बड़ा और उपजाऊ भाग अबीसीनिया के सम्राट् के कब्जे में था। बीच का भाग अधिकतर रेगिस्तानी था, पर इस भाग पर भी तीनों विदेशी ताकतों के दांत बराबर लगे हुए थे।

मक्का और मदीना के मशहूर शहर इसी भाग में थे।

अब अगर हम अरब से हट कर उस समय के कुछ आसपास के देशों पर निगाह डालें, तो उनकी दशा विशेषकर धर्म या मजहब के मामले में, और भी बुरी दिखाई देती है। ईरान में जरतुश्ती यानी पारसी धर्म चालू था। यह धर्म शुरू में दुनिया के और सब बड़े धर्मों की तरह बहुत ही ऊंचा धर्म था; पर जिन दिनों की बात हम कर रहे हैं, उन दिनों इसमें तरह तरह की बुराइयां घर कर चुकी थीं। यूरोप में और विशेषकर रोम में उन दिनों ईसाई धर्म का बोलबोला था। ईसाई धर्म भी उस समय तक अपने शुरू के ऊँचे आदर्शों से गिरकर कहीं का कहीं पहुँच चुका था। ईसाइयों में बहुत से दल पैदा हो गए थे। ये दल छोटी छोटी बातों पर बहुत बहस करते और आपस में लड़ते भिड़ते रहते थे। जीतने वाले दल के लोग दूसरे दल के लोगों से जबरदस्ती अपनी बात मनवाते थे। अगर वे न मानते तो उन्हें तलवार के घाट उतार देना या जिन्दा जला देना वे अपना अधिकार समझते थे। मुहम्मद साहब के जन्म के समय रोम साम्राज्य और यूरोप के दूसरे देशों में इलाक़े के इलाक़े इस धार्मिक पागलपन के कारण बरबाद हो गए थे। यूरोप भर में धार्मिक आज़ादी या विचारों की स्वतन्त्रता का कहीं नाम तक न था।

इस तरह के देश और इस तरह की दुनिया में मुहम्मद साहब का जन्म हुआ।

मुहम्मद साहब शुरू से ही बहुत विचारशील और एकान्त सेवी थे। वह अपने देश वासियों की हालत पर खूब सोचते रहते थे और उसे देख कर उन्हें बड़ा दुख होता था। अपने देश की दशा सुधारने के लिए मुहम्मद

साहब एक ओर तो ईश्वर से प्रार्थनाएं करते थे, और दूसरी ओर अपने आप भी समाज सेवा के उपायों की खोज में लगे रहते थे। जल्दी ही उन्हें एक ऐसा अवसर मिल गया।

काबे की यात्रा या हज करने के लिए दूर दूर से यात्री आते थे उन्हें अक्सर रास्ते में ही लूट लिया जाता था। देश भर में कोई कचहरी या अदालत ऐसी न थी जिसमें वे न्याय के लिए फ़रियाद कर सकें। मुहम्मद साहब ने सब से पहले मक्के के बहुत से ख़ानदानों के नौजवानों का एक दल बनाया, जो इन परदेसियों के जान-माल की रक्षा कर सके। कोई साठ साल तक यह दल बहुत अच्छा काम करता रहा।

कुछ दिन बाद एक और घटना हुई। पानी की बाढ़ से काबे की दीवारें फट गईं। उनकी मरम्मत के बाद काबे के पवित्र पत्थर, संगे-असवद को फिर से ठीक जगह रखने का सवाल सामने आया। काबे के महन्तों का ख़ानदान कुरैश चार शाखाओं में बंटा था। इन चारों में इस बात पर झगड़ा होने लगा कि संगे असवद को उठाने और ठीक जगह रखने का मान किसे मिले। झगड़ा बढ़ता दिखाई दिया। आख़िर सब ने मिल कर फ़ैसले के लिए मुहम्मद साहब को बुलाया। मुहम्मद साहब ने आकर बड़ी सुन्दरता के साथ सबका मान रखते हुए झगड़े का फ़ैसला किया। उन्होंने संगे असवद को एक चादर पर रखवाया, फिर चारों ख़ानदानों के एक एक आदमी से कहा कि वे चादर का एक एक कोना पकड़ कर उसे ऊपर उठाएं। जब चादर ठीक जगह पर जा लगी, तब उन्होंने अपने आप संगे असवद को हलके से सरका कर उसकी जगह पर पहुँचा दिया। सबने उनकी चतुराई और शान्ति-प्रेम को सराहा।

उन दिनों मुहम्मद साहब अपने देश में अल अमीन के नाम से मशहूर थे, जिसका अर्थ होता है, सब का विश्वास पात्र । सचमुच सब लोग उन्हें विश्वास और आदर की दृष्टि से देखते थे। उनकी ईमानदारी के कारण ही खुदैजा नामक एक धनवान महिला ने उन्हें अपने व्यापार की देखभाल के लिए रख लिया। मुहम्मद साहब व्यापारी काफ़िलों के सरदार के रूप में दूसरे देशों में भी आने जाने लगे। इस तरह उन्हें देश देश के वासियों से मिलने और उनके बारे में लाभदायक जानकारी पाने का अवसर मिला। मुहम्मद साहब की ईमानदारी के कारण खुदैजा को व्यापार में बहुत लाभ हुआ। खुदैजा पर मुहम्मद साहब के सदाचार और व्यवहार का भी गहरा असर पड़ा और उन्होंने मुहम्मद साहब के साथ शादी कर ली।

विवाह के बन्धन भी मुहम्मद साहब को जन हित की राह पर बढ़ने से न रोक सके। अब वह हिरा पहाड़ की एक गुफा में जा बैठते और घंटों अपने देश और समाज की दशा पर विचार करते रहते। यह क्रम चालीस बरस की उम्र तक चलता रहा।

चालीस बरस की उम्र में मुहम्मद साहब ने अपने भीतर एक दिव्य शक्ति और प्रकाश का अनुभव किया। अब वह अपने अल्लाह का सन्देश अपने समाज वालों को भी सुनाने लगे। उनके उपदेशों की विशेष बातें ये थीं :

अल्लाह एक है। उसका कोई रंग रूप नहीं। उस एक के सिवा किसी दूसरे देवी देवता या किसी और की पूजा करना पाप है।

संसार के सब आदमी वास्तव में एक ही परिवार के हैं। इसलिए उनमें क़बीले क़बीले, जात पांत, ऊंच नीच, या छुआछूत का कोई भेद नहीं होना चाहिए।

सब को हर तरह की बुराइयां छोड़ कर वे काम करने चाहिए जिन्हें सब लोग अच्छा समझते हैं।

मुहम्मद साहब ने अपने देश वासियों को समझाया कि जुआ खेलना, शराब पीना, सूद लेना और लड़कियों को ज़िन्दा दफ़न करना, आदि बुराइयों से और हर तरह की बदचलनी से बचो। स्त्रियों की दशा को उन्होंने बहुत ऊंचा उठा दिया। उन्होंने नियम बनाया कि स्त्रियों को भी बाप की सम्पत्ति में हिस्सा मिले। ग़ुलामों को भी बराबरी का दरजा दिलाया। उन्होंने अपने साथियों से कहा कि जो खाना तुम खाओ, वही अपने ग़ुलामों को खिलाओ, जो कपड़े तुम पहनो, वही उनको पहनाओ और उनके साथ कभी किसी तरह की कड़ाई न करो। मुहम्मद साहब ने अर्थ-व्यवस्था के भी कुछ ऐसे तरीके बताए, जिनसे धन केवल कुछ लोगों ही के हाथों में जमा न हो, बल्कि अमीरों से निकल कर ग़रीबों तक पहुँचता रहे।

मुहम्मद साहब धर्म के मामले में किसी के साथ किसी तरह की ज़बरदस्ती उचित नहीं समझते थे। वह सबके लिए पूरी धार्मिक स्वतंत्रता का उपदेश देते थे। उनका कहना था कि दुनिया के सब धर्म मूल रूप में सच्चे हैं, और सब उसी एक अल्लाह की ओर ले जाने वाले हैं। उनके मानने वाले अपने धर्मों के असल उसूलों से भटक गए हैं।

पहले तेरह साल तक मक्के वालों ने मुहम्मद साहब का डट कर विरोध किया। काबे की मूर्तियों की पूजा से रोज़ी कमाने वाले इन विरोधियों में सबसे आगे थे। मुहम्मद साहब और उनके गिने चुने साथियों को बड़ी बड़ी तकलीफ़ें दी गईं। उन्हें पीटा गया, गालियां दी गईं, उन पर पत्थर फेंके गए और उनका कड़ा सामाजिक बहिष्कार किया गया।

मुहम्मद साहब को मार डालने की साज़िशें की गईं। तेरह बरस तव
मुहम्मद साहब बड़े धीरज के साथ इन सब कठिनाइयों को सहते रहे औ
अपनी बात पर डटे रहे। उन्होंने अपने साथियों को भी सदा यही उपदे
दिया कि धीरज के साथ सब तरह की कठिनाइयां सहो और बुराई क
बदला सदा भलाई से दो। तेरह बरस बाद मक्के से १६८ मील दू
मदीने के कुछ लोगों के दिलों में मुहम्मद साहब के उपदेशों ने विशेष रूप से घ
किया। उन्होंने मुहम्मद साहब और उनके साथियों की रक्षा का भार अप
ऊपर लिया। मुहम्मद साहब अपने मुट्ठी भर साथियों को ले कर अ
मदीने जा बसे। वहां धीरे धीरे मदीने की ख़ास हालत और अपनी शान्ति
तथा न्याय-प्रियता के कारण वह बहुत जल्दी लोकप्रिय हो गए। यहां तव
कि सबने मिल कर उन्हें वहां का हाकिम चुन लिया। इसके बाद मुहम्म
साहब ने अरब के दूर दूर शहरों और कबीलों में भी अपने उपदेशक भेज
और इस तरह मुहम्मद साहब का सन्देश दूर दूर तक फैलने लगा।

मुहम्मद साहब का रहन सहन बहुत ही सीधा सादा और बिल्कुल
ग़रीबों का सा था। मदीने के हाकिम हो कर भी वह सदा नंगी ज़मीन
पर या अधिक से अधिक खजूर की चटाई पर सोते थे। मुहम्मद साहब
अपने कपड़े आप धोते थे, अपनी ऊंटनी का 'खरेरा' अपने हाथ से करते
थ, अपनी बकरियों को अपने आप दुहते थे। वह अपने हाथ से ही
अपने घर में झाड़ू लगाते थे और अपनी चप्पल गाँठते थे। सरकारी लगान
की आमदनी में से खजूर का एक दाना भी अपने या अपने घरवालों के
लिए लेना वह पाप समझते थे।

बाईस बरस तक लगातार कोशिश का फल यह हुआ कि अरब के

मुहम्मद साहब का रौज़ा

सारे अलग अलग क़बीले ख़त्म हो गए और सारा अरब एक क़ौम बन गया। उनके धार्मिक भेद भाव मिट गए और उनकी सामाजिक बुराइयाँ लगभग ख़त्म हो गईं। अरब वालों ने मुहम्मद साहब को अपना हाकिम मान लिया। अरब के कुछ इलाक़े विदेशी शासन के अधीन थे। अब वे सब भी अरब वालों के हाथ में आ गए और इस तरह सारा अरब एक उन्नत और स्वाधीन राष्ट्र बन गया।

सोमवार बारह रबी उल अव्वल, ४ जून, ६३२ ई० को मदीने में मुहम्मद साहब नें शरीर त्यागा। उस समय उनकी आयु ६२ बरस की थी।

एक अंग्रेज़ ने ठीक ही लिखा है कि मुहम्मद साहब को एक साथ तीन चीज़ें क़ायम करने का सौभाग्य मिला। एक राष्ट्र, एक राज, और एक धर्म। इतिहास में इस तरह की दूसरी मिसाल नहीं मिलती। सचमुच ही मुहम्मद साहब दुनिया के महान् से महान् आदमियों में से थे।

१०

बापू

गांधी जी को हम सब आदर से राष्ट्र-पिता और प्यार से बापू कहते हैं। कभी हमने यह भी सोचा कि इसका क्या कारण है ?

आखिर पिता कहते किस को हैं ? उसको जो पैदा करता है और पाल पोस कर बड़ा करता है। हम यह मानते हैं कि असल में पैदा करने वाला और पालने वाला कोई और है। पर वह यह काम किसी आदमी ही के हाथ से लेता है। उसी मनुष्य को पिता कहते हैं।

अब से चालीस बरस पहले भारत में लोग तो थे, पर भारत राष्ट्र न था। लोग टुकड़ियों में बँटे हुए, निर्बल, निराश, दूसरों के दास थे। उनको मिलाकर, उभार कर, उनकी गर्दन से गुलामी का जुआ उतार कर, उनको
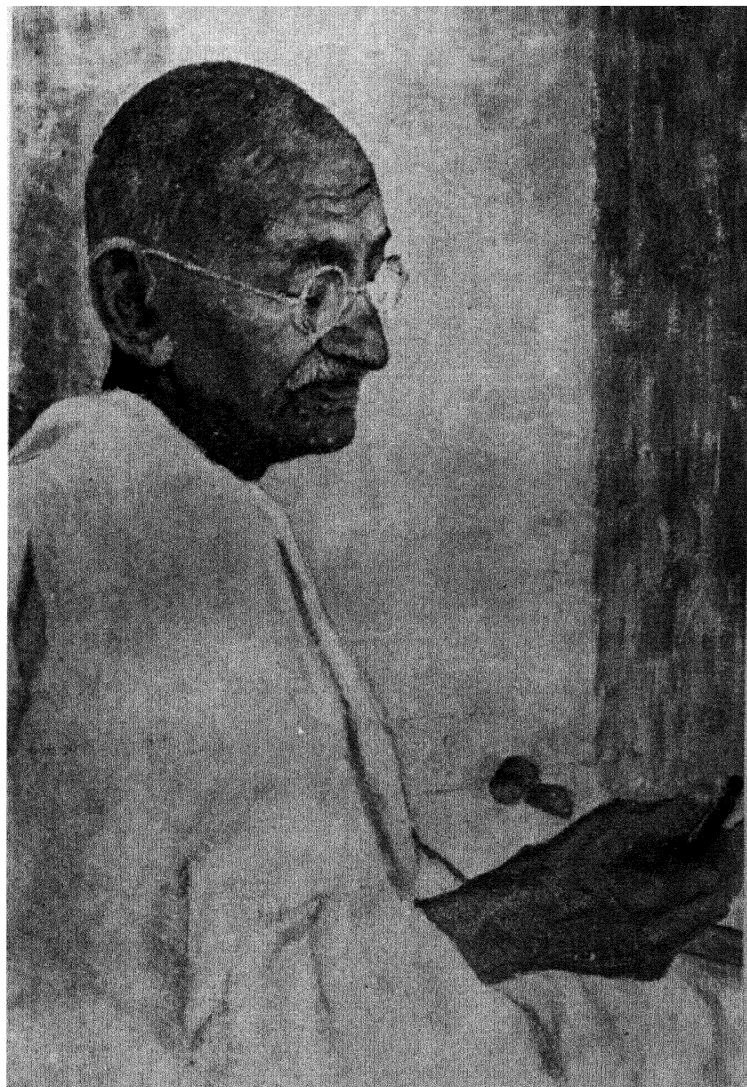
एक स्वाधीन राष्ट्र किसने बनाया ? गांधीजी ने। राष्ट्रीयता यानी क़ौमियत के इस कोमल और नाजुक पौधे को सच्चाई, शान्ति और प्यार के अमृत से सींच कर पनपने और बढ़ने की राह किसने दिखाई ? गांधी जी ने। इसलिए वह भारतीय राष्ट्र या क़ौम के पैदा करने वाले, पालने वाले, राष्ट्र पिता, बापू कहलाते हैं ।

बापू कौम थे, उन्होंने क्या किया और सिखाया, इसका हाल थोड़े में पढ़िए ।

२ अक्तूबर, १८६९ को सौराष्ट्र के राजकोट शहर में करमचन्द गांधी के यहाँ एक लड़का पैदा हुआ, जिसका नाम मोहनदास रखा गया। करमचन्द पोरबन्दर की छोटी सी रियासत के दीवान थे और सच्चाई, ईमानदारी और नेकी में उनका बड़ा नाम था। उनकी पत्नी पुतली बाई बड़ी धार्मिक और नेम धर्म से चलने वाली स्त्री थीं। मोहनदास गांधी में मां-बाप दोनों के अच्छे गुण इकट्ठे हो गए। वह मां, बाप और गुरु का आदर करते, उनका कहा मानते, पढ़ने लिखने में जी लगाते और जो कुछ अपना कर्तव्य समझते, उसके पूरा करने में कुछ भी उठा न रखते। उनसे कोई भूल हो जाती तो उसको सच्चाई से मान लेते, उसकी सज़ा चुपचाप भुगत लेते और आगे के लिए कान पकड़ लेते। ये बातें बचपन में साधारण, सीधी सादी जान पड़ती थीं, लेकिन इन्हीं का बरसों तक पालन करने से उनमें एक महापुरुष, महात्मा के गुण आ गए—उसी तरह जैसे मामूली, सीधी सादी लकीरों से धीरे धीरे एक सुडौल, सुन्दर, अच्छा चित्र बन जाता है।

गांधी जी ने १८८८ में राजकोट के हाई स्कूल से मैट्रीकुलेशन की

परीक्षा पास कर ली। उनके पिता जी कुछ दिन पहले स्वर्ग सिधार चुके थे। बड़े भाई अब घर की देख भाल करते थे। उन्होंने मोहनदास को कानून पढ़ने के लिए लन्दन भेजने का विचार किया। मोदी बनियों में समुद्र पार जाना अनोखी बात थी, इसलिए गांधी जी की बिरादरी ने उनको जात बाहर करने की धमकी दी। पर वह जिस बात को ठीक समझते थे, उसे करने से बिरादरी क्या सारी दुनिया की धमकी भी उनको न रोक सकती थी। उन्हें लन्दम जाने से कोई न रोक सका। हां, जाते वक्त उन्होंने अपनी माता जी को यह वचन दिया कि कभी शराब न पियेंगे, गोश्त न खायेंगे और किसी औरत को बुरी नज़र से न देखेंगे। इस वचन को उन्होंने मर्दों की तरह निभाया।

लन्दन में गांधी जी तीन साल रहे। पहले उन्होंने लन्दन यूनिवर्सिटी की मैट्रिकुलेशन की परीक्षा पास की। इसके बाद कानून पढ़ कर इनर टेम्पल से बैरिस्टरी का डिप्लोमा (प्रमाण पत्र) लिया।

विलायत की हवा का पहले पहल उन पर यह रंग चढ़ा कि ठाट-बाट में अंग्रेज़ साहबों की नकल करने लगे। परन्तु थोड़े ही दिन बाद उनके दिल ने अंदर से कहा कि बड़े भाई की गाढ़ी कमाई का पैसा फूंकना बड़ी निठुराई है। वह कम ख़र्च का सादा जीवन जैसा एक विद्यार्थी का होना चाहिए बिताने लगे, और तन की जगह मन को संवारने की कोशिश करने लगे।

१८९१ में जब गांधी जी बम्बई पहुँचे, तो मालूम हुआ कि उनकी माता जी का देहान्त हो चुका है। पिता जी पहले ही स्वर्गवासी हो चुके थे। बड़े भाई का बोझ अब गांधी जी को बटाना पड़ा। बाईस साल के

दुबले पतले नौजवान को देखकर लोग कहते होंगे कि यह इस भार को कैसे उठाएगा ? पर पक्के विश्वास और साहस ने कमज़ोर कंधों में इतना बल पैदा कर दिया जो एक परिवार क्या, सारे देश का बोझ उठाने को काफी था।

थोड़े दिन राजकोट में वकालत करने के बाद गांधी जी एक मुकदमे में पैरवी करने नेटाल (दक्खिनी अफ्रीका) चले गए। यह मुक़दमा दो मुसलमानों में चल रहा था और दोनों तरफ से रुपया पानी की तरह बहाया जा रहा था। गांधी जी ने दोनों को समझा बुझा कर पंचायत से फैसला करा दिया। साल भर में ही गांधी जी ने सच्चाई के जादू और प्रेम की मोहिनी से नेटाल और ट्रांसवाल के सब हिन्दुस्तानियों के दिलों को मोह लिया था। क्या सेठ, क्या बाबू, क्या मज़दूर, सब उनको गांधी भाई कहते थे। इन लोगों ने गांधी जी को प्रेम के बन्धन में बांध कर रोक लिया। वह हिन्दुस्तान जाकर बाल बच्चों को ले आए और बीस बरस तक वहीं दक्खिनी अफ्रीका में रहे। बीच में केवल दो बार हिन्दुस्तान और दो बार इंग्लैंड गए।

आप सोचते होंगे, गांधी जी देश छोड़ कर विदेश में क्यों रहने लगे ? बात यह है कि उन्होंने दक्खिनी अफ्रीका में यूरोपियनों को हिन्दुस्तानियों के साथ ऐसा अपमान का बर्ताव करते देखा कि उनकी आत्मा कांप उठी। सारे हिन्दुस्तानी कुली कहलाते थे। उनको यूरोपियनों के साथ एक होटल में ठहरने, रेल या घोड़ा गाड़ी में साथ बैठने न दिया जाता था। कहीं कहीं तो उन सड़कों पर जहां यूरोपियन टहलते थे, चलना और सूरज डूबने के बाद घर से निकलना तक मना था। खुद गांधी जी को

एक बार रेल के पहले दर्जे के डिब्बे से निकाल दिया गया और कई बार तरह तरह से उनका अपमान किया गया। पैसे वाले हिन्दुस्तानियों को कभी नागरिक के कुछ साधारण अधिकार मिल जाते और कभी छीन लिए जाते। ग़रीब मज़दूरों को जो अपमान और अत्याचार सहने पड़ते, उनकी तो कोई गिनती ही न थी। गांधी जी ने ठान लिया कि इस अंधेर नगरी से भागने के बदले वहीं पैर जमा कर इन अत्याचारों का सामना करेंगे।

देखने की चीज़ यह है कि सामना उन्होंने कैसे किया। गांधी जी ने देखा कि दक्खिनी अफ्रीका का हिन्दुस्तानी समाज अपने देश हिन्दुस्तान का एक छोटा सा नमूना है। हिन्दू, मुसलमान, पारसी, सब अपने को अलग अलग जातियां समझते हैं। इससे उनकी ताक़त बहुत घट गई है और उनमें इतनी हिम्मत नहीं रही कि अत्याचार और अन्याय का सामना करने के लिए खड़े हो सकें। इसलिए पहले १८९४ में नेटाल इंडियन कांग्रेस बना कर उन्होंने हिन्दुस्तानियों में एकता की भावना पैदा की और उनका संगठन किया। फिर 'इंडियन ओपिनियन' (भारतीय सम्मति) नामक अख़बार निकाल कर उसके जरिये यूरोपियनों की सरकार और यूरोपियन लोगों से न्याय की अपील करते रहे। अंत में सत्याग्रह के निराले हथियार से उन्होंने सरकार के खिलाफ़ लड़ाई छेड़ दी।

सत्याग्रह का अर्थ है "सच्चाई पर अड़ जाना"। इसके लिए हर तरह का इतना दुःख उठाना कि अत्याचारी के दिल में न्याय, दया और प्रेम जाग उठे। गांधी जी ने एक आश्रम बनाया जिसमें सत्याग्रही अपने आप को इस लड़ाई के लिए तैयार करते थे। इन लोगों को साथ लेकर गांधी जी उन कानूनों को तोड़ते जो न्याय के विरुद्ध थे। हंसी खुशी जेल जाते और सब

तरह के कष्ट सहते । सात साल तक अहिंसा की लड़ाई लड़ने के बाद १९१४ में सत्याग्रहियों की जीत हुई और दक्खिनी अफ्रीका की सरकार ने इन्डियन रिलीफ एक्ट पास करके हिन्दुस्तानियों की बहुत सी माँगें पूरी कर दीं। अब वे दक्खिनी अफ्रीका में कुछ मान और चैन से रह सकते थे।

जिस काम का बीड़ा उठाया था, उसको पूरा करके गांधी जी इंगलैंड होते हुए जनवरी, १९१५ ई० में हिन्दुस्तान पहुँच गए। यहां भी वह चाहते थे कि दक्खिनी अफ्रीका के ढंग पर काम करके भारत माता को गुलामी से छुड़ाएं। अपने अनपढ़, निर्धन, निराश भाइयों को इस तरह ऊंचा उठाएं कि वे ग़रीबी और अज्ञान से छुटकारा पाकर अपने मन पर और अपने देश पर आप राज्य कर सकें।

अब गांधी जी को अपने नए हथियार, सत्याग्रह से तीन मोर्चों पर अहिंसा की लड़ाई लड़नी थी। एक तरफ़ विदेशियों की गुलामी से, दूसरी तरफ़ ग़रीबी और अज्ञान से, और तीसरी तरफ़ आपस के ऊंच नीच, छूत-छात और साम्प्रदायिकता के भेदभाव से। उन्होंने दक्खिनी अफ्रीका की तरह हिन्दुस्तान में भी इन लड़ाइयों के लिए सिपाही तैयार करने का बीड़ा उठाया और इसके लिए सत्याग्रह आश्रम खोला। यह आश्रम १९१५ से १९३३ तक अहमदाबाद के पास साबरमती में रहा और तीन साल बन्द रहने के बाद १९३६ में वर्धा के पास सेवाग्राम में आ गया।

अब अहिंसा की लड़ाई लड़ने के लिए गांधी जी के पास दो ताकतें थीं। एक उन रचनात्मक कार्यकर्ताओं की फ़ौज जो आश्रम में हमेशा रहते या कभी कभी आकर रहा करते और दूसरी कांग्रेस। यह संस्था १८८५ में कुछ देश भक्तों ने बनाई थी, पर अब तक उसमें बस थोड़े से पढ़े लिखे

पैसे वाले लोग थे, और सरकार से देश के लिए कुछ छोटी छोटी मांगें किया करते थे। गांधी जी ने उसका दरवाज़ा किसानों-मज़दूरों के लिए खोल दिया, जिससे उसकी ताक़त कई गुना बढ़ गई और उसमें इतनी हिम्मत पैदा हो गई कि वह पूर्ण स्वराज्य लेने की कोशिश करे।

गांधी जी का सारा जीवन सत्याग्रह का एक लम्बा संग्राम था। जितनी लड़ाइयाँ लड़ी गईं, वे सब इसलिए कि अत्याचार, अन्याय और अधर्म करने वालों को, चाहे वे देशी हों या विदेशी, कड़ी चोट लगे। शरीर की चोट नहीं, दिल की चोट जो मन की सारी भावना बदल देती है---न्याय, दया और प्रेम के सोए हुए भावों को जगा देती है। गांधी जी जिन साधनों से काम लेते थे, उनमें पहला नर्मी से, धीरज से समझाना बुझाना था, जिसके लिए उन्होंने पहले 'यंग इंडिया', फिर 'हरिजन' और 'हरिजन-सेवक' नाम के पत्र अंग्रेजी ,गुजराती, हिन्दी और उर्दू में निकाले। जब समझाने बुझाने से काम न चलता, तो वह सत्याग्रह का आन्दोलन शुरू करते। इसमें सत्याग्रही ऐसे कानून को, जिसमें खुला हुआ अन्याय या अत्याचार हो, तोड़ते और उसके बदले हंसते हंसते जेल जाते, लाठियां और कभी कभी गोलियां खाते, पर दूसरों पर हाथ न उठाते और उनको बुरा भला भी न कहते। जब ऐसा मौका आ जाता कि खुद गांधी जी या उनके साथियों के मन में धर्म-संकट होता, या अँधेरे में उनको अपना रास्ता न सूझता, तो गांधी जी सात दिन, चौदह दिन, इक्कीस दिन का व्रत या मरण व्रत रख लेते। इससे उनको प्रकाश और शक्ति मिलती थी। दूसरों का दिल भी नर्म हो जाता था।

गांधी जी ने आजादी के लिए सत्याग्रह के कई बड़े बड़े आन्दोलन

चलाए, जिनसे देश आजादी की राह पर बढ़ता रहा । यहां तक कि १५ अगस्त, १९४७ को अंग्रेजों ने देश की हुकूमत जवाहरलाल नेहरू की राष्ट्रीय

सरकार को सौंप दी । सारे देश में आजादी का झंडा लहराने लगा ।

ग़रीबी को दूर करने के लिए गांधी जी ने चरखा संघ और ग्राम उद्योग संघ बनाए कि लोगों को, खास कर गांव वालों को, रोजी देने वाले धन्धे सिखाए जाएं । मूर्खता और अज्ञान को मिटाने के लिए हिन्दुस्तानी तालीमी संघ बनाया, जो बुनियादी शिक्षा या ऐसी तालीम दे जिससे बच्चों के अन्दर सारी अच्छी शक्तियां उभर आएं और वे ऐसा समाज बनाने के लिए तैयार हो जाएं जिसमें एक दूसरे को लूटें नहीं, बल्कि सहायता दें । ऊंच-नीच, सवर्ण-अछूत का भेद दूर करने के लिए गांधी जी
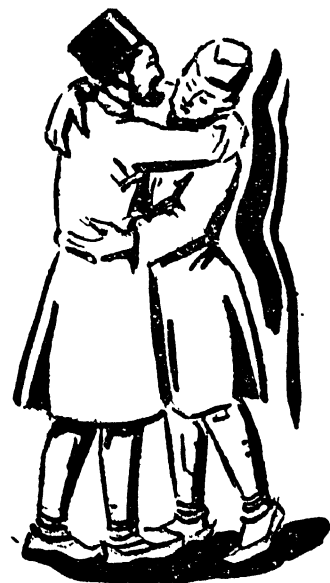
ने हरिजन सेवक संघ बनाया। हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, पारसी इत्यादि का भेदभाव दूर करने में तो उन्होंने अपना सारा जीवन बिता दिया। हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए तो जान तक दे दी।
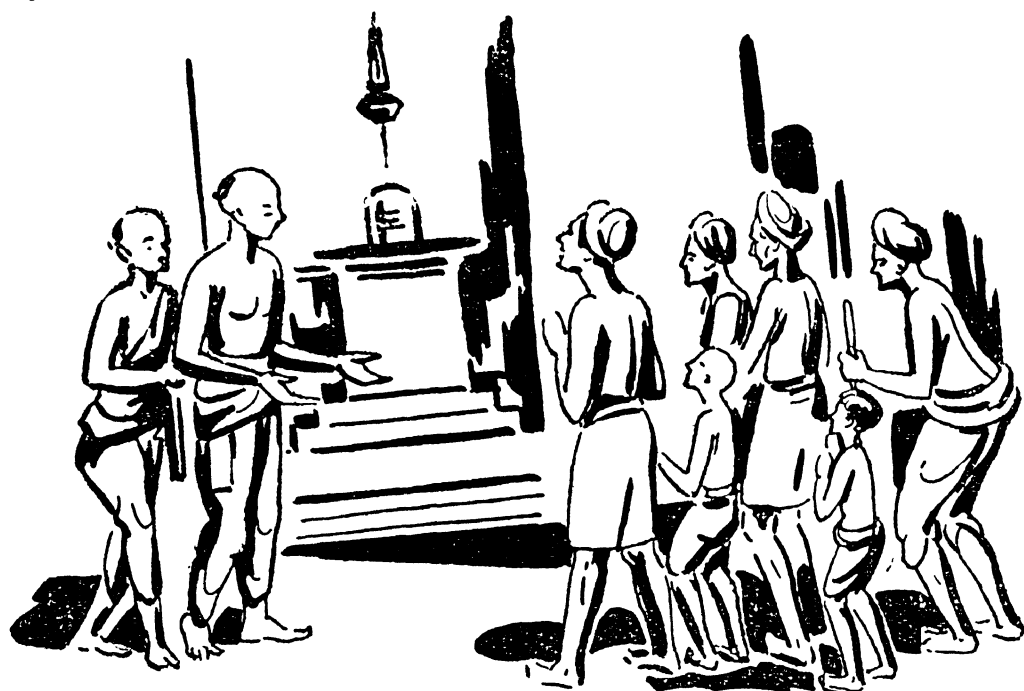
गांधी जी ने जिन्दगी का जो रास्ता अपने देश वालों को और सारी दुनिया के लोगों को बताया, हर एक धर्म ने अपने अपने ढंग से सच्चाई और मुक्ति का यही रास्ता बताया है। हां, सैकड़ों साल से किसी ने इस रास्ते पर चल कर नहीं दिखाया था। यह काम गांधी जी ने कर दिखाया।

इस राह पर चलने के उपाय ये हैं :

१. अहिंसा—कोई काम इस नियत से न करना कि किसी को दुख पहुँचे। हर काम में दया और प्रेम की सच्ची भावना रखना।

२. सत्य—सदा सच्ची बात कहना, नर्म और मीठे शब्दों में सदा सच्चाई

बुरा न सुनो   बुरा न देखो   बुरा न कहो

और न्याय का साथ देना ।

३. किसी की चोरी न करना—किसी के माल या उसकी मेहनत से अनुचित लाभ न उठाना ।

४. उन चीजों में से जो जीने के लिए ज़रूरी हैं, किसी चीज़ पर कब्ज़ा या मिलकियत न रखना ।

५. वासनाओं को, विशेषकर काम-वासना को वश में रखना ।

६. किसी से न डरना ।

७. अपनी रोजी कमाने के लिए हाथ पांव से मेहनत करना ।

८. सब धर्मों की बराबर इज्जत करना, साम्प्रदायिकता का भेदभाव मिटाना ।

९. छूतछात और ऊँच नीच का भेद न रखना और समाज से इस रोग को दूर करना ।

गांधी जी की मिसाल और उनकी शिक्षा ने भारत में अभी तक थोड़े से लोगों के दिलों में एक छोटे से पौधे के रूप में जड़ पकड़ी है । दूसरे देशों में इस का बीज पहुँच चुका है, पर वह अभी यह देख रहे हैं कि

पौधा खुद अपनी ज़मीन में कहां तक पनपता और फलता फूलता है। अब यह हमारा काम है कि उसे श्रद्धा और मेहनत के जल से सींच कर एक छायादार पेड़ बना दें, जिससे दूसरे देश वालों को अपने यहाँ यह पौधा लगाने की प्रेरणा मिले और दुनिया अहिंसा और सत्य का हरा भरा बाग़ बन जाए।
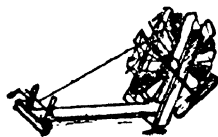
११

भारतीय पुराणों का महत्त्व

हिन्दू धर्म को समझने में पुराणों की गाथाओं या कहानियों से बड़ी सहायता मिलती है। इन कहानियों या गाथाओं को इतिहास भले ही न माना जाए, पर इनमें अक्सर ऐसा मतलब छिपा रहता है जिसकी गुत्थी सुलझाने से हिन्दू धर्म की बहुत सी गुत्थियां आप ही आप सुलझ जाती हैं।

प्रायः सभी धर्मों में ऐसी गाथाएं होती हैं, और संसार के पुराने धर्मों में तो उनकी भरमार है। गाथाओं के भीतर से किसी भी धर्म की महिमा झलक जाती है और उस धर्म का पूरा रूप हमारे सामने आ जाता है।

हर कहानी गाथा नहीं कही जा सकती। जिन कहानियों का प्राचीन

सभ्यता और संस्कृति के साथ सम्बन्ध हो, उन्हें 'गाथा' के नाम से पुकारा जाता है। गाथाएं परम्परा से चली आती हैं और राष्ट्र के चरित्र को ऊंचा उठाती हैं। इन्हें प्रेम और श्रद्धा के साथ सुना या गाया जाता है।

हिन्दू धर्म बहुत पुराना धर्म है। इसमें गाथाओं की कोई गिनती नहीं। इन गाथाओं का भंडार वे पुराण हैं, जिनकी संख्या १८ है। वे सब संस्कृत भाषा में हैं और श्लोकों में लिखे गये हैं।

पौराणिक गाथाएं अधिकतर देवताओं की कहानियां हैं। इनमें उन ऋषि-मुनियों की भी कहानियां हैं जो जिन्दगी भर बड़ी लगन के साथ सच्चाई, तप और त्याग के ऊंचे आदर्श पर चले।

हिन्दू धर्म में ब्रह्मा, विष्णु और शिव एक ईश्वर के तीन स्वरूप

माने जाते हैं। ब्रह्मा के स्वरूप में ईश्वर संसार की रचना करता है और उसकी सब चीज़ों को रूप देता है। चारों वेदों का ज्ञान भी इसी रूप में देता है। इसलिए इस रूप में उसके चार मुख माने जाते हैं। ब्रह्मा की कृपा से इस संसार में साहित्य, संगीत और कला का प्रकाश हुआ। ब्रह्मा की शक्ति सरस्वती विद्या की देवी मानी जाती हैं। उनके एक हाथ में

सदा वीणा और दूसरे में पुस्तक रहती है। उनका रंग सफ़ेद कमल की तरह है। उनका पूरा पहनावा भी सफ़ेद है। सरस्वती की सवारी हंस है जो सफ़ेद रंग का होता है। कहते हैं कि हंस का काम मोती चुगना है। वह मिले हुए दूध और पानी को भी अलग अलग कर देता है। जिस मनुष्य के सिर पर सरस्वती विराजे उसमें भी हंस जैसा ज्ञान आ जाता है।

ब्रह्मा के रूप में भगवान इस संसार की रचना करते हैं। विष्णु रूप में वह उसका पालन करते हैं। संसार सत्य और धर्म या नेकी पर टिका है। अगर आज दुनिया के लोग एक दूसरे पर विश्वास करना छोड़ दें, तो दुनिया का सारा काम रुक जाए। इसलिए विष्णु का दूसरा नाम सत्य है। विष्णु भगवान के चार हाथ माने जाते हैं। एक में शंख, दूसरे में चक्र, तीसरे में गदा और चौथे में कमल का फूल

रहता है। शंख ज्ञान का, चक्र दुनिया के दांव पेचों का, गदा साहस और शक्ति का और कमल शान्ति का चिह्न है। संसार की उन्नति का भेद इन्हीं चार में छिपा है। विष्णु भगवान की शक्ति लक्ष्मी धन की देवी हैं।

विष्णु भगवान समय समय पर इस संसार में अवतार लेते रहते हैं। संसार की रक्षा का भार उन्हीं पर है। श्री रामचन्द्र और श्री कृष्ण उन्हीं के अवतार माने जाते हैं।

भगवान अपने तीसरे स्वरूप में शिव या महादेव हैं। हिन्दू धर्म के अनुसार दुनिया में बारी बारी से चार युग आते हैं। सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग। चारों युगों की अपनी अपनी अवधि है। चारों की अवधि पूरी हो जाने पर प्रलय होता है। प्रलय में सारे संसार का नाश हो जाता है, जिससे अगला उन्नति का युग आरम्भ हो सके। प्रलय का समय आने पर भगवान अपने शिव रूप में

उल्लास में आकर नाचते हैं। उस नाच को तांडव नृत्य कहते हैं। तांडव नृत्य होते ही संसार का सर्वनाश हो जाता है। कहीं कुछ बाक़ी नहीं रहता। शिव का काम यहीं पूरा नहीं हो जाता। इसके बाद वह समाधि में चले जाते हैं और नए युग के लिए संकल्प करते हैं।

शिव की शक्ति का नाम पार्वती है। वह सदा शिव के साथ रहती हैं। दुर्गा, भवानी, माता, ये सब पार्वती ही के रूप हैं। वह शक्ति की देवी हैं। उनकी सवारी शेर है, जो शक्ति की निशानी है। गणेश शिव जी के पुत्र हैं। वह बाधा-विघ्न दूर करते हैं। इसलिए कोई भी काम आरम्भ करने के पहले गणेश जी पूजे जाते हैं।

मोटे तौर पर पौराणिक गाथाओं का आधार यही है, पर इसके साथ साथ एक बात और भी समझ लेनी ज़रूरी है। हमारी दुनिया की तरह देवताओं का भी एक संसार है। उसका नाम स्वर्ग है। देवता वहीं रहते हैं। जिस तरह हमारे संसार की रक्षा का भार विष्णु भगवान पर है, उसी तरह स्वर्ग की रक्षा का भार इन्द्र महाराज पर है। इन्द्र महाराज देवताओं के राजा हैं, इसीलिए उन्हें देवराज इन्द्र के नाम से पुकारा जाता है।

पौराणिक गाथाओं में जगह जगह इस बात का वर्णन मिलता है

कि विष्णु और इन्द्र दोनों एक दूसरे की सहायता करते हैं। इस दुनिया में रहने वाले ऋषि मुनि अपनी तपस्या के बल से स्वर्ग में स्थान पाने के अधिकारी हो जाते हैं। अगर कोई मनुष्य १०० अश्वमेध यज्ञ ठीक से पूरे करले, तो उसे देवराज इन्द्र की जगह भी मिल सकती है। परन्तु यह पद पाने के लिए उसे बड़ा कठिन परिश्रम करना पड़ता है। भगवान इन्द्र उसकी तरह तरह से परीक्षा लेते हैं। पुराणों में इस विषय की अनेक मनोरंजक और शिक्षा देने वाली कथाएं मिलती हैं।

पौराणिक गाथाएं एक सागर के समान हैं। उनके भीतर के सच्चे मोती उसी के हाथ लग सकते हैं, जो उनमें गहरा गोता लगाए। पुराणों से मिलने वाली शिक्षा का निचोड़ इस प्रकार है--

अठारहों पुराणों में उनके रचने वाले व्यास मुनि दो बातें बतलाते हैं, दूसरे की भलाई करना पुण्य है और किसी को कष्ट देना पाप है।

दो गाथाएँ

१

सावित्री सत्यवान

मद्र देश में अश्वपति नाम के एक राजा थे। वह बड़े धार्मिक थे। प्रजा उन्हें बहुत चाहती थी। राजा को और सब सुख थे, पर एक दुख उन्हें बराबर सताया करता था। उनके कोई सन्तान न थी। सन्तान के लिए वह तपस्या करने लगे। जब तप करते करते अट्ठारह साल हो गए तो सावित्री देवी ने उनको दर्शन दिया और वरदान माँगने को कहा।

राजा ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की, "माता, मैं पुत्र चाहता हूँ जिससे मेरा वंश चल सके।"

देवी ने राजा से कहा, "पहले जन्म में तुमने ऐसे बुरे काम किए हैं कि तुम्हें पुत्र नहीं मिल सकता। हाँ, तुम्हारे ऐसी नेक लड़की होगी जो वंश का मान बढ़ाएगी। उसी से तुम्हारे सब मनोरथ पूरे होंगे।"

समय पर राजा के एक कन्या हुई। वह लड़की क्या थी, मानो लक्ष्मी। रूप, गुण और सुन्दरता में कोई भी लड़की उसकी बराबरी की न थी। उसका नाम सावित्री रखा गया। शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान सावित्री बढ़ रही थी।

लड़की ब्याह के योग्य हो गई थी। उन दिनों स्वयंवर का चलन था। लड़की अपना पति चुनती थी। राजा ने सावित्री को वर खोजने की आज्ञा दी। सावित्री बूढ़े मंत्रियों को साथ लेकर चल पड़ी। खोजते खोजते वह शाल्व देश के राजा द्युमत्सेन के यहाँ पहुँची। द्युमत्सेन अन्धे हो गए थे और शत्रुओं ने उनका राज्य छीन लिया था। वह जंगल में आश्रम बना कर रहते थे। सावित्री को उनका पुत्र सत्यवान पसन्द आया और उसी को अपना पति चुन लिया।

अपने काम में सफल होकर सावित्री जब घर लौटी, तो देखती है कि राज-सभा में नारद महाराज विराजमान हैं। सावित्री ने नारद जी और अपने पिता को प्रणाम किया और सब समाचार कह सुनाया। राजा ने नारद जी से पूछा कि सत्यवान कैसा लड़का है? नारद जी ने कहा--

सत्यवान में सब गुण हैं। वह सदा सच बोलता है। बहुत ही सीधा है। छल और कपट तो उसे छू भी नहीं गए। अपनी बात पर वह सदा अटल रहता है। पर एक बात है—वह आज से पूरे एक साल बाद मर जाएगा।

नारद जी की बात सुनते ही राजा सन्न रह गए। उन्होंने अपनी पुत्री को समझाया कि वह कोई और वर चुन ले। पर सावित्री

राज़ी न हुई। उसने नम्रता के साथ कहा—"पिताजी, राजा एक ही बार आज्ञा देते हैं और बुद्धिमान एक ही बार प्रतिज्ञा करते हैं। मैंने जिसे एक बार चुन लिया, अब वही मेरा पति है, चाहे वह थोड़े दिन जिए या अधिक दिन। अब मैं अपनी बात से टल नहीं सकती। आप और नारद जी मुझे आशीर्वाद दीजिए।"

सावित्री की इस बात से नारद जी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंनें राजा से कहा—आपकी पुत्री की बुद्धि डाँवाडोल नहीं होती, इसलिए उसका मंगल ही होगा।

जब राजा ने देखा कि सावित्री अपनी बात पर अटल है, तो उन्होंने सत्यवान के साथ उसके विवाह का प्रबन्ध किया। आश्रम में ही सावित्री का विवाह हुआ और वह बनवासियों की तरह सीधे सादे ढंग से रहने लगी। वह घर का सब काम-काज करती और मन लगा कर सास ससुर की सेवा करती। उसके स्वभाव और व्यवहार से घर बाहर सब प्रसन्न थे। सत्यवान तो उसे पाकर अपने को धन्य मानता था।

समय बीतता जा रहा था, पर नारद जी ने जो बात कही थी, सावित्री उसे भूली न थी। वह बराबर चौकन्नी रहती। जब उस अशुभ घड़ी को चार दिन रह गए, तो सावित्री ने एक व्रत रखा। तीन दिन उसने बिना कुछ खाए पिए संयम से बिताए। चौथे दिन जब सत्यवान कन्द मूल फल लाने के लिए वन जाने लगा, तो सावित्री भी उसके साथ गई। सत्यवान ने पहले कुछ फल बीने। फिर लकड़ियाँ काटने के लिए पेड़ पर चढ़ा। जब वह लकड़ियाँ काट रहा था, तभी उसके सिर में बड़े ज़ोर का दर्द हुआ। वह नीचे उतर आया और सावित्री की जाँघ पर सिर रख कर

लेट गया।

इतने में सावित्री ने देखा, कोई सूर्य के समान तेज वाला, लाल रंग के कपड़े पहने, सिर पर मुकुट रखे और हाथ में गदा-फन्दा लिए बढ़ा चला आ रहा है। सावित्री ने पति का सिर धरती पर रख दिया और आने वाले को प्रणाम किया। वह तो साक्षात् यमराज थे और सत्यवान की आत्मा लेने आए थे।

जब यमराज सत्यवान की आत्मा को लेकर चलने लगे, तो सावित्री भी उनके साथ चल पड़ी। यमराज ने उसे लौटने को कहा, तो उसने उत्तर दिया--पतिव्रता स्त्री सदा अपने पति के साथ रहती है। इसलिए आप जहाँ मेरे पति को लिए जा रहे हैं, मुझे भी वहीं जाना चाहिए। विद्वानों का कहना है कि सज्जन पुरुषों के साथ सात पग चलने से मित्रता हो जाती है। उस मित्रता के नाते मैं आपसे नम्रता के साथ पूछती हूँ--क्या मैंने और मेरे पति ने गृहस्थ आश्रम के नियमों को पालने में कोई भूल-चूक की है?

यमराज सावित्री की बातों से बहुत सन्तुष्ट हुए। उन्होंने कहा, सत्यवान के प्राणों को छोड़कर तुम और जो चाहो, माँग लो।

सावित्री ने कहा--मेरे ससुर अन्धे हैं और दुबले हो गए हैं। मैं

चाहती हूँ कि वह फिर देखने लगें और उनका शरीर भी बलवान हो जाए ।

यमराज ने कहा--ऐसा ही होगा और समझाया कि तू थक गई है, इसलिए लौट जा ।

सावित्री ने कहा--यह सब चाहते हैं कि कुछ देर सज्जन का साथ रहे । उनके साथ रहना कभी बेकार नहीं जाता ।

यमराज को सावित्री की यह बात बहुत अच्छी लगी और उन्होंने सत्यवान के जीवन के सिवा और कोई भी वर माँगने को कहा ।

सावित्री ने दूसरा वर यह माँगा कि मेरे ससुर को उनका राज्य फिर मिल जाए ।

यमराज 'ऐसा ही होगा' कह कर आगे बढ़े, तो देखते हैं कि सावित्री अब भी पीछे पीछे चली आ रही है । यमराज रुके और बोले--तू लौटी नहीं । अब क्यों हमारे पीछे चली आ रही है ?

सावित्री ने नम्रता के साथ कहा--यमराज, आप सब जीवों को नियम के भीतर रखते हैं और जो जैसा करता है, उसे उसके काम के अनुसार दण्ड देते हैं । इसीलिए आपका नाम यम है । मैं आप से विनय के साथ पूछती हूँ, क्या यह सज्जनों का धर्म नहीं कि वे किसी से बैर न रखें और सब पर दया करें ? अगर यह ठीक है, तो न जाने आप क्यों मुझे लौटने को कहते हैं । मुझ पर तो आपको दया आनी चाहिए ।

यमराज सावित्री की ऐसी चतुरता भरी बात सुन कर बहुत प्रसन्न हुए और सत्यवान को जिलाने के सिवा और कोई वर माँगने को कहा ।

सावित्री ने इस बार अपने पिता का वंश बढ़ाने वाले सौ पुत्र माँगे ।

यमराज ने यह बात भी मान ली और कहा, अब तुम लौट जाओ। बहुत दूर आ गई हो।

सावित्री बोली, "भगवन, मेरे लिए दूरी और पास में क्या अन्तर ? मेरा घर तो वही है जहां मेरे पतिदेव हों। आप सूर्य के प्रतापी पुत्र हैं। शत्रु और मित्र में पक्षपात नहीं करते। सब के साथ समान व्यवहार करते हैं। इसीलिए सारी प्रजा मर्यादा के भीतर रह कर अपने अपने धर्म का पालन करती है और आप धर्मराज कहलाते हैं। इसके सिवा, संसार में सब लोग जितना विश्वास अपने आप पर नहीं करते, उतना नेक लोगों पर करते है। उनसे अपने मन की बात कहते हैं और उनकी इच्छा पूरी होती है।

सावित्री की इन ज्ञान की बातों का यमराज पर बहुत प्रभाव पड़ा। उन्होंने कहा, सत्यवान के प्राणों को छोड़ कर तुम और जो चाहो मांग लो और अपने आश्रम लौट जाओ।

ससुर और पिता के कुल की भलाई तो हो चुकी थी। सावित्री का ध्यान अपनी भलाई की ओर गया। पतिव्रता स्त्री तो अपने पति के मंगल में ही अपनी भलाई देखती है। उसने खूब सोच विचार कर चौथा वर मांगा—महाराज, मैं चाहती हूँ कि मेरे सौ बलवान पुत्र हों और उनसे मेरा वंश बढ़े।

यमराज ने कहा कि ऐसा ही होगा और आगे बढ़े। सावित्री ने विनय की, "सज्जन पुरुष जो कुछ कहते हैं, उसे पूरा करते हैं। फिर प्रसन्नता, धन और मान ये तीनों चीजें सज्जनों से ही मिलती हैं।

यमराज रुके और कहा, अब तू क्या चाहती है, जल्दी बता।

सावित्री यमराज के चरणों में झुक गई। उसका गला भर आया।

वह इतना ही कह सकी—अभी आपने कहा है कि मेरे सौ पुत्र हों, परन्तु यदि मेरे पति जीवित न हुए, तो यह बात पूरी नहीं हो सकती। पतिव्रता स्त्री अपने पति के सिवा किसी दूसरे पुरुष की ओर देखती भी नहीं।

यह सुनते ही यमराज ने सत्यवान के प्राणों को छोड़ दिया और आशीर्वाद दिया कि उसकी ४०० वर्ष की आयु हो।

यमराज इतना कह कर अन्तर्धान होगए और सावित्री लौट कर वहां पहुँची जहाँ उसका पति पड़ा था। सावित्री ने ज्यों ही सत्यवान को छुआ, वह जाग पड़ा।

रात हो गई थी। माता-पिता सत्यवान के न लौटने से बहुत चिन्तित थे। पास-पड़ोस के मुनि उन्हें समझा-बुझा रहे थे। इतने में सावित्री और सत्यवान जा पहुँचे। उनके पहुँचते ही आश्रम में खुशी छा गई।

मृत्यु पर प्रेम की जीत की यह अनोखी गाथा है। आज भी भारत की नारियाँ यह कहानी बड़े प्रेम से कहतीं और सुनती हैं और सावित्री वट पूजा करके अपने पति का मंगल मनाती हैं।

२

भीष्म प्रतिज्ञा

हस्तिनापुर में शान्तनु नाम के बड़े प्रतापी और धर्मात्मा राजा थे। उनके गंगा से एक पुत्र हुआ। उसका नाम देवव्रत रखा गया। देवव्रत ने कुछ साल तक वशिष्ठ और परशुराम से वेद, वेदांग और धनुष चलाने की विद्या सीखी। जब उसकी पढ़ाई पूरी हो गई, तो राजा ने उसे युवराज बनाया। चार साल तक राजा ने उसकी शासन करने की योग्यता देखी। वह देवव्रत को राज देने का विचार कर ही रहे थे कि एक ऐसी घटना हुई कि देवव्रत ने अपनी इच्छा से राज पद छोड़ दिया।

एक दिन शान्तनु नदी के किनारे सैर करने गए। वह टहल रहे थे कि हवा के झोंके के साथ ऐसी सुगन्ध आई जो राजा का तन मन गुदगुदा गई। पता लगाने से मालूम हुआ कि वह सुगन्ध मछुओं के राजा की परम सुन्दरी बेटी सत्यवती के शरीर की है। राजा सत्यवती के पिता के पास

गए और उससे प्रार्थना की कि वह अपनी पुत्री का विवाह उनसे कर दे। मछुओं के राजा ने कहा, मैं अपनी बेटी आपको दे सकता हूँ, परन्तु एक शर्त है। आपके बाद मेरा धेवता ही राजा बनाया जाय।

राजा ने यह शर्त न मानी और लौट आए। पर सत्यवती उनके मन में बस गई थी। अब उनकी यह दशा हो गई कि न खाना-पीना अच्छा लगता, न रात में नींद आती। दिन पर दिन सत्यवती के प्रेम में घुलते जाते। देवव्रत पिता की यह दशा देख बहुत चिन्तित हुए। उन्होंने पिता से कारण पूछा, परन्तु पिता ने कुछ न बताया। अन्त में जब बूढ़े मंत्री से सारा हाल मालूम हुआ, तो देवव्रत कुछ बड़े बूढ़ों को साथ ले मछुओं के राजा की सभा में पहुँचे और अपने पिता के साथ सत्यवती का विवाह कर देने की प्रार्थना की।

मछुओं के राजा ने कहा—सम्बन्ध तो ऐसा है कि मैं क्या, इन्द्र भी आपके घराने में लड़की देना पसन्द करेंगे। पर यह मैं कभी स्वीकार न करूँगा कि मेरा धेवता राजा न बने।

देवव्रत ने कहा—मैं वचन देता हूँ कि मैं राज न लूँगा। सत्यवती की कोख से जो लड़का होगा, वही राज करेगा।

लेकिन बूढ़े का मन इतने से सन्तुष्ट न हुआ। उसने कहा—माना आप राज न लेंगे, मेरे धेवते को ही दे देंगे। पर आपका लड़का अगर छीन ले, तो ?

सत्यवती के पिता की शंका सुनकर देवव्रत ने दोनों हाथ उठा कर कहा—आप चिन्ता न कीजिए। मैं सारी जिन्दगी ब्रह्मचारी रहूँगा। यह राज क्या, तीनों लोकों के राज के लिए भी मैं अपनी प्रतिज्ञा से न हटूँगा।

चाहे सूर्य अपना तेज, चन्द्रमा अपनी शीतलता और धर्मराज अपना धर्म छोड़ दें, पर देवव्रत अपनी प्रतिज्ञा से न टलेगा।
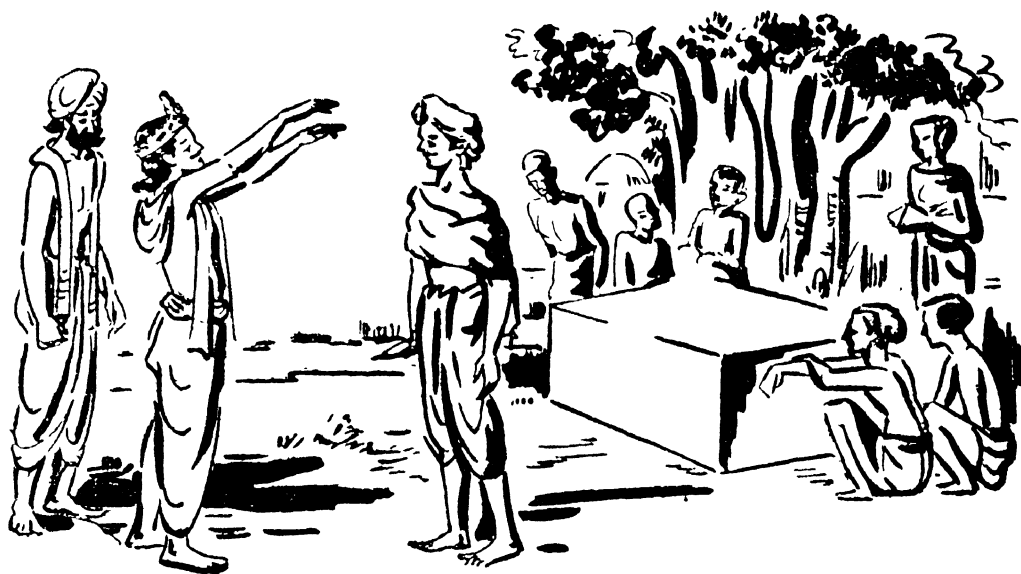
अब कठिनाई क्या थी। शान्तनु के साथ सत्यवती का विवाह हो गया। पिता की इच्छा पूरी करने के लिए ऐसी कठोर प्रतिज्ञा करने के कारण देवव्रत का नाम भीष्म पड़ गया। समय पर सत्यवती के दो पुत्र हुए चित्रांगद और विचित्रवीर्य। बड़ा शान्तनु के बाद राजा बना, पर एक युद्ध में मारा गया। तब भीष्म ने छोटे भाई को राजा बनाया। उसका विवाह भी भीष्म ने ही कराया था। अभी विचित्रवीर्य को राज करते सात साल हुए थे कि उसे क्षय रोग हो गया जो उसके प्राण लेकर ही गया। उसके कोई सन्तान न थी।

भीष्म को भाई की मृत्यु से बहुत दुःख हुआ और सत्यवती के सामने तो अँधेरा ही अँधेरा था। उसने भीष्म को बुलाकर समझाया—तुम अपनी बात पर डटे रहे। लेकिन अब तो मेरे बेटे रहे नहीं। अब तुम्हारी प्रतिज्ञा

बेकार है। वंश को नष्ट होने से बचाने के लिए तुम विचित्रवीर्य की विधवा रानियों से विवाह कर लो। पर भीष्म टस से मस न हुए। उन्होंने कहा---मैंने जो व्रत लिया है, उसे जिन्दगी भर पालूंगा।

सत्यवती बड़े असमंजस में पड़ी। अब क्या किया जाय ? अन्त में व्यास मुनि से प्रार्थना की गई और दोनों विधवा रानियों के व्यास भगवान से दो पुत्र हुए और इनसे वंश चला।

भीष्म अपनी प्रतिज्ञा पर सारे जीवन अटल रहे। जो ब्रह्मचारी का जीवन ऋषियों मुनियों के लिए भी कठिन है, उसे भीष्म ने पूरी दृढ़ता से बिताया। गृहस्थी के सुखों की ओर कभी आँख तक न उठाई। इसलिए आज भी जब कोई बहुत कठोर प्रतिज्ञा करता है, तो उसका यह काम भीष्म प्रतिज्ञा कहलाता है।

१२

कालिदास

संस्कृत किसी समय इस देश की और आसपास के कुछ और देशों की भाषा थी। आजकल भारत में संस्कृत बोलने और लिखने वालों की संख्या अधिक नहीं है, पर कभी वह इस देश की राजभाषा भी थी। इस भाषा में हमें बहुत अच्छा साहित्य मिलता है। कालिदास संस्कृत के सबसे बड़े कवि माने जाते हैं, इसीलिए उन्हें "कवि कुल गुरु" कहा जाता है। कालिदास की गिनती, भारत के ही नहीं संसार के महाकवियों में की जाती है।

अभी तक ऐसी चीजें बहुत कम मिली हैं, जिनसे कालिदास के निजी जीवन पर प्रकाश पड़ सके। इसलिए यह बताना कठिन है कि वह कहां और कब पैदा हुए, उन्होंने अपने जीवन का अधिक समय कहां

बिताया, और किस राजा के दरबार में रहे। उनके माता पिता और दूसरे सगे संबंधियों के बारे में भी ठीक ठीक कुछ नहीं कहा जा सकता।

कालिदास ने अपनी रचनाओं में अपने निजी विचारों और अनुभवों को दूसरी घटनाओं के साथ इस तरह घुला मिला दिया है, कि उनसे भी महाकवि के जीवन की रूप-रेखा नहीं बनाई जा सकती। अब तक जो चीजें मिली हैं उनके आधार पर कहा जाता है कि कालिदास चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के राजकवि थे और उन्होंने अपने जीवन का अधिक भाग उज्जैन में बिताया। उनके वर्णनों को पढ़ कर यह भी पता चलता है कि वह काश्मीर और हिमालय के दूसरे स्थानों पर खूब घूमे थे और गंगा के आसपास के इलाके को भी पूरी तरह जानते थे। कहा जाता है कि कालिदास उनका असली नाम न था। वह काली के उपासक थे, इसलिए उन्हें कालिदास कहा जाता था।

कालिदास की प्रसिद्ध रचनाओं के नाम ये हैं :

रघुवंश, कुमार सम्भव, मेघदूत, मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशी और अभिज्ञान शाकुन्तल।

इनमें से 'रघुवंश' और 'कुमार सम्भव' महाकाव्य हैं। 'रघुवंश' के १९ सर्गों (भागों) में रघुकुल के प्रतापी राजाओं का बखान है। श्री रामचन्द्र जी इसी वंश के थे। कालिदास ने इस काव्य में रघुवंश के राजाओं की महानता, वीरता, उदारता और सत्यप्रेम को खूब दरशाया है।

'कुमार सम्भव' में शिव पार्वती के विवाह और उनके पुत्र कुमार की वीरता की कहानी है। पार्वती ने शिव को पाने के लिए कठोर तपस्या की थी। अन्त में उन्हें सफलता मिली। 'कुमार सम्भव' में पार्वती की

तपस्या का हाल बहुत ही विस्तार के साथ लिखा गया है।

'मेघदूत' में एक यक्ष (एक जाति का नाम) के मन के भावों का चित्र है। अपने घरबार और सगे सम्बन्धियों से बिछुड़े हुए इस यक्ष को बरसात में बादल देखकर घर की याद आती है। वह बादल को अपना दुखड़ा बतलाता है और अपनी पत्नी के पास जो उसकी राह देख रही होगी, संदेशा ले जाने को कहता है।

'मा ल वि का ग्नि मि त्र', 'विक्रमोर्वशी' और 'अभिज्ञान शाकुन्तल' कालिदास के तीन प्रसिद्ध नाटक हैं। पहले नाटक में महाराज अग्निमित्र और राजकुमारी मालविका और दूसरे नाटक में महाराज पुरुरवा और उर्वशी की कथा है।

'अभिज्ञान शाकुन्तल' या 'शकुन्तला' कालिदास की सब से प्रसिद्ध रचना है। संसार की अधिकतर भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है। देश विदेश के विद्वानों ने इसकी प्रशंसा की है। इस नाटक में

हस्तिनापुर के महाराज दुष्यन्त और शकुन्तला की कथा है। शकुन्तला को महर्षि कण्व ने अपने आश्रम में पुत्री की तरह पाला था। दुष्यन्त और शकुन्तला पहली बार कण्व के आश्रम में मिलते हैं और अपनी इच्छा से विवाह के सूत्र में बँध जाते हैं। जल्दी ही शकुन्तला को बुला लेने का वादा करके दुष्यन्त अपनी राजधानी को लौट जाते हैं। उधर कण्व के आश्रम में महर्षि दुर्वासा आते हैं। पति की याद में सुधबुध भूली शकुन्तला उनका उचित सत्कार नहीं करती। दुर्वासा उसे शाप देते हैं कि वह जिसके ध्यान में लीन है, वही उसे भूल जाएगा। परन्तु शकुन्तला की एक सहेली के प्रार्थना करने पर कहते हैं, दुष्यन्त ने जो अँगूठी दी है, उसे दिखाने से वह शकुन्तला को पहचान जाएगा।

शकुन्तला दुष्यन्त की याद में घुलघुल कर काँटा हो रही है। पर राजा शकुन्तला की सुध नहीं लेता। तब कण्व मुनि बिना बुलाये ही शकुन्तला की विदा की तैयारी कराते हैं।

विदा करते समय कण्व मुनि की क्या दशा थी। इसका वर्णन कालिदास ने इन शब्दों में किया है :

यह सोचते ही दिल बैठा जा रहा है कि "आज शकुन्तला चली जाएगी आंसुओं को रोकने से गला इतना रुंध गया है कि मुंह से शब्द नहीं निकलते इसी चिन्ता में मेरी आंखें भी धुंधली पड़ गई हैं। जब मुझ जैसे बनवासी को इतना दुःख हो रहा है, तो उन बिचारे गृहस्थों की क्या दशा होती होगी जो अपनी कन्या को पहले पहल विदा करते होंगे।"

शकुन्तला ने आश्रम में बहुत से पौधे लगाए थे। वह पौधों को बड़े चाव से सींचती थी। आज उन पेड़, पौधों और लताओं को देख कर कण्व की ममता उमड़ पड़ती है। वह कहते हैं :

"तपोवन के वृक्षो और लताओ! जो शकुन्तला तुम्हें सींचने से पहले कभी पानी नहीं पीती थी, फूल पत्तियों के गहने पहनने की इच्छा होने पर भी जो स्नेह के कारण तुम्हारे कोमल पत्तों को हाथ नहीं लगाती थी, जो तुम्हारी नन्हीं कलियों को देख देख कर फूली न समाती थी, वही शकुन्तला आज तुमसे बिछुड़ रही है। तुम उसे प्रेम से विदा करो।"

इस अवसर पर पुत्री को नारी धर्म की शिक्षा देते हुए कण्व जो कुछ कहते हैं, उससे उनके समय के सामाजिक आदर्शों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। वह कहते हैं :

"बेटी, पति के घर पहुँच कर घर के सब बड़े बूढ़ों की सेवा करना अपनी सौतों से सखियों जैसा प्रेम करना। पति निरादर भी करें, तो क्रोध करके उनसे झगड़ा न करना। अपने दास दासियों को बड़े प्यार से रखना और अपने सौभाग्य पर घमंड न करना। जो स्त्रियां इन बातों का पालन

*

शकुन्तला आश्रम के पेड़ों और फूलों से विदा हो रही है

—मुकुल दे

*

करती हैं, वे ही सच्ची गृहिणी होती हैं और जो इसका उलटा करती हैं, वे खोटी स्त्रियां अपने कुल की नागिन होती हैं।"

शकुन्तला पति के घर जाती है। दुर्वासा के शाप के कारण दुष्यन्त उसे पहचानते नहीं। दुष्यन्त ने कण्व के आश्रम से विदा होते समय शकुन्तला को एक अंगूठी दी थी। शकुन्तला इस समय वह अंगूठी दिखा कर दुष्यन्त को याद दिलाना चाहती है, पर वह अंगूठी पहले ही न जाने कहाँ गिर चुकी थी। पति उसे स्वीकार नहीं करता। उधर आश्रम भी छूट गया है। शकुन्तला को सूझ नहीं पड़ता कि वह क्या करे। अन्त में एक अप्सरा उसे ले जाती है और हेमकूट पर्वत में महर्षि कश्यप के आश्रम में रखती है।

शकुन्तला को दी हुई दुष्यन्त की अंगूठी एक धीवर को मछली के

पेट से मिलती है। वह उसे लेकर दुष्यन्त के पास जाता है। अंगूठी देख कर दुष्यन्त को भूली बातें याद आ जाती हैं। वह बहुत दुःखी होता है और शकुन्तला के विरह में बेचैन रहने लगता है। इसी बीच इन्द्र के बुलाने पर दुष्यन्त इन्द्र लोक जाता है। वहाँ से लौटते समय हेमकूट पर्वत पर महर्षि कश्यप के आश्रम में एक बालक को शेर के साथ खेलते देखकर दुष्यन्त के हृदय में पुत्र स्नेह उमड़ आता है। बाद में उसे पता चलता है कि वह बालक उसी का पुत्र है। इसके बाद दुष्यन्त और शकुन्तला मिलते हैं। अब तो उनकी खुशी की सीमा नहीं रहती। शकुन्तला के वीर बालक की ओर देखते हुए कश्यप कहते हैं, "इस समय अपने बल से सब जीव जंतुओं को अपने अधीन करने के कारण इस बालक का नाम 'सर्वदमन' है। आगे चल कर सारे संसार की रक्षा करने के कारण यह 'भरत' कहलाएगा।" कहा जाता है कि शकुन्तला और दुष्यन्त के पुत्र 'भरत' के नाम पर ही हमारे देश का नाम 'भारत' या भारतवर्ष पड़ा।

कालिदास अपनी उपमाओं के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। उपमा में कवि दो चीजों का मुक़ाबला या तुलना करता है और उनमें से एक की मिसाल देकर दूसरे के गुणों पर प्रकाश डालता है। बखान की सुन्दरता बढ़ाने के लिए कवि कहीं उपमा देता है, तो कहीं अपनी बात किसी दूसरे अनोखे ढंग से कहता है। वह चतुर कारीगर की तरह अपनी रचना में भाँति भाँति के नगीने जड़ता है। कालिदास इस प्रकार बखान करने में सबसे बड़े कवि माने गए हैं।

बखान की सुन्दरता के नमूने शकुन्तला नाटक में तो हैं ही, पर उनके काव्यों—कुमार सम्भव, रघुवंश और मेघदूत में इनकी छटा देखने योग्य है।

शकुन्तला नाटक से एक नमूना देखिए :

शकुन्तला आश्रम के बिरवे सींच रही है। कवि के शब्दों में कोमल शकुन्तला के कोमल शरीर के लिए यह उतना ही कठिन काम है जितना कमल की पंखड़ी की धार से शमी का पेड़ काटना। शकुन्तला की कोमलता और इस काम की कठोरता का कितना अच्छा चित्र है।

'कुमार सम्भव' का आरम्भ वह हिमालय के वर्णन से करते हैं। भारत के उत्तर में पच्छिम से पूरब तक फैला हुआ यह पहाड़ अपनी ऊँचाई और लम्बाई में बेजोड़ है। कवि उसकी लम्बाई को देख कर कहता है—मानो पृथ्वी को नापने वाला गज़ हो।

कुमार सम्भव में ही पार्वती की सुन्दरता की चन्द्रमा से तुलना करते हुए कहा है :

पार्वती जैसे जैसे बढ़ रही हैं, उनकी सुन्दरता भी बढ़ रही है, जैसे चन्द्रमा के बढ़ने के साथ साथ उसका प्रकाश बढ़ता है।

रघुकुल कितना बड़ा राजवंश था और उसका बखान करना कितना कठिन काम था, इसे कालिदास 'रघुवंश' में इस प्रकार लिखते हैं—कहाँ सूर्य से पैदा हुआ रघुकुल और कहाँ मेरी जैसी थोड़ी बुद्धि वाला आदमी। मैं डोंगी पर सागर पार करना चाहता हूँ। मैं कवि बनने चला हूँ। लोग मेरी उसी प्रकार हँसी उड़ायेंगे जैसे अगर कोई बौना ऊँची डाल पर लगे फल को तोड़ने के लिए हाथ उठाए, तो सब हँसते हैं।

कालिदास ने अपनी रचनाओं के लिए नई कथाएं नहीं गढ़ीं। उन्होंने चालू और लोकप्रिय कथा कहानियों को ही अपनी रचनाओं में जगह दी। इन्हीं कथाओं के पुराने ढांचों में महाकवि कालिदास ने अपनी तरफ़ से तरह

तरह के रंग भरे, उन्हें सजाया, सँवारा और नया जीवन दिया।

कालिदास ने अपने जीवन में बहुत कुछ देखा और सीखा था। उन्होंने यात्राएं भी बहुत की थीं। अपने समाज की उन्हें पूरी जानकारी थी। नगर और तपोवन, प्रकृति और मनुष्य, सबका उन्हें पूरा ज्ञान था। इन सबका ऐसा चित्र अपनी रचनाओं में खींचा है कि पढ़ने वाला मुग्ध हो जाता है। वह मन के भावों को खूब समझते थे। प्रेम-वियोग, सुख-दुख आदि का इस खूबी से बखान किया है कि ऐसा लगता है जैसे हमारे ही मन की बात कह दी हो। यही कारण है कि इतना समय बीत जाने पर भी उनकी रचनाएँ आज भी ताजा लगती हैं और हर देश के लोगों का मन मोहती हैं।
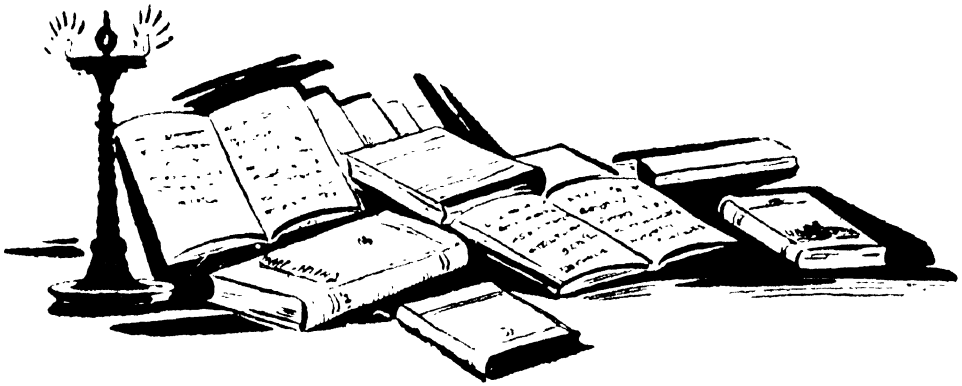
१३

हिन्दी साहित्य धारा

हिन्दी का जन्म आठवीं सदी ईस्वी के आसपास हुआ। इन लगभग बारह सौ बरसों के बीच हिन्दी में बहुत अधिक और सुन्दर साहित्य रचा गया। कई ग्रन्थ तो ऐसे हैं जिन्हें हम अपने अपने समय के प्रतिनिधि ग्रन्थ मान सकते हैं। इनमें उस समय की अच्छी झांकी मिलती है। बखान इतना सुन्दर है कि समय उनका रंग फीका नहीं कर सका। इनमें से कुछ चुने हुए ग्रन्थों का ब्योरा नीचे दिया जाता है।

पृथ्वीराज रासो :

हिन्दी के पहले महाकाव्य का नाम पृथ्वीराज रासो है। इसके रचने वाले कवि चन्द बरदाई थे। कहते हैं कि चन्द कवि महाराजा पृथ्वीराज

के राज कवि और सेनापति थे। इस तरह यह महाकाव्य बारहवीं सदी का ठहरता है। इसकी भाषा पुरानी हिन्दी है।

हिन्दी के इस समय के साहित्य को 'वीरगाथा काव्य' के नाम से पुकारा गया है। इन कविताओं में किसी बड़े राजा की वीरता और लड़ाई का बखान रहता था।

उस समय भारत छोटे छोटे रजवाड़ों में बंटा हुआ था। ये राजा अक्सर आपस में लड़ा करते थे। लड़ाइयों के कई कारण होते थे। कभी अपना राज्य बढ़ाने के लिए एक राजा दूसरे राजा पर चढ़ाई करता था। कभी किसी राजा की कन्या से विवाह के लिए कोई राजा रार ठान देता था। कभी बहादुरी दिखाने के लिए ही युद्ध छिड़ जाता था। एक तरफ देश में आपसी झगड़े हो रहे थे, दूसरी तरफ पछांह से विदेशी हमले होने लगे थे।

बारहवीं सदी में अजमेर में पृथ्वीराज चौहान राज्य करते थे। दिल्ली का राज्य उन्हें अपने नाना से मिल गया था, इसलिए उनका राज्य बहुत बढ़ गया था। कन्नौज के राजा जयचन्द की पुत्री संयोगिता से उन्होंने विवाह किया था, पर यह विवाह जयचन्द की इच्छा के विरुद्ध हुआ था। पृथ्वीराज संयोगिता को हर लाए थे।

पृथ्वीराज चौहान के राज्यकाल में मुहम्मद गोरी ने भारत पर कई हमले किए। इन हमलों का पृथ्वीराज ने डटकर सामना किया। अन्त में एक बार वह हार गए और चन्द बरदाई के अनुसार वह क़ैद कर लिए गए।

चन्द ने 'पृथ्वीराज रासो' में महाराज पृथ्वीराज की कहानी लिखी

है । संयोगिता से विवाह, गोरी से लड़ाइयों आदि का सुन्दर वर्णन इस ग्रन्थ में है, और उस समय के राजाओं के जीवन की झांकी भी मिलती है ।

पृथ्वीराज रासो पढ़ने से पता चलता है कि राजपूत बड़ी हिम्मत वाले, बहादुर और आन पर मर मिटने वाले थे । पर साथ ही वे घंमडी भी थे और उनमें आपस में लाग-डांट चलती रहती थी । इस आपस की फूट से देश को बहुत हानि पहुँची ।

पद्मावत :

धीरे धीरे भारत में मुसलमान बादशाहों का राज जम गया और करीब करीब पूरा उत्तर भारत उनके हाथ में आ गया । दक्खिन भारत में भी कुछ जगह उन्होंने अपना अधिकार जमाया । इस तरह एक नई सभ्यता से भारत वालों की पहचान हुई ।

मुसलमानों में सूफी सन्त बड़े उदार विचार के थे । उनके विचार वेदान्त से मिलते जुलते थे । भेद यह था कि वे भगवान को पाने का रास्ता प्रेम बतलाते थे। सूफी सन्तों ने जनता में प्रचलित लोक कथाओं को कविता में लिखा । किसी प्रेमी प्रेमिका की कहानी वे लोग बखानते, और उस कहानी के सहारे भगवान से प्रेम की बात कहते ।

इन सन्तों में सोलहवीं सदी के मलिक मुहम्मद जायसी का विशेष स्थान है । उनकी रचना 'पद्मावत' हिन्दी का टकसाली ग्रन्थ है । इसकी भाषा अवधी है, जो बस्ती से लखनऊ के बीच बोली जाती है । 'पद्मावत' में चित्तौड़ की रानी पद्मिनी की कहानी कविता में लिखी गई है । यह कहानी इतिहास से पूरी पूरी नहीं मिलती । जायसी को इस कहानी के सहारे सूफी मत का प्रेम मार्ग समझाना था । उन्होंने अपनी कल्पना से कहानी को अपने

ढंग पर लिखा। इसमें पद्मिनी के रूप का बखान, प्रेम की पीर, वियोग की तड़प बहुत ही सुन्दर ढंग से बताई गई है। जायसी इस कहानी के सहारे बताते हैं कि जीव ईश्वर को पाने के लिए उसी तरह तड़पता है, जैसे एक प्रेमी अपनी प्रेमिका को पाने के लिए।

जायसी हिन्दू मुसलमानों में भेद भाव न करते थे। इनसे पहले अमीर खुसरो और कबीर भी ऐसे ही कवि हुए हैं। उनके यहाँ भी ऊँच नीच या धर्म का भेद नहीं है। खुसरो ने हिन्दी भाषा को सँवारने में काफी काम किया है। उनकी मुकरियां और पहेलियाँ आज भी मनोरंजन का साधन हैं।

भक्त कबीर धर्म के ऊपरी आडम्बर को न मानते थे, बल्कि घट घट व्यापी राम के उपासक थे। उन्होंने सीधी सादी भाषा में दोहे और भजन कहे और छोटे बड़े सभी ने उनको अपनाया।

रामचरित मानस :

जिस समय एक ओर सूफी सन्त अपनी प्रेम की वाणी सुना रहे

थे, उसी समय दूसरी ओर वैष्णव धर्म भी फैल रहा था। वैष्णव भी सबको प्रेम की डोर में बांध देना चाहते थे।

जाति पांति पूछे ना कोय,
हरि को भजे सो हरि का होय।

ये थे वैष्णवों के विचार। वे भगवान के सभी भक्तों को समान मानते थे। जाति पांति के भेद भाव को भुलाकर वैष्णव धर्म में ब्राह्मण और शूद्र एक दूसरे से गले मिलते थे। वैष्णव सन्तों में गोस्वामी तुलसीदास और सूरदास ब्राह्मण थे। मगर नामदेव, रैदास और दादू उन जातियों के थे जिन्हें छोटा समझा जाता था।

पहले कुछ ऐसे वैष्णव सन्त कवि हुए हैं, जिन्होंने भगवान के अवतार की बात नहीं कही। ये लोग निर्गुण ईश्वर को मानते थे। बाद के कवि भगवान के अवतारों का बखान करते हैं। राम और कृष्ण, दो अवतार मुख्य माने गए हैं। कुछ कवियों ने राम के गुण गाए और कुछ ने कृष्ण के।

राम के गुण गाने वालों में गोसाईं तुलसीदास जी सबसे बड़े कवि हुए हैं। गोसाईं जी की रचना, रामचरित मानस, जिसे रामायण भी कहते हैं, अवधी में लिखा हिन्दी का सबसे बड़ा महाकाव्य है। इसकी गिनती संसार के गिने चुने बड़े ग्रन्थों में है। हिन्दी जानने वालों में रामायण के बराबर आदर और किसी ग्रन्थ का नहीं। ऐसा कोई हिन्दी जानने वाला न होगा, जिसे रामायण की कुछ चौपाइयां याद न हों।

रामायण में रामचन्द्र जी के अवतार की कहानी बड़े ही रोचक ढंग से कही गई है। कहानी के साथ साथ आदमी को धर्म का उपदेश दिया गया है। गृहस्थ धर्म का तो ऐसा उपदेश और कहीं मिलता ही नहीं। भाई

भाई का सम्बन्ध कैसा हो, पति पत्नी में कैसा व्यवहार होना चाहिए, पिता पुत्र का क्या कर्तव्य है ? ये सभी बातें बहुत ही सुन्दर ढंग से समझाई गई हैं । रामायण ज्ञान का भंडार है । इसमें जीवन की सब बातों का निचोड़ मिलता है । यही कारण है कि आज भी घर घर रामायण की आरती होती है और गांव गांव में रामायण के बोल सुनाई पड़ते हैं। गोसाईं जी कैसे माने हुए चोटी के भक्त कवि थे, इस पर 'रहीम' का यह दोहा प्रकाश डालता है :

'सुरतिय, नरतिय, नागतिय, सब चाहति अस होय ।
गोद लिए हुलसी फिरें, तुलसी सो सुत होय ।।

सूरसागर :

तुलसीदास जी ने भगवान राम का चरित गाया है, तो सूरदास जी ने भगवान कृष्ण का। पर सूरदास जी ने कृष्ण के पूरे जीवन की कहानी नहीं कही। वह तो भगवान के बाल-रूप के भक्त थे। उन्होंने कृष्ण की बाल लीला और गोपियों के प्रेम और विरह पर पद रचे हैं। उनके इन गीतों

में इतना रस है कि इन बातों के बखान में गोसाईं जी भी सूर से आगे नहीं जा सके। मथुरा के आसपास बोली जाने वाली ब्रजभाषा में लिखा 'सूर सागर' भक्ति और प्रेम का मीठा क्षीर सागर है, जिसे पीते हुए पढ़ने वाला कभी नहीं अघाता। सूर के पद हृदय को कितना छूते हैं, इस पर एक दोहा प्रसिद्ध है :

किधौं सूर को सर लग्यो, किधौं सूर की पीर,
किधौं सूर को पद लग्यो, बेध्यो सकल सरीर।

इस भक्तिकाल में और भी ऐसे चोटी के कवि हुए हैं, जिन्हें आज तक हिन्दी संसार नहीं भूला और जो सदा अमर रहेंगे। विद्यापति, मीराबाई, अब्दुल रहीम खानखाना 'रहीम' और रसखान ऐसे ही कवियों में हैं। हिन्दू मुसलमान सभी कवि इस भक्ति की गंगा में डुबकियां लगा रहे थे और अपनी वाणी से जनता के मन को तृप्त कर रहे थे।

बिहारी सतसई :

कृष्ण भक्ति का हिन्दी के साहित्य पर बहुत प्रभाव पड़ा। आगे चल कर अठारहवीं सदी में राधा कृष्ण के प्रेम का रूप बदल गया। अब संसारी प्रेम की ओर कवि झुके। इस समय की कविता में शृंगार रस

विशेष रूप से मिलता है। नायिका के रूप का बखान, नायक के विरह में नायिका का व्याकुल रहना, नायक नायिका का मिलना---ये सब कविता के विषय बन गए। एक बात और हुई। अनोखे ढंग से बात कहने की ओर कवियों का झुकाव अधिक हो गया। इस समय का करीब करीब सब साहित्य ब्रज भाषा में लिखा गया। भाषा बहुत ही मंजी हुई और मीठी रहती थी। उसे खूब संवारा जाता था। इस समय के कवियों में बिहारी, मतिराम, भूषण, देव, पद्माकर, आलम और घनानन्द ख़ास हैं।

इन कवियों में से भूषण ने शृंगार रस की कविताएं नहीं लिखीं। उन्होंने शिवा जी की वीरता का बखान किया है। इस काल के कवियों में बिहारी का ख़ास स्थान है। वह थोड़े में बहुत और चुभता हुआ कहने के लिए प्रसिद्ध हैं। बिहारी ने सात सौ दोहे लिखे हैं जो 'बिहारी सतसई' के नाम से छपे हैं। सतसई के बारे में यह दोहा बहुत प्रसिद्ध है :

सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगें, बेधत सकल सरीर॥

वैसे तो बिहारी सतसई में भक्ति, उपदेश, वैद्यक आदि कई विषयों पर लिखा गया है, लेकिन शृंगार रस के दोहे ही अधिक हैं। इन दोहों में बिहारी ने गागर में सागर भरा है। बाद में बहुत से बड़े बड़े कवियों ने बिहारी के एक एक दोहे के भाव पर छन्द रचे हैं।

भारत भारती :

इस शृंगार युग के बीतते न बीतते इतिहास करवट लेता है। हमारे देश में अंग्रेजों का शासन आ जाता है। अब कवियों और लेखकों का ध्यान नायिका के रूप से हट कर देश की दशा पर टिकता है। उन्नीसवीं सदी

के अन्त में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भारत दुर्दशा की ओर देश का ध्यान खींचते हैं। पहले पहल उनके नाटकों में देश प्रेम की हुंकार सुनाई पड़ती है। सन् १९०५ में बंगाल में स्वदेशी आन्दोलन छिड़ता है। धीरे धीरे राष्ट्रीय कांग्रेस नरम लोगों का पल्ला छोड़ कर गरम लोगों के हाथ में आती है। सन् १९१४ की लड़ाई के बाद महात्मा गांधी भारत की

राजनीति में आ जाते हैं और देश आज़ादी के लिए पूरे ज़ोर से लड़ने लगता है।

इस बीच देश को जगाने का बीड़ा उठाने वालों में मैथिलीशरण गुप्त ख़ास हैं। वह देशवासियों से कहते हैं:

हम कौन थे, क्या हो गए हैं,
और क्या होंगे अभी,
आओ विचारें बैठ करके,
यह समस्याएं सभी।

और 'भारत भारती' में अपने देश के बीते युग, आज के समय और आगे आने वाले समय की झांकी देते हैं। पहले हम कैसे वीर थे, विद्या और

ज्ञान में कैसे बढ़े चढ़े थे—इसे पढ़ते पढ़ते सीना गर्व से फूल जाता है। फिर जब कवि आज की गिरावट का वर्णन करता है, तो लज्जा और क्षोभ से गर्दन झुक जाती है। तभी वह ललकारता है कि हमें क्या बनना चाहिए। १९११-१२ में रची अकेली 'भारत भारती' ने नौजवानों में देश प्रेम के भाव भरने में बहुत बड़ा काम किया है। भारतेन्दु के समय से ही खड़ी बोली में कुछ कुछ कविता होने लगी थी। गुप्त जी की 'भारत भारती' सुथरी खड़ी बोली का अच्छा नमूना है। बाद में अधिक कवि खड़ी बोली में ही रचनाएं करने लगे।

कामायनी :

अंग्रेजी शासन में लोग अंग्रेजी पढ़ने की ओर झुके और पच्छिम के नए विचारों से उनका परिचय हुआ। हिन्दी साहित्य में कथा कहानियों और कविताओं में नए विचार आने लगे। स्त्री-पुरुष की बराबरी, व्यक्ति की स्वाधीनता, विवाह में माता पिता का हाथ न होना, इस प्रकार के विचार प्रकट होने लगे। साथ ही एक बात और भी आई। अब हर बात बुद्धि की कसौटी पर कसी जाने लगी। श्रद्धा से किसी बात को मान लेना ठीक न जंचा। इस तरह नए और पुराने विचारों में ज़ोरों की टक्कर आरम्भ हुई। पन्त, प्रसाद और निराला इन नए ढंग के कवियों में ख़ास थे। इन कवियों ने अक्सर गीत या मुक्तक लिखे जिनमें कोई प्रबन्ध या कहानी न रहती थी। मन के भाव छोटे छोटे गीतों में प्रकट किए जाते थे। परन्तु प्रसाद जी ने कविता का एक बड़ा ग्रन्थ लिखा, जिसे कुछ हद तक प्रबन्ध काव्य कह सकते हैं।

प्रलय के बाद मनु ने कैसे फिर सृष्टि रची, यह बहुत पुरानी कहानी

है। वेदों और पुराणों में यह कहानी मिलती है। प्रसाद जी ने इसी को अपने काव्य 'कामायनी' का आधार बनाया और यह समझाया कि बुद्धि अकेली मन को सुख नहीं दे सकती। बुद्धि के साथ साथ श्रद्धा भी चाहिए। श्रद्धा ही मन को शान्ति देती है। कोरी बुद्धि आदमी के मन को चंचल बना देती है और वह अशान्त होकर इधर उधर भटकता रहता है। इस काव्य ने जैसे नए और पुराने विचारों में मेल कराया।

गोदान :

अंग्रेजों के ज़माने में ही गद्य में लिखने की तरफ भी विशेष ध्यान दिया गया। भारतेन्दु बाबू ने अपने नाटक काफी सुथरी खड़ी बोली में लिखे। इसके बाद गद्य में कहानियां और उपन्यास लिखे जाने लगे। धीरे धीरे अखबार भी निकले। अखबारों ने गद्य को संवारने में बड़ा काम किया। लेख, आलोचनाएं, यात्रा की कहानियां, आदि बहुत सी चीजें लिखी जाने लगीं।

जहां तक कहानियां और उपन्यास लिखने की बात है, प्रेमचन्द हिन्दी के सबसे बड़े लेखक हैं। उनकी रचनाओं में साधारण जनता, विशेष कर देहातों की जनता का रूप बहुत ही उभर कर आता है।

वैसे तो प्रेमचन्द जी की सभी रचनाएं बहुत अच्छी हैं, पर 'गोदान' उपन्यास इनमें सबसे ऊँचा ठहरता है। 'गोदान' में होरी नाम के एक सीधे सादे, गरीब और नेक किसान की कहानी है। किसानों के दुख दर्द, उनकी चाहों और कमियों, सब का बहुत ही सुन्दर चित्र इस उपन्यास में मिलता है। नेक होरी जिन्दगी भर मूँड़ माटी देकर मेहनत करता है, फिर भी गरीबी से छुटकारा नहीं पाता। उसके मरते समय उसे गोदान कराया जा सके, इतनी भी उसकी स्त्री की समाई नहीं।

हिन्दी साहित्य चन्द बरदाई से अब तक बराबर उन्नति करता जा रहा है। नए नए लेखक पुरखों की इस थाती को बढ़ाने में लगे हैं। साहित्य के सभी अंगों को पुष्ट करने का प्रयत्न हो रहा है।
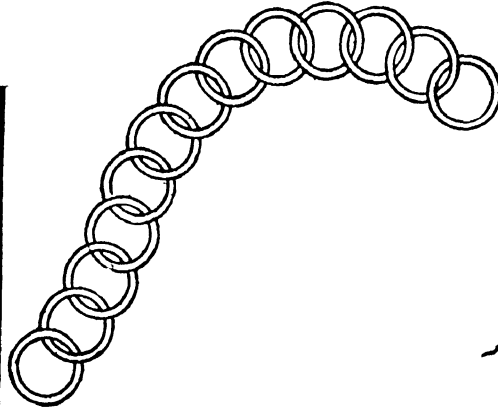
१४

अंग्रेज़ी साहित्य-धारा

भाषा से जनता के साहित्य की परख होती है। आज अंग्रेजी भाषा संसार की सबसे महत्त्व की भाषाओं में से एक है। यदि हम अंग्रेजों की प्रतिभा को परखना चाहें, तो हमें उनके महाकाव्यों को देखना होगा।

आप चासर से आरम्भ करिए जिसे अंग्रेजी काव्य का पिता कहते हैं। उसका जन्म सन् १३४० ई० में हुआ था और सन् १४०० के लगभग वह संसार से विदा हुआ। वह कई बातों के लिए प्रसिद्ध है। चासर पुराने नाइटों (कुलीन वीरों) में से था। उसने सैनिक और राजनीतिज्ञ के रूप में देश विदेश में काम किया। उसके समय में इंगलैंड में बहुत उथल-पुथल थी। लोग पादरियों और जागीरदारों के असर के खिलाफ़ आवाज उठाने

लगे थे। उनके मन में अजीब बेचैनी थी। चासर की कविताओं में हमें राष्ट्रीयता और उदार विचारों की पहली झलक मिलती है।

अभी तक अंग्रेजी भाषा की पूछ न थी। कुलीन लोग और पादरी वगैरह फ्रांसीसी भाषा पढ़ने में ही अपना बड़प्पन समझते थे। अंग्रेजी भाषा को वे लोग भोंडी और भदेस समझते थे और उससे मुंह बिदकाते थे। चासर ने अंग्रेजी में कविताएं लिखीं और उसे नया बड़प्पन और मर्यादा दी। चासर से पहले के लेखक जो कुछ लिखते, उसमें नीति का उपदेश जरूर देते। परन्तु चासर कलाकार था। उसने उपदेश कभी नहीं दिया। उसने दुनिया को जैसी देखी, उसकी वैसी ही तस्वीर अपनी कविताओं में खींच दी। स्वभाव से हंसोड़ और उदार होने के कारण वह विचारों और मतों के पचड़ों में नहीं पड़ा। उसने सदा आदमियों की बातें कीं।

उसकी सबसे प्रसिद्ध कविता 'कैंटरबरी की कहानियां' है। इसमें चासर ने अपने समय के समाज का सुन्दर चित्र खींचा है। लन्दन की सराय में जितनी तरह के आदमी आप को देखने को मिलेंगे, उन सब की तस्वीरें इस कविता में मिल जाएंगी। नाइट, मल्लाह, डाक्टर, पुरोहित, मजदूर, धनी व्यापारी की पत्नी, सभी प्रकार के लोग बड़ी मस्ती से हंसते और अपनी-

अपनी बातें कहते मिलते हैं। उस समय के लोगों की वीरता, प्रेम और जीवट का गाढ़ा रंग कैंटरबरी की कहानियों में मौजूद है।

चासर के बाद डेढ़ सौ साल तक कोई ऐसा बड़ा कवि या लेखक नहीं हुआ जिसका नाम इस महाकवि के साथ लिया जा सके। डेढ़ सौ साल बाद अंग्रेजी का सबसे बड़ा कवि और नाटक लेखक शेक्सपियर हमारे सामने आता है। शेक्सपियर का स्थान अंग्रेजी साहित्य में ही नहीं, बल्कि सारी दुनिया के साहित्य में बहुत ऊँचा है। यह वह समय था जब मध्य युग बीत चुका था और वर्तमान युग का जन्म हुआ था। लोगों ने नए युग में आंखें खोली थीं। पूरे देश में जागरण की नई लहर दौड़ रही थी। इंगलेंड की धाक जल और थल पर जम रही थी। उस समय के साहित्य में इसकी झलक मिलती है। कवि और नाटक लिखने वाले अंग्रेजी के भंडार को खूब भर रहे थे। इसमें सबसे बड़ी देन शेक्सपियर की थी। उस समय एलिज़ाबेथ इंगलैंड की गद्दी पर थीं।

शेक्सपियर का जन्म १५६४ और मृत्यु १६१२ ई० में हुई। उसने साहित्य रचना कविता से शुरू की। मगर उसकी प्रतिभा का पूरा चमत्कार नाटकों में देखने को मिला। चार सदियां बीत जाने पर भी उसके नाटक पुराने नहीं हुए। संसार की प्रायः सभी भाषाओं में आज भी उसके नाटक खेले जाते हैं।

शेक्सपियर के नाटकों में उस

समय के जीवन की सब बातें पूरी पूरी हमारी आंखों के सामने आ जाती हैं। प्रेम और रोमांस, जीवन की गुत्थियां सुलझाने की चाह, दैवी शक्तियो पर श्रद्धा---सब कुछ यहां मिलता है। सुख, दुख, कल्पना, गद्य, कविता, गाना–नाटक को पूर्ण बनाने वाली हर चीज़ शेक्सपियर के नाटकों में है ।

उस के ऐतिहासिक नाटकों 'चौथे हेनरी' और 'पाँचवें हेनरी' मे हमें इंगलैंड के राजाओं के जीवन की झांकी मिलती है। 'एज़ यू लाइक इट', 'मिड समर नाइट्स ड्रीम', 'मर्चेन्ट आफ़ वेनिस', 'टेम्पेस्ट' ऐसे सुखान्त नाटक हैं जिन्हें लोग बहुत पसन्द करते हैं। दुःखान्त नाटकों के रूप में 'जूलियस सीज़र', 'हैमलेट', 'मेकबेथ', 'ओथेलो' और 'किंग लियर' ऐसे हैं जो शेक्सपियर को नाटक-लेखकों का सिरमौर बना देते हैं।

शेक्सपियर बहुत बड़ा कलाकार था। साथ ही वह मनुष्यमात्र को प्यार भी करता था। आदमी के स्वभाव और चरित्र की उसे ऐसी परख थी और वह ऐसी खूबी से इनको आंकता था कि आज तक कोई उससे आगे नहीं जा सका। यही कारण है कि उसकी रचनाएं सारी दुनिया के लोगों के दिलों में घर किए हुए हैं ।

शेक्सपियर की मृत्यु से कुछ साल पहले, सन् १६०८ में मिल्टन का जन्म हुआ। शेक्सपियर की तरह मिल्टन भी अपने समय में सब के मन पर राज्य करता रहा। वह बहुत बड़ा विद्वान था और उस पर बाइबिल का बड़ा प्रभाव था। उसके समय में राजतंत्र का अन्त हुआ और कट्टर सुधारक क्रामवेल का शासन चला। इसका फल यह हुआ कि लोगों का मन राजनीति और दर्शन की ओर झुका। जीवन की रंगीनियाँ कुचली गईं। मिल्टन इस नए युग का बड़ा समर्थक था। वह मसीहा की भाँति संसार के लोगों

से चिल्ला चिल्ला कर कहता था कि यदि उनका मन धर्म और ईश्वर में न लगा, तो प्रलय हो जाएगा।

मिल्टन ने अंग्रेजी साहित्य को संगीत और कल्पना से भरपूर कविताएं भेंट कीं। उसकी सबसे बड़ी रचना 'पैराडाइज़ लास्ट' नाम का महाकाव्य है। इसमें ईश्वर, शैतान, देवदूतों और धरती पर मनुष्य के आने की कहानी है। इसमें बताया गया है कि हमारे पहले पुरखा आदम और हव्वा ईश्वर की आज्ञा न मानने के अपराध में किस तरह स्वर्ग के बाग़ से निकाल दिए गए और अन्त में किस प्रकार ईसा मसीह ने जन्म लेकर और सूली पर चढ़कर मनुष्य को मुक्ति का मार्ग दिखाया। मिल्टन कला में महानता और पवित्रता का पुजारी था। यह गुण इंगलैंड में आने वाले नए जागरण की देन था। दूसरी ओर उसमें सुधारकों वाली विश्वास की सच्चाई और जोश भी था।

सन् १६७४ ई० में उसकी मृत्यु के साथ साथ अंग्रेजी साहित्य का एक महान युग पूरा हो गया। इंगलैंड ने संसार को एक से एक ऐसे प्रतिभा वाले सपूत दिए, जिन पर किसी भी देश को गर्व होगा। उनकी रचनाओं ने अंग्रेजी साहित्य को अलग अलग दिशाओं में बढ़ने के लिए रास्ता बना दिया।

मिल्टन के बाद दूसरी प्रतिभा पोप के रूप में सामने आई। पोप का

जन्म सन् १६८८ ई० में हुआ और स्वर्गवास १७४४ में। साहित्य में अब

तक जो परिवर्तन आए थे, वे इस युग के जीवन में गहराई तक पैठ चुके थे। एलिजाबेथ के समय के आदर्श और सुधारकों के युग की कट्टरता अब पुरानी पड़ चुकी थी। व्यंग्य और आलोचना इस नए युग की विशेषता थी। भावुकता का स्थान बुद्धि ने ले लिया था। चुटकुले, लेख और फड़कती हुई कविताएं लिखने की परिपाटी चल पड़ी थी।

इसी समय समाचार पत्रों का निकलना भी शुरू हुआ और लेखकों और कवियों का मान बहुत बढ़ गया। उस समय के लन्दन में ३,००० से अधिक 'काफी हाउस' थे जहां विद्वान, व्यापारी और कुलीन लोग जी खोलकर एक दूसरे से मिलते जुलते थे। प्रजातंत्र का प्रभात हो रहा था।

पोप रोमन कैथोलिक कुटुम्ब में पैदा हुआ था। यह मानो उस पर एक धब्बा था, क्योंकि लोग कैथोलिकों को अच्छी नजर से न देखते थे। पर पोप बहुत अच्छा व्यंग्य लिखने वाला और आलोचक था। इसलिए वह जल्द ही सब की आंखों पर चढ़ गया। उसकी प्रसिद्ध कविताएं हैं, 'दि रेप आफ़ दि लाक', जिसमें उस युग की कमजोरियों को दिखाया गया है, 'दि डनसियल', जिसमें उस समय की राजनीतिक मूर्खताओं का मजाक उड़ाया गया है, और 'दि एसे आन मैन', जिसमें उस समय के जीवन दर्शन की गूंज है।

पोप के बाद काफी समय बीतने पर फिर एक नई प्रतिभा चमकी। शेली १७९२ ई० में पैदा हुआ और अपनी सुनहली झलक दिखा कर कोई ३० साल की उम्र में १८२२ में विदा हो गया।

अठारहवीं सदी में तर्क का बोलबाला था। ग्रीक और लैटिन के पंडितों ने साहित्य के जो शास्त्रीय नियम बनाए थे, उन को मान कर साहित्य रचा जा रहा था। परन्तु अब फिर परिवर्तन आया। यूरोप और इंगलैंड में एक जोर का आन्दोलन चला। आदमी आदमी की बराबरी, स्त्री पुरुष की बराबरी और प्रकृति की गोद में खुलकर विचरना—ये इस नए आन्दोलन की विशेषताएँ थीं। फ्रांस की क्रान्ति में आज़ादी, बराबरी और भाईचारे का नारा उठा था। चारों तरफ़ उसकी गूँज थी। नए विचारों की मशाल ने सभी दिशाओं में प्रकाश कर दिया था। नौजवान कवि शेली इस मशाल को लेकर पूरे उत्साह के साथ आगे बढ़ा। शेली में इन नए विचारों के लिए ऐसी तड़प थी जो दूसरों में नहीं मिलती। अपने छोटे से जीवन में ही शेली ने अंग्रेज़ी साहित्य की फुलवारी को अपनी कविता के गुलाबों की महक से भर दिया। उसकी रचनाओं की हर पंक्ति में सुन्दरता और बारीकी ऐसी रची हुई है जैसे गुलाब की पंखड़ी पंखड़ी महक से गमकती रहती है।

शेली इंगलैंड का सबसे बड़ा गीत लिखने वाला कवि था। विचारों में वह क्रान्तिकारी और आदर्शवादी था। उसका विश्वास था कि अन्त में

प्रेम और अच्छाई की ही विजय होती है । उसकी सबसे सुन्दर कविताएँ हैं : दि सेंसिटिव प्लांट, प्रोमिथियस अनबाउंड, दि स्काई लार्क, और ओड टु द वेस्ट विंड ।

शेली के समय में प्रेम और प्रकृति के गीत गाने वाले और भी कई कवि थे । इनमें से एक टेनिसन था, जिसके साथ विक्टोरिया युग आरम्भ हो जाता है । अभी प्रकृति प्रेम का प्रभाव बाक़ी था, पर धीरे धीरे वह कम हो रहा था । यह उद्योग धन्धों का समय था । कल कारख़ाने ख़ूब धन दे रहे थे । साथ ही राज्य सत्ता में भी कुलीनों की जगह मध्यवर्ग के नए धनियों का ज़ोर बढ़ रहा था । धन बल और राज बल पाकर यह बीच का वर्ग, यानी मध्यम श्रेणी, मज़े की ज़िन्दगी बिता रहा था । उसके सामने किसी तरह की चिन्ता न थी ।

फल यह हुआ कि साहित्य में ऊपरी बनाव सिंगार, कोरी भावुकता और नियम कायदों पर ही ज़ोर दिया जाने लगा । टेनिसन में ये सब बातें बिलकुल साफ़ दिखाई पड़ती हैं । वह बहुत ही सुथरा हुआ कलाकार था । शब्दों की परख उसे बहुत ही अधिक थी । वह अपनी कविताओं में शब्दों का ऐसा चुनाव करता था कि एक एक शब्द में संगीत रहता था । वह अक्सर प्रेम की कविताएं लिखता था । दि इडिल्स

ग्राफ दि किंग, माड, इन मेमोरियम ग्रौर लाक्सले हाल उसकी सब से ग्रच्छी कविताएं हैं। टेनिसन १८०६ में पैदा हुग्रा ग्रौर १८६२ में उसका स्वर्गवास हुग्रा।

ग्रब तक हमने कवियों की चर्चा की है। ग्रब कुछ गद्य लेखकों का परिचय भी दे दें। गद्य में लिखना बहुत पहले से शुरू हो गया था। समाचार पत्रों ने गद्य को साफ़ सुथरा बनाने ग्रौर संवारने में बहुत हाथ बंटाया था। गद्य का चोटी का लेखक डिकेंस ग्रब हमारे सामने ग्राता है। उस समय तक उपन्यासों का चलन हो चुका था। लोग उपन्यास साहित्य को बहुत पसन्द करते थे। डिकेंस ने भी इसी ग्रोर क़दम बढ़ाया। ग्रपनी रचनाग्रों में उसने विक्टोरिया युग के जीवन पर प्रकाश डाला। हमें उसकी

कहानियों में सभी तरह के लोग मिलते हैं। परोपकारी, धनी, उचक्के, ग़रीब, भिखारी, चोर, बदमाश, कारखानों में काम करने वाले घिसे पिटे बच्चे, सनकी, वहमी, सिर फिरे . . . सभी ग्रच्छे बुरे लोगों को हम देखते हैं। कभी हम उनकी ग्रोर खिंच जाते हैं, तो कभी उन्हें देखकर हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

डिकेंस जीवन को जैसा देखता था, वैसा ही आंक देता था। इसमें उसे कमाल हासिल था। कल्पना के बल पर वह शब्दों में जान डाल देता था। साथ ही उसका यह पक्का भरोसा था कि आदमी स्वभाव से अच्छा होता है, इसलिए वह आदमी के नेकी के गुण को सदा उभारता था। उसके इन उपन्यासों को लोगों ने बहुत पसन्द किया—डेविड कापरफ़ील्ड, ओलिवर ट्विस्ट, दि ओल्ड क्यूरिआसिटी शाप, ए टेल आव टू सिटीज़ और पिकविक पेपर्स। डिकेंस का जन्म १८१२ में हुआ और मृत्यु १८७० में।

जार्ज बर्नर्ड शा के साथ हम अपनी बीसवीं सदी में पैर रखते हैं। बर्नर्ड शा आयरलैंड के मामूली हैसियत के परिवार में १८५६ में पैदा हुआ था। वह पहले विद्रोही और नास्तिक था और बाद में समाजवादी हो गया। उसने पहले पैम्फलेट यानी छोटी छोटी किताबें लिखीं। सभाओं में भाषण भी दिया करता था। बाद में नाटक लिखने लगा।

शा ने अपनी रचनाओं में रूढ़ियों पर करारी चोट की। उसकी कलम में कुछ ऐसा ज़ोर और बांकपन था कि वह अपने समय का सबसे बड़ा व्यंग्य लेखक मान लिया गया। वह स्त्री-पुरुषों को बराबर मानता था। प्रजातंत्र पर उसका अटूट विश्वास था। बच्चों पर माता-पिता का कड़ा शासन वह पसन्द न करता था। अन्ध विश्वासों का तो वह कट्टर

दुश्मन था। समझ से काम लेने और विज्ञान के नियमों को मानने की वकालत करता था। सबसे बड़ी बात यह थी कि बर्नर्ड शा कभी नाराज़ न होता था। हंसी मज़ाक और भलमनसाहत उसके बराबर साथी रहे।

वह पुराने को तोड़ता था। लेकिन यह तोड़ फोड़ नए को बनाने के लिए होती थी। नया समाजवादी समाज बनाने का स्वप्न उसकी आंखों में था। वह पुराने पर मज़ाक उड़ाता था--हमें हंसाने के लिए और हंसी हंसी में हमारी आंखें खोलने के लिए। वह पुराने माने हुए नियमों को ललकारता था, जिससे हम साफ़ साफ़ सोच सकें। एंड्रोक्लीज़ एंड दि लायन, सेंट जोन, मिसेज़ वारेंस प्रोफेशन, मैन एंड सुपर मैन, पिगमैलियन और सीज़र एंड क्लियोपात्रा उसके बहुत ही अच्छे नाटक हैं। शा अभी कुछ दिन पहले १९५० में हमारे बीच से उठ गया।

१५

भारत के लोक गीत

लोक गीत उन गीतों को कहते हैं जो किसी देश की जनता में आम तौर से गाए जाते हैं। वे देश के जीवन का सच्चा दर्पण होते हैं।

लोक गीतों का दायरा बहुत बड़ा होता है। घर और खेत, मौसम की सरदी गरमी, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, मेले और उत्सव, जन्म से लेकर मरने तक की सब घटनाएं लोक गीतों में मौजूद रहती हैं। लोकगीत कहीं सारंगी पर गाया जाता है, तो कहीं इकतारे पर; कहीं ढोलक पर, तो कहीं घड़े पर। कहीं चर्खे की घूं घूं उसमें स्वर भरती है, तो कहीं पायलों की झंकार उसे उभारती है।

लोक गीतों में आमतौर पर किसी एक इन्सान की कहानी नहीं

होती। उनका असली रूप वहीं उभरता है जहाँ वह किसी पूरे गिरोह या क़ौम की आवाज़ होते हैं। कभी कभी गांव के गांव और शहर के शहर किसी लोक गीत की एक कड़ी में हमारे सामने तस्वीर की तरह आकर खिंच जाते हैं।

इन्सान जिस मिट्टी में खेला कूदा और पला होता है, उसके साथ उसकी एक ख़ास ममता होती है। इसीलिए लोक गीतों में अक्सर धरती माता का प्यार ठाठें मारा करता है। यदि देश देश के धरती से सम्बन्ध रखने वाले लोक गीत जमा किये जाएं, तो मालूम होगा कि किस तरह देश देश में इन्सान की आवाज़ एक से दिलों से निकलती है और एक से स्वरों में सुनाई पड़ती है। धरती का प्यार लोगों की रगों में बहने वाले लोहू की तरह अनगिनत पीढ़ियों से हिलोरें मारता आया है। नीचे बुन्देलखंड का एक लोक गीत है जिसमें धरती का बहुत ही सुन्दर चित्र मिलता है। यह गीत संसार के चुने हुए गीतों में जगह पा सकता है।

धरती माता तैंने काजर दये
सेंदरन भर लई मांग
पहर हरियला ठाढ़ी भई
तैंने मोह लयो जगत संसार ।

(हे धरती माता ! तुमने आंखों में काजल डाल लिया और सिंदूर से अपनी मांग भर ली । हरियाले वस्त्र पहिन कर तुम खड़ी हो गई हो । तुमने सारे संसार को मोह लिया है ।)

बुन्देलखंडी लोक गीतों में धरती माता को बार बार बुलाया गया है ।

धरती माता तो में दो भये
एक आंधी एक मेय
मेय के बरसे साखा भई
जा में लिपट लगे संसार

(हे धरती माता ! तुम से दो चीजें पैदा हुईं, एक आंधी, एक मेंह । मेंह बरसने से खेती उगती है जिसमें संसार लिपट जाता है ।)

एक गुजराती गीत में भी इससे मिलता जुलता चित्र खींचा गया है । यह विवाह का गीत है और यों शुरू होता है :

संसार मां बल सरज्यां, इक धरती बीजे आप,
बधावो रे आवियो ।

(संसार में दो बलवान चीजों की सृष्टि हुई, एक धरती दूसरा, आकाश, बधाई का दिन आ गया ।)

इसी गीत में आगे बताया गया है कि आकाश से जल बरसा और धरती ने उसका भार सहन किया, फ़सलें लहलहाने लगीं ।

पंजाबी गीतों में भी यही आवाज़ सुनने को मिलती है।

धरती जेडा गरीब न कोई,
इन्दर जेडा न दाता,
लछमन जेडा जती न कोई,
सीता जेडी न माता,
दुनिया मींह मंगदी
रब्ब सबनां दा दाता।

(धरती के समान कोई ग़रीब नहीं, इन्द्र के समान कोई दाता नहीं, लछमन के समान कोई जती नहीं, सीता के समान कोई माता नहीं। दुनिया मेंह मांगती है, भगवान सब के दाता हैं।)

ब्रज के एक गीत में इन्द्र का बखान इस तरह किया गया है :

चौकी तो चन्दन इन्दर राजा बैठनो जी,
एजी कोई दूध पखारूंगी पाय,
आज मेहर कर इन्दर राजा देश में जी।

(हे इन्द्र राजा ! मैं तुम्हें चन्दन की चौकी पर बिठाऊँगी, दूध से तुम्हारे पैर धोऊँगी। हे इन्द्र राजा ! आप हमारे देश पर दया करो यानी मेंह बरसाओ।)

ब्रज के एक दूसरे गीत में बादलों की घटा को मेघों की रानी कहा गया है। उस रानी से प्रार्थना की गई है—हे मेघरानी ! भाइयों ने बहिनें छोड़ दीं, बैलों ने जुआ छोड़ दिया, स्त्रियों ने पति छोड़ दिए, गौओं ने बछड़े छोड़ दिए, भैंसों का दूध सूख गया। अब तुम जल्दी आओ, हमें धीरज बँधाओ और मूसलाधार बारिश ले आओ।

जब पानी नहीं बरसता तो लोक गीतों में अकाल का चित्र सामने आता है। बार बार इन्द्र देवता से प्रार्थना की जाती है। एक मैथिली लोक गीत यों शुरू होता है :

हाली हुलु बरसू इनर देवता,
पानी बिनु पडछइ अकाले हो राम।

(रिमझिम बरसो, इन्द्र देवता ! पानी के बिना अकाल पड़ रहा है, हे राम !)

डलहौज़ी से ऊपर चम्बा पहाड़ी का एक गीत इसी चित्र को और उभारता है :

गड़क चमक भाइया मेघा हो,
बरह चमियालों दे देसां हो,
कीहाँ गड़काँ कीहां चमकां हो,
सुरग मरोरा तारे हो !

("गरजो और चमको, हे मेघ भैया, चम्बा के देस पर खूब बरसो।"
"कैसे गरजूं, कैसे चमकूं ? आकाश तो तारों से भरा हुआ है।")

सिंधी लोक गीतों में भी बार बार बादल से प्रार्थना की गई है :

सारंग सार लहज अलहा लग उजन जी,
पाणी पवज पटन में अरज़ान अन्न करेज,
वतन बसाएज तए संधारण सुख थिए।

(हे मेघ, अल्लाह के लिये प्यासों की ख़बर लो, खेतों में पानी बरसाओ, अन्न को सस्ता करो, वतन को बसाओ जिससे सुख ही सुख हो जाए।)

स्वाधीनता-दिवस पर सौराष्ट्र का लोक नाच

लोक गीतों में बादल को एक मित्र की तरह बुलाया गया है। इसीलिए उसमें अपनापन छलकता है। हमारे देश में जनता का जीवन खेती पर निर्भर है, इसीलिए वर्षा सम्बन्धी गीतों में जनता के दिलों की धड़कन सुनाई देती है।

लोक गीतों में जीवन की खुशियां और उमंगें उछलती हैं, आशाएं खिलती हैं और इन्सान की कल्पनाएं नए रूप ढालती हैं। तिरहुत का यह चित्र इन्हीं खुशियों की ओर इशारा करता है :

> कोकटी धोती पटुआ साग,
> तिरहुत गीत बड़े अनुराग,
> भाव सरल तन तरुणी रूप,
> एतवे तिरहुत होइछ अनूप।

(कोकट की धोती, पटुआ का साग, अनुराग के गीत, रूपवती युवती की भाव भरी सुन्दरता, इन्हीं के कारण तिरहुत अनुपम है।)

राजस्थानी लोक गीतों में भी, जहां एक तरफ़ उदयपुर की बरसात की तारीफ़ की गई है, वहां दूसरी तरफ़ उदयपुर के प्रसिद्ध पिछोला सरोवर पर पानी भरती पनिहारिन की रूप छटा को भी नहीं भुलाया गया। यह गीत एक

ही नगर से सम्बन्ध रखते हुए भी समूचे राष्ट्र का प्रतिनिधि है :

बालो लागे छे म्हारो देसड़ो ए लो,
केमकर जावूं परदेस बाला जी !
ऊँचा ऊँचा राणे जी रा गोखड़ा ए लो,
नीचे म्हारे पीछोले री पाल, बाला जी !
बादल छाया देश में, हे लोय,
नदियां नीर हिलो हिल रे,
बादल चमके बिजली,
चमक चमक झड़ लाय,
सरवर पानी ड़े में गई ए लो,
भीजे म्हारी सालूड़े री कोर बाला जी,
बालो लागे छे म्हारो देसड़ो ए लो,
केमकर जावूँ परदेस बाला जी !

(मुझे मेरा देश प्यारा लगता है। हे प्रीतम, मैं परदेश कैसे जाऊँ ? ऊँचे ऊँचे राणा जी के झरोखे हैं। हे प्रीतम ! नीचे है मेरे पिछोला का किनारा। देश में बादल छा गए, नदियों में जल हिलोरें ले रहा है, बादल में बिजली चमकती है, चमक चमक कर झड़ी लगा देती है। मैं सरोवर पर पानी लेने गई। हे प्रीतम ! मेरे सालू की कोर भीग रही है। मुझे मेरा देश प्यारा लगता है। हे प्रीतम, मैं परदेश कैसे जाऊँ ?)

लोक गीत की शक्ति उसकी सादगी में है। इसी सादगी के कारण लोक गीत कभी पुराना नहीं पड़ता। इसी के कारण जहां इसमें पिछली पीढ़ियों की आवाज हम तक पहुँचती है, वहां उसमें इतनी लोच रहती है

कि उसे आने वाली पीढ़ियां भी झट से अपना लेती हैं।

गढ़वाली लोक गीत में मलेथ गांव का चित्र कितना भी सीमित क्यों न हो, इसमें पूरे गढ़वाल का चित्र देखा जा सकता है :

कैसो न भंडारी तेरा मलेथ ?
देखो मालो ऐन सैबो मेरा मलेथ
ढलकदी गूल मेरा मलेथ
गाऊं मूड़को घर मेरा मलेथ
पालंगा की बाड़ी मेरा मलेथ
लासण को क्यारी मेरा मलेथ
गाइयों को गोठ्यार मेरा मलेथ
भैंसों की खुरीक मेरा मलेथ
बांठू का लड़ाका मेरा मलेथ
बैखू का ढसाका मेरा मलेथ

(कैसा है ओ भंडारी, तेरा मलेथ ? देखने में भला लगता है, साहबो मेरा मलेथ। ढलकती जलधारा मेरा मलेथ। गांव की निचान में है मेरा घर···मेरा मलेथ। पालक की बाड़ी···मेरा मलेथ। लहसन की क्यारी··· मेरा मलेथ। गउओं की गोठ···मेरा मलेथ। भैंसों की भीड़···मेरा मलेथ। युवतियों का झुंड···मेरा मलेथ। जवानों का धक्कम धक्का···मेरा मलेथ।)

लोक गीतों में जहां प्रकृति से सौ सौ प्रार्थनाएं की गई हैं, वहां मनुष्य का यह विश्वास भी उभरता है कि वह कठिनाइयों से घबरा कर हार नहीं मानता।

लोक गीतों में पशु पक्षियों के साथ भी गहरी सहानुभूति रहती है। बंगाल के एक लोक गीत में घायल हिरनी शिकारी को भाई कह कर पुकारती है।

हरिणी घास खाय, शिकारी तामशा चाय,
आचम्बिले मारिलो शेलेर घा, तखन हरिणी बले रे,
की शेल मारिली भाई तीरन्दाज रे।

(हिरनी घास चर रही है, शिकारी निशाना बांध रहा है। अचानक उसने उसे तीर से घायल कर दिया। हिरनी कहती है, 'कैसे तीर से घायल कर दिया है तुमने, ओ भाई तीरन्दाज !')

यह गीत बहुत लम्बा है। कभी हिरनी सोचती है कि मेरा मांस इतना मजेदार है कि मनुष्य मेरा बैरी हो गया। कभी वह कहती है कि मुझे अपने मरने का तो शोक नहीं, लेकिन मुझे यह चिन्ता सता रही है कि मेरे दूध पीते बच्चे की किसी को परवाह न होगी। अन्त में वह शिकारी की बजाय उस लुहार को श्राप देती है जिसने उसे घायल करने के लिए यह तीखा तीर बनाया।

हिरनी के दुःख में भी आदमी ने एक तरह से अपना ही दुःख गा सुनाया है।

लोक गीतों में तीखे ताने भी मिलेंगे और खुलकर मज़ाक़ भी। नीचे का उड़िया लोक गीत विवाह के अवसर पर जब गाया जाता है, तब ख़ासा रंग जमता है।

पिपड़ी बापुड़ा, बिभा छोई गला,
गगने उड़ुछि धूलि,
बिलर कंकड़ा मर्दल बाजाये,
बेंगो देले हुलुहुलि।

(बेचारी चींटी का विवाह हो गया। आकाश में धूल उड़ रही है। खेत के केकड़े ने ढोल बजाया और मेंढक ने हुलुहुलि की आवाज़ निकाली।)

शुभ अवसरों पर स्त्रियों के मुंह से निकलने वाली जय ध्वनि को उड़ीसा में 'हुलुहुलि' कहते हैं। उड़िया लोक गीत में स्त्रियों की 'हुलुहुलि' से मेंढक की आवाज़ की तुलना करते हुए अच्छा व्यंग कसा गया है।

जहाँ लोक गीत है, समझो वहां जीवन से प्यार है। जाड़ों की रात में अलाव के गिर्द बैठे हुए बचपन के साथी किसी जाने पहचाने गीत में सोए हुए सपने जगाते हैं। चाँदनी रातों में बचपन की सखियां चूड़ियों की छनक और पायलों की झंकार से लोक गीत को चार चाँद लगा देती हैं। जब फसलें पकती हैं और नए अनाज की सुनहरी बालियां लोगों को गुदगुदाती हैं, तब गांव की सोई हुई आत्मा एकाएक जाग उठती है। इस खुशी में तरह तरह के नाच होते हैं। हर नाच में नए पुराने गीतों की परख भी होती है। बहुत से नए गीत जिनमें इतना दम नहीं होता कि समय के प्रवाह में टिक सकें, पीछे रह जाते हैं, लेकिन कुछ नए गीत इतने ज़ोरदार होते हैं कि उन्हें कोई शक्ति नहीं दबा सकती।

इस विशेषता के कारण लोक गीतों में कभी परम्परा की झांकी मिलती है और वह धरती से लगाव बतलाते हैं और कभी जीवन के उतार चढ़ाव का चित्र सामने आता है।

लोक गीतों की भाषा में तंगदिली की बू तक नहीं होती। उनमें अलग अलग भाषाओं से आए हुए शब्द एक जगह आकर गले मिलते हैं। यह हमारे राष्ट्र के लिए गर्व की बात है। नए साहित्य की रचना के लिए यही आदर्श है।

समझा जाता है कि सुनने वालों में से एक हुंकारा देता जाए। इसमें ज़रा सुस्ती हुई नहीं कि कहानी सुनाने वाला कहानी को बीच में रोक कर कह उठता है, 'क्यों, सो रहे हो ?' इससे हुंकारा देने वाला फिर से सावधान हो कर अपना काम करने लगता है।

लोक कथाओं में लोगों के आचार विचार की झलक दिखाई दे जाती है। समाज का चित्र नज़र आ जाता है। रीति रिवाज और धार्मिक विश्वासों पर प्रकाश पड़ता है। किसी युग की सभ्यता और संस्कृति की पहचान के लिए उस युग की लोक कथाओं से बड़ी सहायता मिलती है।

लोक कथाओं में तर्क या बहस का कुछ काम नहीं, और न किसी बात को असम्भव या अनहोनी कहा जा सकता है। उसमें किसी के नाम नहीं रहते, रहते भी हैं तो काम चलाऊ। जगहों के नाम तो और भी
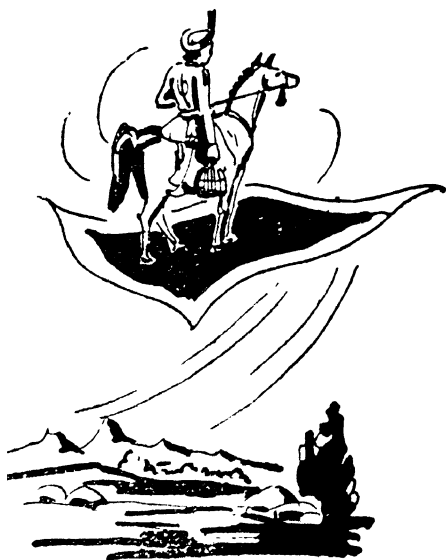
बेपता होते हैं। पशु पक्षी ही नहीं, पहाड़ और ईंट पत्थर भी बातें करते हैं। लोक कथाओं की इन बातों पर कभी संदेह नहीं किया जाता। लकड़ी का घोड़ा आकाश में दौड़ लगाता है। जादू के ज़ोर से रात की रात में महल तैयार हो जाता है। साधु की झोली या किसी अंगूठी की शक्ति से किसी को मनचाही चीज़ मिल जाती है। दीवार पर बने हुए चित्र भी हिलते डुलते हैं।

सीधे कहो तो बात का कुछ भी असर न हो। मगर लोक कथाओं के

सहारे उसमें चमत्कार नज़र आने लगता है। बीच बीच में दोहों या गीत के बोलों से भी सहायता ली जाती है।

नागाओं की एक लोक कथा है। एक सांभर हिरन और एक मछली में दोस्ती हो गई। सांभर ने मछली से कहा, 'जब शिकारी कुत्ते मेरा पीछा करेंगे, मैं नदी के किनारे किनारे भागूंगा। उस समय तुम पानी उछाल उछाल कर मेरे पैरों के निशान मिटाती रहना।' मछली ने भी अपने बचाव के लिए सांभर से प्रार्थना की, 'तुम मनुष्य को जंगल से वह ज़हरीली वेल तोड़ कर लाने से रोकना जिससे वह मुझे पकड़ता है।' उसी समय से सांभर जब देखो, अपने सींगों से उस ज़हरीली बेल को खोदता दिखाई देता है।

इस तरह की बहुत सी कहानियां आदिवासी जातियों में मिलती हैं। इनमें किसी न किसी पशु पक्षी के स्वभाव का कोई न कोई कारण खोज निकालने का यत्न किया गया है।

लोक कथाओं का जन्म मनोरंजन की इच्छा से हुआ होगा। समय बिताने के लिए कहानी की मांग स्वाभाविक है। पर गहरी समझ की बातें भी इन कहानियों में काफ़ी होती हैं। व्रतों और पूजा पाठ के साथ अनेक कहानियां जुड़ी हैं। बंगाल की लोक कथाओं का बहुत बड़ा भाग व्रत कथाओं के रूप में ही फूला फला है। हमारे देश के दूसरे भागों में भी व्रत कथाएं किसी न किसी रूप में अवश्य मिलती हैं। इनमें से बहुत सी कहानियां ऐसी है जो न पौराणिक हैं और न धार्मिक, बस घरेलू

कहानियां हैं।

लोक कथाओं का नायक कभी कभी कोई ऐतिहासिक पुरुष भी हो सकता है। पंजाब में राजा रसालू की कहानियां मशहूर हैं। इन कहानियों की सब घटनाएं कल्पना की उड़ान मालूम होती हैं। इसी तरह की कहानियां देश देश में वीर पुरुषों के साथ जुड़ कर वीर गाथाओं के रूप में मिलती हैं। चरित्र का बखान ही इन कहानियों की विशेषता है।

शब्दों के नए नए प्रयोग भी लोक कथाओं में कम नहीं मिलते। बुन्देलखंडी लोक कथाओं में वीर रस की गाथा के लिए 'कड़खा' शब्द बहुत चालू है। 'कड़खा' गाने वाले को 'कड़खेत' कहते हैं। सूरज की धूप से बचने के लिए जो छत्र लगाया जाता है उसे 'सूरजमुखी' कहा गया है। एक साथ जलने वाली दो बत्तियों की मशाल के लिए बुन्देलखंडी लोक कथा में 'दुशाखा' शब्द मिलता है। 'परिधान' का बदला हुआ रूप है 'परदनी' जो धोती के लिए बरता जाता है। रुपए रखने की थैली 'बसनी' है।

इस तरह लोक कथाएं भाषा के विकास में भी सहायक होती हैं। नित नए शब्द हमारे परिचित मित्रों की तरह सामने आते हैं और उनके साथ हम घुल मिल जाते हैं।

भारत कहानियों का देश है। 'वृहत कथा', 'कथा सरित्सागर', 'पंचतंत्र', और 'जातक' जैसे कथा संग्रह हमारे यहां बहुत हैं। हमारे इन पुराने संग्रहों की बहुत सी कहानियां थोड़े बहुत हेर फेर के साथ बाहर भी चली गई हैं। घूमते फिरते खानाबदोश लोगों ने एक देश की कहानियां दूसरे देश में पहुंचाईं। समुद्र के रास्ते व्यापार करने वाले व्यापारी भी कहानियों को फैलाते थे। उसी तरह जब एक देश की सेना दूसरे देश पर धावा करती

थी, तो लड़ने वाले सिपाही कहानियों के लेन देन में बिचवानी का काम करते थे।

इसीलिए दुनिया की लोक कथाओं की एकता के सूत्र मिलते हैं एक ही कहानी थोड़े बहुत हेर फेर के साथ बहुत से देशों में सुनने में आती है। कभी कभी तो अन्तर इतना कम नजर आता है कि सुनने वाला चकित रह जाता है कि एक ही कहानी किस तरह जगह जगह घूमती रही।

यह बात कहानी के हर रसिया को अचरज में डाल देती है। लेकिन उसका अनुभव बहुत कम लोगों को हो पाता है। बहुत से लोग तो यही समझते हैं कि जो कहानी उनके सामने सुनाई जा रही है, वह उन्हीं के गांव की चीज है और दूसरे किसी गांव या देश तक इस कहानी की पहुंच नहीं।

भारत की लोक कथाओं के अधिकतर संग्रह पहले अंग्रेजी में छपे। इस बारे में अनेक यूरोपीय विद्वानों के काम को भुलाया नहीं जा सकता। अभी अभी डाक्टर वैरियर एलविन ने महाकोशल की लोक कथाओं का एक संग्रह बड़ी मेहनत से तैयार किया है। डाक्टर एलविन ने अपनी पुस्तक की भूमिका में बताया है कि अब तक भारत और उसके पड़ोसी देशों, लंका, तिब्बत, बर्मा और मलाया में मिला कर कोई तीन हजार घरेलू कहानियां छप चुकी हैं।

लोक कथाओं के जमा करने का काम सन् १८६६ ई० में आरम्भ हुआ और उस साल मध्य भारत की आदिम जातियों में प्रचलित लोक कथाओं को उनके अंग्रेजी अनुवाद के साथ छपवाया गया। इसके बाद

दक्खिन भारत, बंगाल और पंजाब की लोक कथाऐं प्रकाशित हुईं। कुछ साल बाद संथाली कथाएँ और काश्मीरी कहानियां निकलीं। बीसवीं सदी के आरम्भ में शिमला की ग्रामीण कहानियां और पंजाब की प्रेम कहानियां छपीं। पहले महायुद्ध के पहले जो लोक कथाएँ प्रकाशित हुईं उनमें 'बंगाल की घरेलू कहानियाँ' और शोभना देवी का 'पूरब के मोती' खास हैं। इसके बाद शरत्चन्द्र राय ने छोटा नागपुर की मुंडा, उरांव, खेड़िया आदि आदिम जातियों की कहानियाँ निकालीं।

हिन्दी में लोक कथाओं का सबसे पहला संग्रह है 'बुन्देलखंड की ग्राम कहानियां' जिसके लेखक हैं शिव सहाय चतुर्वेदी। इसमें सत्ताइस कहानियां हैं। यह संग्रह सन् १९४७ में प्रकाशित हुआ था। उसी साल सत्येन्द्र का संग्रह 'ब्रज की लोक कहानियां' प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में इकतालीस कहानियां ब्रज भाषा ही में दी गई हैं। शिव सहाय चतुर्वेदी का बुन्देलखंडी लोक कहानियों का दूसरा संग्रह 'पाषाण नगरी' सन् १९५० में प्रकाशित हुआ। इधर हिन्दी में अलग अलग प्रान्तों की लोक कथाओं के कई संग्रह निकले हैं।

रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने 'एक था राजा' नाम देकर कहानियाँ लिखीं और इस तरह लोक कथाओं की परम्परा को आगे बढ़ाया। बहुत सी कहानियाँ 'एक था राजा' से शुरू होती हैं। कहानी सुनने वाले यह नहीं पूछते कि राजा का क्या नाम था, उसका राज कहां था, और वह कब राज करता था? बच्चा भी दादी से कहानी सुनते समय राजा के नाम, धाम और समय के वारे में कभी कुछ नहीं पूछता? उसे तो कहानी ही से मतलब रहता है।

जिस तरह हमारे नए कवि लोक गीतों से प्रेरणा ले सकते हैं, उसी तरह हमारे नए लेखक लोक कथाओं से अपने देश को समझने में समर्थ हो सकते हैं। जनता की कला और कारीगरी की तरह जनता के गीतों और जनता की कहानियों का मोल हर देश में आज बहुत ऊंचा आंका जा रहा है और इन चीज़ों का आदर बढ़ता जाता है। इसी से जनता के असली जीवन, उसके विचारों और उसके आदर्शों का ठीक ठीक पता चलता है।

एक लोक कथा

चम्पा का फूल

कहानी सी झूठी नहीं। बात सी मीठी नहीं। न कहने वाले का दोष, न सुनने वाले का दोष। दोष जोड़ने वाले का।

एक था राजा। उसके थीं सात रानियां, पर आल औलाद किसी से न थी। रानियों में छोटी रानी सब से सुन्दर और गम्भीर थी। राजा उसी को सब से अधिक चाहता था। दूसरी रानियां छोटी रानी को देख देख कर जलती थीं। राजा को हर समय चिन्ता रहती कि इतना बड़ा राज मेरे बाद कौन भोगेगा। इसी प्रकार बहुत दिन बीत गए।

भगवान की कृपा, छोटी रानी श्रोधान से हुई। अब राजा फूले न समाते थे। उन्होंने मंत्री को बुला कर कहा—सारे राज में डौंडी पिटवा दो कि राजा ने राज-भण्डार खोल दिया है। जिसका जी चाहे आए और रुपया-पैसा, कपड़ा-लत्ता, मेवा-मिठाई जो चाहे, झोली भर-भर ले जाए।

महल में हर तरफ खुशियां मनाई जाने लगीं। औरतें सोहर और बधावे गातीं, पुरोहित पूजा-पाठ करते। लड़कियां बालियां कोने कोने घी के दिये जलातीं। सारी राजधानी हँसी-खुशी और धूमधाम में इन्द्रपुरी बनी

हुई थी। बड़ी रानियों ने जब यह देखा, तो जलभुन कर कोयला हो गईं। मन ही मन सोचने लगीं, अब क्या किया जाय ?

राजा ने छोटी रानी के पास नगाड़ा रखवा दिया और कहा—जब लड़का हो तो इस पर एक चोब मार देना। मैं सब काम छोड़ आ जाऊँगा।

इधर राजा यह कह दरबार में गए, उधर और सब रानियां छोटी रानी के रनवास में आ पहुँचीं और अनजान बनकर उससे पूछा कि राजा ने यह नगाड़ा क्यों रखवाया है ? रानी ने अपने भोलेपन में सब बात बता दी। बड़ी रानियों ने उसे राजा के इस प्रेम पर बधाई दी और कहा–कहो तो जरा आजमा लें ?

छोटी ने कहा—हाँ, जरूर।

बड़ी रानियाँ बोलीं--पर राजा से न कहना कि नगाड़ा हमने बजाया था और नगाड़े को ज़ोर जोर से पीटना शुरू किया।

राजा दौड़े दौड़े महल में आए, तो छोटी रानी ने हँस के कहा--यों ही देख रहे थे, कैसा बजता है।

राजा बोले--ख़ैर, कोई बात नहीं। पर अब यों ही न बजाना।

राजा रनवास से बाहर गए, तो रानियों ने छोटी रानी को तानों से छेद कर रख दिया। "बस मालूम हो गया राजा के प्रेम का हाल। ऐसे समय भी तिनक गए।'

छोटी ने झेंप कर कहा-- नहीं, वह मुझ से नाराज कभी नहीं हो सकते।

बड़ी बोलीं--अच्छा देखते हैं। यह कह फिर नगाड़ा बजाना शुरू किया।

अब तो राजा ने समझा कि सचमुच कुछ हुआ है। पर इस बार

फिर वह लज्जित और खिसियाए दरबार वापस आए। लौटते समय वह रानी से कह आए थे, अब तुम नगाड़ा पीट पीट के फाड़ भी दोगी, तो मैं न आऊँगा।

दरबार में बड़ी रानियों के कुछ पक्षपाती भी थे। उन्होंने राजा का क्रोध और बढ़ा दिया और जब तीसरी बार नगाड़ा बजा, तो राजा ने रनवास की ओर मुँह फेर कर भी न देखा।

छोटी रानी के एक कुमार और एक राजकुमारी हुई। दोनों बच्चे ऐसे सुन्दर जैसे चाँद के टुकड़े।

छोटी रानी ने कहा—तनिक बच्चे मुझे भी दिखाओ।

बड़ी रानियाँ मटक कर बोलीं—ले, देख ले, तेरे यह मरे हुए चूहे हुए हैं। इन्हें अपनी छाती से लगा ले।

छोटी रानी यह सुनते ही बेहोश हो गई।

अब बड़ी रानियों ने बच्चों को दो हांडियों में बन्द कर दूर कहीं घूरे पर फेंकवा दिया और राजा को सँदेशा भेजा—छोटी रानी की भूल को क्षमा कर दीजिए और अपने बच्चों को आकर देख जाइए।

जब राजा रनवास में आए तो मक्कार रानियों ने राजा के सामने मरे हुए चूहे लाकर रख दिए और कहा—महाराज, यह बात महल के बाहर जाने की नहीं है। छोटी रानी के पेट से ये दो चूहे पैदा हुए हैं।

यह सुनना था कि राजा आग बबूला हो गया। कड़क के कहा—छोटी रानी को अभी महल से निकलवा दिया जाय।

बड़ी रानियों ने हाथ जोड़ के प्रार्थना की—ऐसा न कीजिए, बात फैल जायगी। और फिर इस बेचारी का दोष भी क्या है? इसे महल में

ही रहने दीजिए । हम इसे कौवा हँकनी बनाएगो ।

राजा ने आज्ञा दी और छोटी रानी को टाट के कपड़े पहना कर

एक फटा बांस हाथ में दे दिया गया । अब वह महल के कौवे हांकती, जौ की एक रोटी खाने को और कुज्जा भर पानी पीने को मिलता ।

होनी बलवान । इधर बड़ी रानियों ने हाँडियाँ घूरे पर फेंकवाईं, उधर एक साधू अलख जगाता घूरे केपास से निकला है साधू को नजर हाँडियों पर पड़ी । उसने देखा, फूल जैसे दो बच्चे हाँडियों में लेटे पांव के अँगूठे चूस रहे हैं । साधू ने बच्चों को उठा लिया और उन्हें अपनी कुटिया में ले गया । वहां उनकी खूब देख रेख की । बच्चे बड़े हुए और उनकी सुन्दरता और चतुराई की बात रानियों के कान तक पहुँची । वे सोचने लगीं, ऐसा न हो कि भेद खुल जाय । इनको मरवा देना अच्छा है ।

सब रानियों ने सलाह करके खोये के पेड़े बनवाए और दो पेड़ों में जहर मिला दिया । चौमक जला कर थाल में रखी और अपनी एक

बूढ़ी कहारिन को देकर कहा—जाओ, ये दो पेड़े साधू के लड़की-लड़के को खिला देना और बाकी का प्रसाद बाँट देना।

साधू ने बच्चों से कह रखा था, कभी किसी की दी हुई चीज़ बिना मुझे बताए न खाना। पर नादान बच्चे साधू की सीख भूल गए।

बाबा रोज़ की तरह अलख जगाने निकले, और बच्चे कुटी के सामने आकर खेलने लगे। बूढ़ी कहारिन ने मौक़ा पाकर ज़हर मिले पेड़े दोनों को खिला दिए और बच्चे तड़प तड़प कर मर गए।

बाबा शाम को लौटे, तो देखा कि कोई बैरी चाल चल गया है और फूल से मुखड़े धूल मिट्टी से अटे पड़े हैं। साधू ने यह देख कर सिर पीट लिया। पर अब करता भी क्या? लाचार रो धो कर जब शान्त हुआ, तो कुटी के सामने एक गढ़ा खोदा और दोनों को दबा दिया।

जिस जगह कुमार और राजकुमारी दबाए गए थे, वहाँ वर्षा ऋतु में एक आम का पौधा निकला और एक चम्पा का। पल-पल दोनों पौधे बढ़ने लगे। आम के पौधे में ऐसे आम आए कि कभी किसी ने न देखे थे, न सुने थे, और चम्पा के फूलों की सुगन्ध से दूर दूर तक जहान महक उठा।

एक दिन की बात। राजा अपनी रानियों को लिए बाग़ में टहल रहा था। छोटी रानी टाट के कपड़े पहने, फटा बांस हाथ में लिए दूर खड़ी राजा और रानियों को देख रही थीं। इतने में एक कौवा चम्पा का फूल चोंच में दबाए आया और फूल राजा के ऊपर फेंक दिया। रानियों ने फूल ज़मीन से उठाया और कहा, इतना सुन्दर और इतना बड़ा फूल तो आज तक देखने में नहीं आया। इसकी सुगन्ध भी कैसी अच्छी है!

राजा बोला—हाँ, कैसा मन मोहक फूल है। मैं अभी और मँगवाने

का प्रबन्ध करता हूँ।

राजा ने मन्त्री को बुलाकर फूल दिया और कहा--ऐसे और फूल तुरन्त लाए जायं।

मंत्री ने सिपाही बुलवाए और कहा--जाओ, जहाँ कहीं ऐसे फूल मिलें तुरन्त लेकर आओ।

सिपाही ढूंढ़ते ढूँढ़ते साधू की कुटिया के पास पहुँचे, तो क्या देखते हैं कि उसी रंग रूप और उसी सुगन्ध के फूलों से चम्पा का एक पेड़ लदा खड़ा है और पास ही एक आम का पेड़ भी है। सिपाही जब पेड़ों के पास पहुँचे, तो चम्पा की जड़ से आवाज़ आई--बीरन भैया, बीरन भैया, पिता के महल से सिपाही फूल लेने आए हैं। दो हाथ नीचे आजाऊँ, कि दो हाथ ऊपर उठ जाऊँ?

अम्बा की जड़ से आवाज आई--ना बहन चम्पा, ना बहन चम्पा, दस हाथ ऊपर उठ जाओ।

सिपाही यह माजरा देखकर दंग रह गए और मन्त्री को जाकर सब हाल बताया।

मन्त्री ने कहा--जाओ, जाकर एक बड़ी सी सीढ़ी लाओ और मेरा घोड़ा तैयार कर दो। मैं अभी जाकर फूल लाता हूँ। तुम सब बड़े निकम्मे हो।

मंत्री सीढ़ी लिए घोड़ा सरपट दौड़ाता पल भर में कुटिया जा पहुँचा।

चम्पा की जड़ से फिर आवाज़ आई--बीरन भैया, बीरन भैया, देखो बूढ़े मंत्री आप फूल लेने आए हैं। दो हाथ नीचे आजाऊँ, कि दो हाथ ऊपर उठ जाऊँ?

अम्बा की जड़ से आवाज़ आई—ना बहन चम्पा, ना बहन चम्पा, दस हाथ ऊपर उठ जाओ।

देखते देखते चम्पा का पेड़ इतना ऊँचा हो गया कि सीढ़ी लगाने पर भी मंत्री की पहुँच से दस हाथ ऊपर रहा। मंत्री ने लाख जतन किए, पर एक फूल हाथ न आया। बेचारा थका हारा, अपना सा मुंह लेकर राजा के पास पहुँचा और सब हाल कह सुनाया।

राजा ने कहा—जाओ, जाकर मेरा हाथी लाओ। मैं अभी जाकर फूल लाता हूँ। तुम सब बड़े निकम्मे हो।

राजा हाथी पर बैठ रानियों, सिपाहियों और मंत्री समेत साधू की कुटिया पर पहुँचे। देखा कि चम्पा की डालें फूलों से लदी धरती छू रही हैं और आम के पेड़ पर ऐसे आम लगे हैं मानो पन्ने पुखराज जड़े हों।

इस बार फिर चम्पा की जड़ से बड़ी प्रेम भरी आवाज़ आई--बीरन भैया, बीरन भैया, जरा देखो तो। अब की पिता जी खुद फूल लेने आए हैं। दो हाथ नीचे आ जाऊँ, कि दो हाथ ऊपर उठ जाऊँ?

अम्बा की जड़ से आवाज़ आई--ना बहन चम्पा, ना बहन चम्पा, दस हाथ ऊपर उठ जाओ।

देखते देखते चम्पा का पेड़ इतना ऊँचा हो गया कि राजा ने लाख जतन किए, पर एक फूल हाथ न आया।

अब चम्पा ने कहा—अपने पिता जी को ख़ाली हाथ लौटाना ठीक नहीं।

भैया ने कहा--अच्छा, तो पिता जी से कहो, उस अभागिन को बुलाएँ जिसे कौवा हँकनी बना रखा है। फिर जितने फूल चाहें तोड़ लें।

राजा यह सब देख दंग रह गए और रानियों का माथा ठनका कि कुछ दाल में काला है।

कौवा हँकनी टाट के कपड़े पहने, हाथ में फटा बांस लिए एक टूटी सी डोली में बैठ कर आई। माता की डोली देख चम्पा बिलख बिलख कर रोने लगी--बीरन भैया, बीरन भैया, अब तो अपनी माँ का डोला आया है। तुरन्त बताओ, दो हाथ नीचे हो जाऊँ?

अम्बा की जड़ से आवाज़ आई--हाँ बहन चम्पा, हाँ बहन चम्पा, अब देर क्यों? माँ की गोद में झूल जाओ।

फिर क्या था, चम्पा की डालें छोटी रानी के डोले से लिपट गईं और उसकी गोद में झूलने लगीं। माँ की छाती से दूध की धारें बह निकलीं। अम्बा ने रो रो कर पूरी कहानी माँ को कह सुनाई और

बोला—हमें जल्दी जमीन से निकलवाइए।

राजा ने सिपाहियों से कहा—अभी जमीन खोदो और कुमार और राजकुमारी को बाहर निकालो। सिपाहियों ने ऐसा ही किया और चांद सूरज से जगमगाते कुमार और राजकुमारी दौड़ कर माता-पिता से लिपट गए।

राजा ने हुक्म दिया कि बड़ी रानियों को हाथी के पांव से बांध कर सारे नगर में घुमाया जाय और छोटी रानी रनवास में फिर उसी तरह सुख चैन से रहें जैसे पहले रहती थीं।

भगवान ने जैसे रानी के दिन फेरे, वैसे ही सब के दिन फेरें।

१७

कीड़े मकोड़े

चींटी

चींटी अपनी बस्तियाँ बना कर रहने वाला कीड़ा है। तितली या भुनगे की तरह अकेला रहना इसे नहीं भाता। चींटियाँ अपनी बस्ती के सब काम आपस में बांट लेती हैं और मिलजुल कर सब काम पूरा करती हैं।

चींटियां बहुत तरह की होती हैं। संसार में चींटी की लगभग ३,००० जातियों का पता लग चुका है। इनमें से हर जाति की चींटी का काम अलग अलग होता है।

उदाहरण के लिए एक तरह की चींटी किसान चींटी कहलाती है। वह अपनी बस्ती में खेती करके अनाज पैदा करती है और फिर यह अनाज अपनी बस्ती के रहने वालों को खिलाती है।

'दरज़ी' चींटी पेड़ के पत्ते जोड़ कर उन्हें गेंद की तरह गोल करके उनमें घर बनाती है। 'रानी चींटी' गुलाम और लौंडियाँ पालती है और उनसे तरह तरह का काम लेती है। वह पास की किसी बस्ती से चींटी के बच्चे और अंडे ले आती है। बड़े हो जाने पर इन्हें बस्ती के अलग अलग कामों में लगा दिया जाता है।
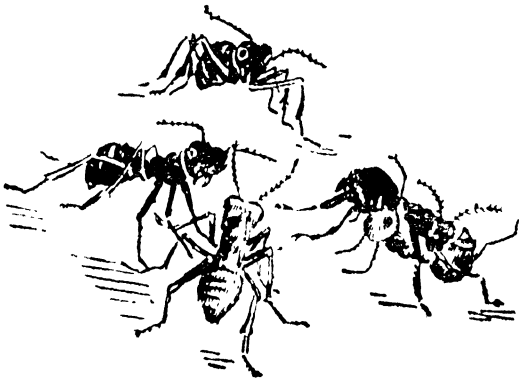
'सिपाही चींटी' को लड़ने के अलावा और कोई काम अच्छा ही नहीं लगता। वह चींटियों की दूसरी बस्तियों पर हमला करके उन्हें लूटती है और अपनी बस्ती को खाने पीने की चीजों से भर लेती है।

चींटी की एक जाति का नाम 'कुप्पा चींटी' है। यह अपने पेट में शहद इकट्ठा करती है और
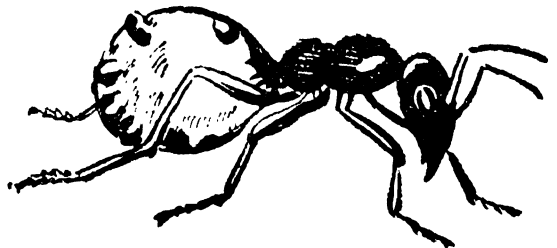
इतना शहद भर लेती है कि फूल कर कुप्पा हो जाती है।

इसी तरह चींटी की हर जाति की कोई न कोई विशेषता होती है।

चींटी की हर बस्ती में नर, मादा, और कमेरी, तीन तरह की चींटियाँ होती हैं। कमेरी नर या मादा नहीं होती। वह जन्म से मौत तक बस्ती की सेवा करती रहती है और बस्ती के लिए अपने प्राण निछावर कर देती है। कमेरी के पंख नहीं होते। नर और मादा चींटियों के पंख होते हैं जिन्हें वे अपने जीवन में केवल एक बार शादी के अवसर पर काम में लाती हैं।
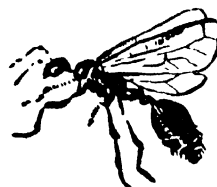
बस्ती की मादा चींटियाँ यों तो जवान होते ही बिना नर के संयोग के अंडे देने लगती हैं, पर शादी से पहले उनके अण्डों में से कमेरी या मादा चींटी पैदा नहीं होती। इन अंडों में से केवल नर चींटियाँ पैदा होती हैं। कमेरी और मादा चींटी रानी के अंडों में से ही निकलती हैं। नर चींटियां बस्ती के किसी काम को हाथ नहीं लगातीं। वे केवल विवाह के दिन के लिए पाल पोस कर बड़ी की जाती हैं।

जब बस्ती में नर और मादा चींटियों की संख्या काफ़ी हो जाती है तो सुहावने मौसम में कोई अच्छा सा दिन ठीक करके चीटियों का विवाह होता है।

विवाह के दिन ये चींटियाँ पहली और अन्तिम बार उड़ती हैं और हजारों की गिनती में आकाश में फैल जाती हैं। मादा चींटी आगे आगे

जाती है, नर उसका पीछा करते हुए दूर दूर तक निकल जाते हैं। जो नर तेज़ी से उड़ कर मादा को पकड़ लेता है, वही उसका पति बन जाता है।

आकाश में ही इनका जोड़ा मिलता है और इसके बाद तुरन्त ही दोनों नीचे उतर आते हैं। बेचारे नर तो वहीं गिर कर मर जाते हैं और मादा चींटी जो अब रानी बन जाती है, उतरते ही या तो किसी बसी बसाई बस्ती में चली जाती है या अपनी बस्ती अपने आप बसाती है।

दोनों हालतों में वह अपने पंख नोच डालती है और बस्ती के किसी कमरे में या किसी छोटे से बिल में जाकर कई सप्ताह तक चुपचाप लेटी रहती है। अंडे अन्दर ही अन्दर बढ़ने लगते हैं। इन दिनों चींटी कुछ खाती पीती नहीं। उसके शरीर की चरबी घुल घुल कर उसका भोजन बनती रहती है।

कई सप्ताह तक चुपचाप पड़ी रहने के बाद रानी अंडे देती है। अंडे देते समय यदि रानी के पास कोई कमेरी या दासी नहीं होती, तो वह सामान

उठाने वाली, खाना खिलाने वाली और अण्डे बच्चों की देख भाल करने वाली चींटी का काम भी अपने आप ही करती है।

रानी अंडा देते ही उसे चाटने लगती है। इस तरह अण्डा साफ़ भी हो जाता है और रानी के मुंह की गरमी भी उसके अन्दर पहुँच जाती है। रानी थोड़ी

थोड़ी देर बाद अंडे को उलटती पलटती रहती है, ताकि वह एक ही करवट पड़ा रहने के कारण ख़राब न हो जाए। कुछ दिन सिकाई, चटाई और लोट पोट के बाद अंडे में से एक नन्ही सी सुंडी निकलती है। रानी इसकी देखभाल करती है और अपने मुंह से उसे भोजन पहुँचाती है।

सुंडी बड़ी होकर अपने ऊपर रेशम का गिलाफ़ सा चढ़ा लेती है। गिलाफ़ चढ़ा कर वह आराम से उसके अन्दर सो जाती है और अन्दर ही अन्दर बढ़ कर चींटी का रूप धारण कर लेती है। गिलाफ़ से बाहर निकलते समय यह चींटी बिलकुल काले रंग की नहीं होती। कच्ची कच्ची सी और कुछ भूरे रंग की होती है। उस समय इसकी बनावट भी बहुत साफ़ नहीं होती।

कुछ समय के बाद चींटी के ऊपर से एक बहुत बारीक झिल्ली

उतरती है। रानी बहुत सावधानी से खींच कर यह झिल्ली उतारती है और अन्दर से साफ़ सुथरी काले रंग की चींटी निकल आती है। इस तरह बस्ती में काम करने वाली चींटियों या कमेरियों की गिनती बढ़ जाती है।

अब रानी को बस्ती का कुछ भी काम नहीं करना पड़ता। कमेरियाँ सब काम अपने कंधों पर उठा लेती हैं। वे ही रानी को खाना खिलाती हैं और अंडे बच्चों की देखभाल भी करती हैं। बस्ती को पूरी तरह बसने में कई वर्ष लग जाते हैं।
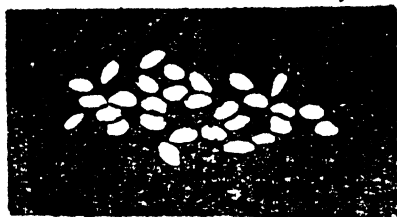
१८

कुछ पेड़

१-आम

आम भारत का मनभाता फल है । यह देश के हर भाग में मिलता है। इसे गरम जलवायु पसन्द है, इसलिए यह अधिक ऊँचे और ठंडे इलाकों में नहीं फलता । जो स्थान बारह महीने नम बने रहते हैं, वहाँ भी आम की फ़सल अच्छी नहीं होती । अच्छी फ़सल के लिए ज़रूरी है कि बौर के समय वर्षा न हो या पाला न गिरे । अधिक वर्षा से बौर में लसी लग जाती है । लसी एक लेसदार पदार्थ है जिससे बौर में कीड़े पड़ जाते हैं । ये कीड़े आम के बागों को बहुत हानि पहुँचाते

है। ऐसी दशा में डी० डी० टी० छिड़कना ठीक रहता है। आम के बाग़ लगाने के लिए दोमट मिट्टी अच्छी रहती है। ज़मीन में पानी अधिक रुकने न पाए, इसका भी प्रबन्ध होना चाहिए।

हमारे देश में कई तरह का आम पाया जाता है। इनमें बम्बई, कत्रमिट्ठा, स्टाकार्ट जातियों के आम बैसाख में आने लगते हैं। दसहरी, लँगड़ा, सफ़ेदा और गोपाल भोग जेठ के अन्त तक आने लगते हैं। फ़जरी, चौसा, लकीरवाला और हाथीभूल सावन भादों में मिलते हैं। उत्तर भारत में आम बैसाख जेठ में पकते हैं। दक्खिन भारत में अरकाट, सेलम और बम्बई के आम अच्छे होते हैं। वहाँ के प्रसिद्ध आमों के नाम हैं, दिलपसंद, तोतापरी, काला पहाड़, नवाब पसंदी, शकरपारा, पायरी, और अलफ़ेंजो जिसे हापुस भी कहते हैं। उत्तर भारत में सफेदा, दसहरी, लंगड़ा, चौसा, फ़जरी, सरौली और बम्बई अधिक प्रसिद्ध हैं।

आम के पेड़ गुठली से भी लगाए जाते हैं और क़लम से भी। गुठली से लगे पौधे तुख़्मी और क़लम से लगे पौधे क़लमी कहलाते हैं। क़लमी की पौध प्रायः बरसात में तैयार की जाती है। बरसात की क़लमें अच्छी रहती हैं। पके हुए फल की गुठली निकाल कर उसे जल्दी ही तीन इंच की गहराई पर गाड़ना चाहिए। आम तौर से तीन सप्ताह के भीतर अंखुवा फूट आता है। तुख़्मी पौधे रोपने या क़लम लगाने के लिए उन्हें क्यारियों में तैयार किया जाता है।

क़लमी पौधे ४० फुट और तुख़्मी पौधे ६० फुट की दूरी पर लगाने चाहिए। सूखी या बीमार टहनियों की काट छांट समय समय पर करते रहना चाहिए। क़लम पौधे में बांधने के बाद नीचे से टहनी फूट आए, तो

उसे तोड़ देना बहुत ज़रूरी है।

दस बारह बरस के होने पर तुख़्मी और पांच छः बरस के होने पर क़लमी पौधे फल देने लगते हैं। क़लमी आम पचास साठ साल तक और तुख़्मी आम सौ बरस तक फल देता रहता है। कुछ पेड़ हर साल फल देते हैं। अधिकतर पेड़ों से हर तीसरे साल फल मिलते हैं। हर तीसरे साल फल देने वाले पौधों को अगर खाद दी जाए, फल आने के बाद उसी समय सिंचाई की जाए, हर साल एक बार आसपास खुदाई जुताई कराई जाए, तो हो सकता है कि उनसे हर साल फल मिलने लगें।

आम के पेड़ से फल तो मिलता ही है, आम की गुठली के अन्दर की बिजली में चिकनाई (फ़ैट) और माँड (स्टार्च) काफी होता है। इसलिए उसे पीस कर आटे की तरह काम में लाया जाता है। साबुन और काग़ज़ बनाने में भी इसका उपयोग हो सकता है। आम की गुठली दवा की तरह भी काम आती है। दस्त रोकने के लिए बेल और अदरक के साथ आम की गुठली दी जाती है। खूनी बवासीर में भी यह लाभदायक है।

इधर कुछ साल से आम दूसरे देशों में भी भेजा जाने लगा है। परन्तु जल्द ख़राब हो जाने के कारण अभी हवाई जहाज़ से ही जाता है।

२—बबूल या कीकर

बबूल काँटेदार और सदा हरा रहने वाला पेड़ है। यह पंजाब, उत्तर प्रदेश और बरार में अधिक पाया जाता है। इसकी तीन जातियां हैं : गोदी, कौरिया और रामकान्ता। इनकी ऊंचाई अलग अलग होती है। बबूल के फूल पीले और मीठी महक वाले होते हैं। फलियाँ ३ से ६ इंच तक लम्बी

होती है जिन में एक एक में ८ से १२ तक बीज होते हैं ।

यह पेड़ खुश्क जलवायु में ठीक रहता है, पर सिंचाई ज़रूरी है। बोने के लिए फलियों में से लिए हुए बीज उतने अच्छे नहीं रहते, जितने जानवरों के गोबर में से निकाले हुए बीज । इन बीजों पर पशुओं के पेट के पाचक रसों का अच्छा असर होता है । इससे बीज का छिलका जल्दी गल जाता है और बीज जल्दी उग आता है । इसके छोटे पौधे को काफ़ी रोशनी, तरी और साफ़ भुरभुरी ज़मीन चाहिए । पौधा साल दो साल ही में पांच छः फुट ऊंचा हो जाता है ।

बबूल का लगभग हर हिस्सा हमारे काम आता है । इसकी छाल में टेनीन नामक एक चीज होती है, जो चमड़ा पकाने के काम आती है । बबूल की छाल से कमाया हुआ चमड़ा मज़बूत होता है । भारी चमड़े को पकाने के लिए भी बबूल अच्छा रहता है ।

हरी फलियाँ चारे के काम में आती हैं । उनमें १६ फ़ी सदी प्रोटीन होता है, जिससे जानवरों के रग पुट्ठे बनते हैं ।

गोंद निकालने के लिए अधिकतर चैत बैसाख के महीनों में पेड़ पर निशान लगाते हैं। नए पेड़ों से एक बरस में एक सेर से भी अधिक गोंद मिल जाता है । पर जैसे जैसे पेड़ की आयु बढ़ती जाती है, गोंद कम होता जाता है । गोंद रँगाई, छपाई, काग़ज़ बनाने और दवाओं में काम आता है ।

बबूल की लकड़ी बहुत मज़बूत होती है और इसमें घुन नहीं लगता । यह खेती के औज़ारों में लगाई जाती हैं । कोल्हू, चरखा, तम्बू की खूंटियाँ, नाव के डांड आदि बनाने में भी बबूल की लकड़ी काम आती है। कहीं कहीं इस पर लाख का कीड़ा भी पाला जाता है । इसके काँटे मछली पकड़ने के

काम आते हैं। उत्तरी भारत में बबूल की हरी पतली टहनियाँ दातून की तरह बरती जाती हैं। बबूल की लकड़ी का कोयला भी अच्छा होता है।

भारत में आज कल दो तरह का बबूल अधिक लगाया जाता है। एक देसी बबूल जो देर में बड़ा होता है और दूसरा मासकीट नामक बबूल। बबूल लगा लगा कर पानी के कटाव को रोका जा सकता है। जब रेगिस्तान अच्छी भूमि की ओर फैलने लगता है तब बबूल के जंगल लगा कर रेगिस्तान के इस आक्रमण को रोका जाता है। देहातों, पहाड़ियों और खुले मैदानों में बबूल लगा कर उस स्थान को सुन्दर भी बनाते हैं।

३–कुडजू

कुडजू एक फलीदार बेल है, जिसकी सूखी और हरी पत्तियाँ जानवर बहुत चाव से खाते हैं। इससे पशुओं के लिए गर्मी और बरसात के दिनों में हरा चारा मिलता है। जाड़े के लिए चारा काट कर रखा जा सकता है। हमारे देश में चारे की कमी है। कुडजू की बेल लगा कर हम यह कमी बहुत कुछ पूरी कर सकते हैं। इसका चारा दूसरे चारों से अच्छा होता है, और यह पैदा भी बहुत होता है। इसके लगाने से मिट्टी का कटना भी रुकता है, और धरती और अधिक उपजाऊ हो जाती है।

कुडजू के पत्ते पान के बराबर चौड़े होते हैं। इसकी हर गाँठ से आमतौर पर बरसात में जड़ें निकलती हैं। इसलिए एक वर्ष में हर गाँठ एक नया पौधा बन जाती है। यह बेल चारों तरफ को फैलती है। कभी कभी तो यह ५० फुट से भी अधिक लम्बी हो जाती है। इसकी जड़ें भी लम्बी और गूदेवार होती हैं। इसलिए गर्मियों में इस की सिंचाई करने की

कुडज़ू का खेत

*

ज़रूरत नहीं रहती। कुडज़ू पर पाले का कुछ असर होता है, इसलिए जाड़ों में इसकी पत्तियाँ गिर जाती हैं। पर जैसे जैसे गर्मी बढ़ने लगती है इसमें भी पत्तियाँ निकलने लगती हैं। वसन्त ऋतु से नई पत्तियाँ आने लगती हैं।

यह बेल गाँठों से भी लगाई जाती है और बीज से भी। गाँठों से बेल लगाना बहुत आसान है। बोने के लिए गाँठें दिसम्बर के अन्त और जनवरी के आरम्भ में खोदी जाती हैं। गाँठें खोद कर उन्हें उसी समय लगाया जा सकता है। अगर उसी समय न लगाया जा सके तो उन्हें भीगे हुए टाट में लपेट कर रख देते हैं। इस तरह रखने से गाँठें चार पांच दिन बाद भी बोई जा सकती हैं, और उन्हें लगाने के लिए दूर के

स्थानों तक भी भेजा जा सकता है। लगाने के लिए वे ही गाँठें अच्छी रहती हैं, जिनमें दो तीन जड़ें और कुछ अच्छी आँखें हों।

गाँठें जड़ों की नाप के गड्ढे बना कर लगाई जाती हैं। उन्हें दोमट (रेतीली और चिकनी मिली) ज़मीन में एक या आध इंच मोटी मिट्टी

की तह से ढँक देते हैं। पर मटियार ज़मीन पर गाँठों को ऊपरी तह में ही लगाते हैं और उनके चारों तरफ़ मिट्टी खूब दाब देते हैं। गाँठें लगाने के बाद तीन चार दिन तक उतना ही पानी देते रहना चाहिए, जिससे ज़मीन ज़रा नम रहे। गाँठें लगाने का सबसे अच्छा समय जनवरी का महीना होता है। लगाने के लगभग एक महीना बाद आँख निकल आती है।

इस बेल के लिए पहले वर्ष सिंचाई की ज़रूरत पड़ती है। इसलिए इसे ऐसी जगह लगाना चाहिए, जहाँ पानी पहुँच सके। अगर पानी मिलने में कठिनाई हो, तो पहले गमलों या क्यारियों में लगा देना चाहिए। फिर बरसात के शुरू में लगभग २० फुट की दूरी पर लगाया जा सकता है। बोने के बाद पहले दो तीन साल तक इसे न तो काटना चाहिए और न इस पर जानवर चराना चाहिए। बाद में भी तीन बार से अधिक इसे न काटना चाहिए। पहले साल नराई और गुड़ाई करके खतवार निकाल देना चाहिए। दो तीन बरस में यह खूब घनी हो जाती है। एक बार लगाने पर फिर इसे सिंचाई की ज़रूरत नहीं होती। लगाते समय सावधानी रखनी पड़ती है, पर लग जाने पर फिर दो तीन साल तक कोई विशेष मेहनत नहीं पड़ती। पौधे उगते समय सुपर फास्फ़ेट का खाद देने से लाभ होता है।
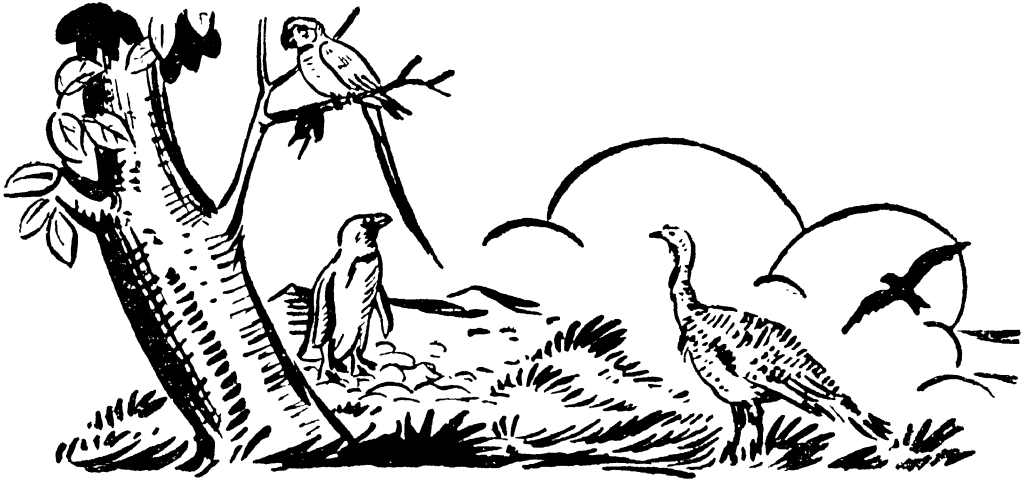
११

कुछ पक्षी

अभी हम अपने बिस्तरों पर ही होते हैं कि पक्षियों का चहचहाना, उनके मीठे मीठे बोल और उनके मधुर गीत सवेरा होने की सूचना देते हैं। भांति भांति के रंग रूप और स्वभाव वाले इन पक्षियों की हज़ारों जातियाँ हैं। कुछ पक्षी घरों में रहना पसंद करते हैं, और कुछ को खेतों और मैदानों में आज़ादी के साथ उड़ना अच्छा लगता है। कुछ पक्षी जंगलों में चाव से रहते हैं, और कुछ पहाड़ों की चोटियों पर बसेरा करते हैं।

पक्षियों की अलग अलग जातियों में कुछ बातें आपस में मिलती भी हैं। परन्तु बहुत सी बातें एक दूसरे से अलग होती हैं। इसके अनेक कारण हैं, जैसे—मौसम, जलवायु और उस स्थान की बनावट आदि जहां वे पाए

जाते हैं। पक्षियों का स्वभाव और उनका रहन सहन भी अधिकतर मौसम और जलवायु के अनुसार ही होता है।

यहाँ हम कुछ पक्षियों की मुख्य मुख्य बातें बता रहे हैं। इनमें से कुछ तो हमारे जाने पहचाने हैं, और कुछ हम में से बहुतों के लिए नए होंगे।

१—कोयल

कोयल रंग रूप में तो कौवे से मिलती है, पर बोली और स्वभाव में कौवे से बिलकुल अलग है। कौवे की बोली किसी को अच्छी नहीं लगती। कोयल की बोली सब को प्यारी लगती है। इसीलिए हिन्दी के एक कवि ने कहा है—

कागा का सों लेत है, कोयल काको देत,
इक बानी के कारने, जग अपना कर लेत।

अर्थात् कौवा किसी से क्या लेता है और कोयल किसी को क्या देती है? पर कोयल अपनी मीठी बोली से सारे संसार को अपना बना लेती है।

कोयल उत्तर भारत में गर्मियों के दिनों में मिलती है। यह उत्तर भारत की सर्दी नहीं सह सकती, इसीलिए सर्दियों में देश के दक्खिनी भाग में चली जाती है। बंगाल में यह उस समय भी रह जाती है।

गाने में कोयल सब पक्षियों से बढ़चढ़ कर है। इसकी कूक किसने नहीं सुनी? गर्मियों में पौ फटने से पहले यह बड़े उत्साह से गाती है। इसकी कूक अमराई में अनोखी मस्ती भर देती है।

कोयल अपने अंडे खुद नहीं सेती। वह कौवों से यह बेगार लेती है।

वह लड़ाई में तो कौवों से जीत नहीं पाती, इसलिए कौवों को धोखा दे कर उनके घोंसलों में अपने अंडे रख आती है। कोयल का अंडा, रंग रूप और वज़न में कौवे के अंडे जैसा नहीं होता। परन्तु इस पर भी कौवा अपने और कोयल के अंडों की पहचान नहीं कर पाता और उन्हें अपने अंडे समझ कर सेता रहता है। कोयल कौवे के घोंसले में जितने अंडे रखती है, कौवे के उतने ही अंडे नष्ट कर देती है।

क़द में कोयल कबूतर से कुछ छोटी होती है। पर पूंछ को मिला कर उसकी लंबाई सवा फुट से डेढ़ फुट तक हो जाती है। नर बहुत काला होता है, मादा कुछ भूरे रंग की होती है। नर और मादा, दोनों की आँखें लाल होती हैं। सिर सीसे के रंग का होता है। आम कोयल का मनभाता खाजा है।

२—मोर

पक्षियों में सुन्दरता के विचार से जो स्थान मोर का है, वह किसी दूसरे पक्षी का नहीं। मोर की सुराहीदार गर्दन, सिर का शाही ताज, भड़कीली पोशाक यानी रंग बिरंगी दुम, और बाँकी चाल दिल में घर कर जाती है। पर इसके पैर भद्दे और खुरदरे होते हैं। इसके पंख भी बस दिखावे के ही हैं। उनसे इसे उड़ने में सहायता नहीं मिलती। शरीर

भारी होता है इसलिए अधिक से अधिक ज़मीन से पेड़ तक उड़ कर जा बैठता है। हाँ, भागता बहुत तेज़ है।

मोरनी मोर जैसी सुन्दर नहीं होती। मोर नाचते समय चारों ओर चक्कर लगाता है। उसकी दुम के पंखों में नीले नीले चाँद जैसे गोल निशान होते हैं और नाचते समय उसकी दुम गोल पंखे की तरह फैल जाती है। उस समय मोर बिलकुल मस्त हो जाता है और अपने आसपास के वातावरण को बिल्कुल भूल जाता है। इसी तरह जब बादल घिर कर आते हैं और गरजने लगते हैं, तो उनकी गरज सुन कर मोर भी 'पीहू पीहू' की रट लगा देता है।

सफ़ेद मोर—पच्छिमी भारत में कहीं कहीं मिलता है

कुछ मोर बिलकुल सफ़ेद रंग के भी होते हैं। नाचते समय वे भी बहुत सुन्दर लगते हैं।

मोर कीड़े मकोड़े खाता है। घास में पाए जाने वाले कीड़े इसे बहुत

भाते हैं। छोटा मोटा साँप नज़र आ जाए तो उसे चोंच में पकड़ लेता है, और जमीन पर पटक पटक कर मार डालता है। वह कभी कभी साँप को निगल भी जाता है।

मोर आदमी से बहुत कम डरता है और पालने से हिल भी जाता है। मोरनी साल में एक ही बार अंडे देती है, जो गिनती में दस बारह और कभी कभी बीस पच्चीस तक पहुँच जाते हैं। मुर्गी के नीचे रख कर मोर के अंडों से बच्चे निकाले जा सकते हैं। बच्चे जब तक छोटे होते हैं, तब तक नर और मादा की पहचान करना कठिन होता है। पर एक वर्ष बाद नर की दुम बढ़ने लगती है और फिर थोड़े ही समय के बाद वह एक सुन्दर मोर बन जाता है।

३—पेंगुइन

पेंगुइन एक ऐसा पक्षी है जो हमारे देश में नहीं होता। यह संसार के अनोखे पक्षियों में गिना जाता है। यह पानी के अंदर ही अंदर दूर तक तैरता चला जाता है। यह पक्षी अधिकतर बर्फ़ीले देशों के टापुओं में होता है। कुछ टापुओं में तो यह बहुत अधिक होता है।

पेंगुइन का रंग काला और सफ़ेद होता है। क़द ढाई तीन फ़ुट तक होता है। नर और मादा के मिलाप का ढंग अनोखा है। नर मादा के सामने छोटे छोटे गोल पत्थर ला कर डालता है।

जिसका मतलब यह होता है कि आओ हम दोनों घोंसला बनाएं। मादा यह संदेश स्वीकार कर लेती है, तो वे दोनों मिलकर घोंसला बनाते हैं। मादा उसमें अंडे देती है, जिसे दोनों मिल कर बारी बारी से पचास दिन तक सेते हैं। पेंगुइन मुर्गी की तरह अंडों पर बैठ कर उन्हें नहीं सेते, बल्कि राज पेंगुइन (पेंगुइन की एक जाति) के पास एक जेब सी होती है जिसमें ये बारी बारी अंडा रखते हैं। सर्दी अधिक होने के कारण पेंगुइन के अधिकतर बच्चे ठिठुर कर मर जाते हैं।

मछली, नदियों की घास, और कीड़े मकोड़े पेंगुइन का भोजन है।

४—तोता

तोते उन पक्षियों में से हैं जो आम तौर से घरों में पाले जाते हैं। ये कई रंग के होते हैं। कोई लाल रंग का होता है, कोई हरा, और कोई सफ़ेद। देखने में सब बहुत सुन्दर लगते हैं। ये पक्षी अधिकतर भारत, अफ्रीका, दक्खिनी अमरीका, आदि देशों में पाए जाते हैं। तोता हरे भरे और फल पत्तों वाले स्थान अधिक पसन्द करता है। यह झुंड बना कर रहता है। इसका झुंड पेड़ों के बीच हरी हरी पत्तियों में इस तरह छिप कर बैठ जाता है, कि उसे पहचानना कठिन हो जाता है।
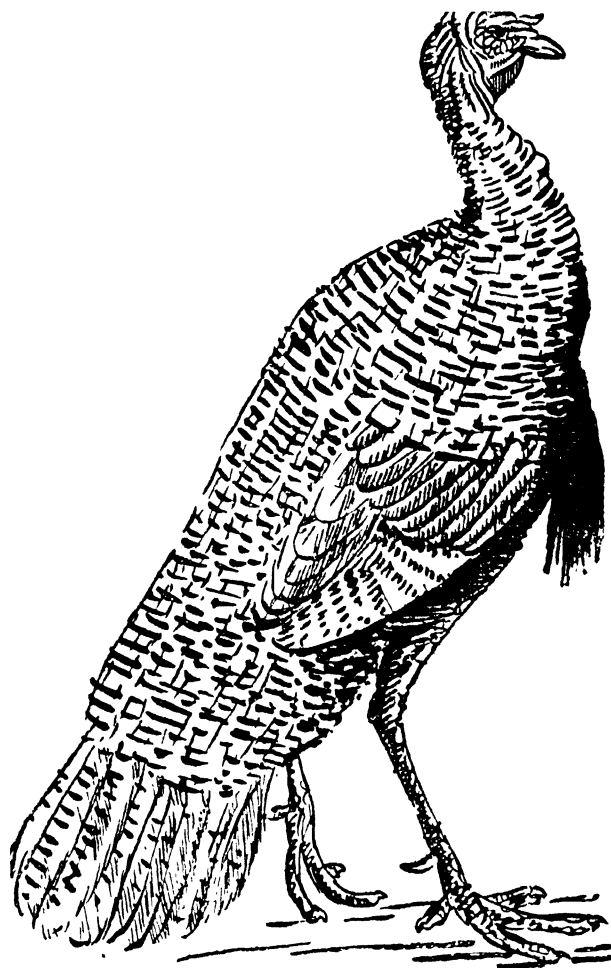
पीरू इतना बड़ा नहीं होता जितना देखने में मालूम होता है। इसका कारण यह है कि उसके पंख बहुत खुले हुए और ढीले होते हैं। नर और मादा में बहुत समानता होती है, इसलिए उन्हें पहचानना भी कठिन होता है। नर की क़लग़ी मादा की क़लग़ी से ऊँची होती है और उसकी गर्दन के नीचे का मांस नीलापन लिए हुए लाल रंग का होता है। मादा की गर्दन के नीचे का मांस बिलकुल लाल और नर के मुक़ाबले में कम लम्बा होता है।

पीरू का रंग अधिकतर भूरा होता है। उसके पूरे शरीर पर सफ़ेद सफ़ेद धब्बे होते हैं। पीरू की एक जाति बिलकुल सफ़ेद रंग की भी होती है। ये देखने में अधिक सुन्दर होते हैं। इसके अलावा काले और चितकबरे रंग के पीरू भी होते हैं।

पीरू के अंडों को मुर्गियों के नीचे रख कर बच्चे निकलवाए जा सकते हैं। किसानों के लिए पीरू पालना बहुत लाभदायक होता है। यह फ़सल को हानि पहुंचाने वाले सब कीड़े खा जाता है।

पीरू के एक नर के साथ दो मादा मिलानी चाहिए। मादा साल में

७० से १०० तक अंडे देती है। अंडों से २६ दिन में बच्चे निकलते हैं।

यह पक्षी बहुत सहनशील होता है। इस पर गर्मी और सर्दी का कोई असर नहीं पड़ता। दूसरी ओर पीरू के चूज़े बहुत कोमल स्वभाव के होते हैं। इसलिए उनके लालन पालन में बहुत सावधानी से काम लेना पड़ता है।
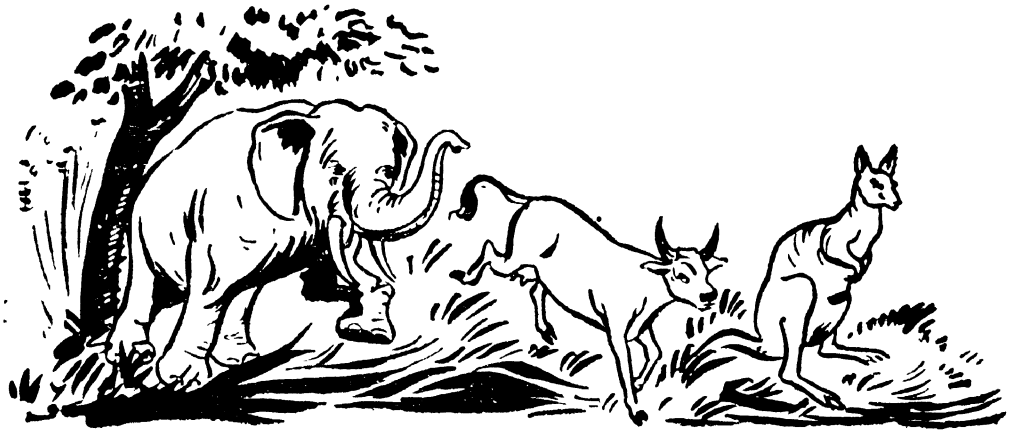
२०

कुछ पशु

मनुष्य और पशुओं का सम्बन्ध हज़ारों वर्षों से चला आ रहा है। आरम्भ में मनुष्य जंगली जानवरों का शिकार कर के अपना पेट भरता था। धीरे धीरे वह पशुओं को साधने और पालने लगा। इस तरह उसे इन पशुओं से नित नए लाभ होने लगे। मनुष्य का धन बनने का गौरव पहले पहल पशुओं को ही मिला। इतना ही नहीं, पशु बड़े काम के होते हैं, यह देखकर उनमें से कुछ तो देवता तक मान लिए गए।

मनुष्य ने जैसे जैसे सभ्यता की सीढ़ियाँ पार कीं, वैसे वैसे प्रकृति पर उसका अधिकार भी बढ़ता गया। धीरे धीरे उसने पशुओं की सहायता से अपना जीवन सुन्दर और सुखी बनाया और अपने लिए तरह तरह की सुविधाएं

जुटाइँ। दूध, घी, जूते, ऊनी कपड़े, ये सब पशुग्रों की ही देन हैं। हमारी खेती में भी पशुग्रों का बड़ा हाथ है। बैल ग्रौर घोड़े खेत जोतने के काम ग्राते हैं।

पशुग्रों को हम इससे भी ग्रधिक लाभदायक बना सकते हैं। इसके लिए हमें पशुग्रों की ग्रधिक से ग्रधिक जानकारी होनी चाहिए ग्रौर उनकी उचित देखभाल करनी चाहिए।

१—ज़ेब्रा

ज़ेब्रा वैसे तो घोड़े ही की जाति का पशु है, पर उसका रूप ग्रौर स्वभाव घोड़े से बिलकुल भिन्न है। ज़ेब्रा बहुत ही सुन्दर पशु है। ग्रब तक मनुष्य इसे पूरी तरह वश में नहीं कर सका, इसीलिए इसे पाल कर वह इससे लाभ भी नहीं उठा सका।
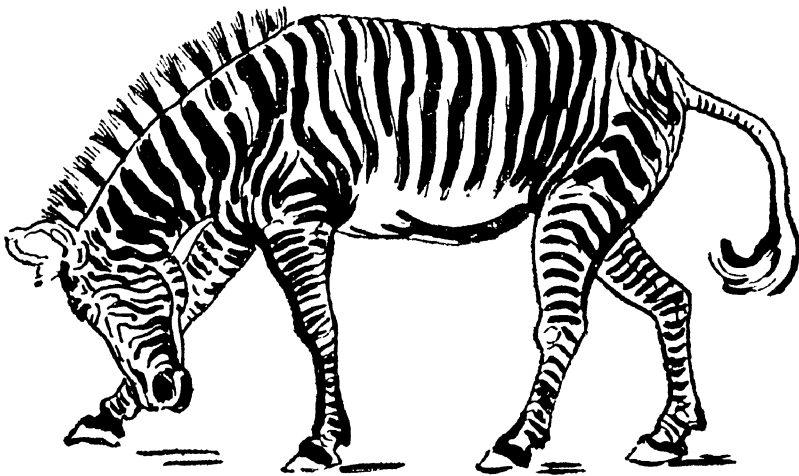
ज़ेब्रा ग्रफ्रीका में पाया जाता है। इसकी तीन जातियां हैं।

१. पहाड़ी ज़ेब्रा : इसके सफ़ेद शरीर पर काले रंग की धारियां होती

हैं । यह तीनों जातियों में सबसे सुन्दर होता है । क़द लगभग चार फुट होता है । यह पहाड़ों पर रहता और बहुत तेज़ दौड़ता है ।

२. बरचल का ज़ेब्रा : इस जाति के ज़ेब्रे सफ़ेद, भूरे और हल्के पीले रंग के होते हैं । ये पहाड़ी ज़ेब्रे से कुछ बड़े और मोटे होते हैं ।

३. ग्रेवी का ज़ेब्रा : इस जाति के ज़ेब्रे घने जंगलों में रहते हैं और मदान में निकलना बहुत कम पसन्द करते हैं । ये शरीर की बनावट में पहाड़ी ज़ेब्रे जैसे होते हैं, पर इनके शरीर की धारियां पतली और गिनती में इतनी अधिक होती हैं कि लगभग टापों तक साफ़ दिखाई देती हैं ।

तीनों जातियों के ज़ेब्रे छोटे छोटे झुण्ड बना कर रहते हैं । ये बहुत दूर तक की चीज़ देख सकते हैं, इसीलिए मनुष्य के पास पहुँचने से पहले ही ये भाग जाते हैं और इन्हें पकड़ना बहुत कठिन होता है । ज़ेब्रों के झुण्ड दिन भर धूप में फिरते रहते हैं । इससे इन्हें कुछ भी कष्ट नहीं होता । पेड़ों की छाया में तो ये बहुत ही कम बैठते हैं ।

झुण्ड में अधिकतर एक नर और कई मादा होती हैं । अगर किसी समय कोई दूसरा पशु झुण्ड की मादा को मार डालता है, तो झुण्ड का नर किसी दूसरे झुण्ड की मादा अपने झुण्ड में ज़बरदस्ती मिलाना चाहता है । इस पर नरों में बड़ी भयानक लड़ाइयाँ होती हैं ।

पशुओं के शिकार में ज़ेब्रे बहुत रुकावट डालते हैं । मनुष्य को देखते ही ये शोर मचाने लगते हैं, जिससे सारे पशु सावधान हो जाते हैं ।

ज़ेब्रे के स्वभाव में कोई ऐसी बात नहीं कि उसे पाला न जा सके। पर इसे सिखाने सधाने में बहुत कठिनाइयाँ सामने आती हैं, क्योंकि यह बहुत कटखना होता है ।

१—काँगरू

काँगरू अधिकतर आस्ट्रेलिया में पाया जाता है। इसकी पिछली टाँगे लम्बी और मज़बूत होती हैं, पर अगली कमज़ोर और छोटी होती हैं। देखने में इसकी टाँगे अनमेल सी लगती हैं।

काँगरू के शरीर की पूरी ताक़त उसके पिछले भाग में होती है। शरीर का अगला भाग बहुत कमज़ोर होता है। उसकी दुम लम्बी और मोटी होती है। बैठते समय वह पिछली टाँगों को मोड़ कर दुम का सहारा लेता है और तिपाई सी बना कर बैठ जाता है। काँगरू का सिर छोटा और चेहरा लम्बोतरा होता है। उसे किसी तरह का डर नहीं होता। वह प्रायः अपनी पिछली दो टाँगों से चलता है, पर कभी कभी चारों से भी चलता है; किन्तु इस तरह चलने में उसे आराम नहीं मिलता और उसकी यह चाल देखने में भद्दी भी जान पड़ती है। काँगरू दौड़ता नहीं। अपनी अगली और पिछली टाँगों की सहायता से वह तेज़ी से छलाँगें लगाता है। एक छलाँग में वह बीस पच्चीस फुट की दूरी पार कर लेता है। छलाँग मार कर नौ दस फुट ऊँची झाड़ी पार कर जाना उसके लिए साधारण सी बात है।

मादा काँगरू के पेट में एक थैली सी होती है। अपने छोटे बच्चों को

वह इसी थैली में रखती है। यदि शत्रु उसका पीछा करता है, तो वह अपने बच्चों को इस थैली में छिपा लेती है और उसी तेज़ी से छलाँगें लगाती रहती है।

काँगरू सब्जियाँ अधिक खाते हैं। वे छोटे छोटे झुण्ड बना कर किसी पुराने और अनुभवी नर की सरदारी में रहते हैं। सरदारी के लिए कभी कभी नरों में लड़ाइयाँ भी होती हैं।

अब तक काँगरू की तीस जातियाँ मालूम हो चुकी हैं। इनमें से कुछ तो बड़ी जाति की भेड़ के बराबर होते हैं और कुछ छोटे छोटे चूहों के बराबर।

३—हाथी

प्रकृति ने हाथी को छोड़कर और किसी पशु को सूँड़ नहीं दी। हाथी की केवल दो जातियाँ हैं। एक तो एशिया का हाथी और दूसरा अफ्रीका का।

अफ्रीका का हाथी क़द में बड़ा और अधिक बलवान होता है। इसकी पीठ बराबर और चौरस होती है। भारत के हाथी की पीठ गोल और बीच में कुछ ऊँची होती है।

सूँड़ हाथी के शरीर का बहुत ही आवश्यक अंग है। सूँड़ की लम्बाई छः से आठ फुट तक होती है। हाथी अपनी सूँड़ को जहाँ से चाहे मोड़ सकता है। सूँड़ में चालीस हज़ार के लगभग पुट्ठे होते हैं। हाथी अपनी सूँड़ पर किसी तरह का घाव सहन नहीं कर सकता। शत्रु से सामना करते समय उसको सबसे अधिक सूँड़ की रक्षा की ही चिन्ता रहती है।

शरीर के दूसरे भागों की तुलना में हाथी की आँखें बहुत छोटी होती

हैं और साथ ही उसकी देखने की शक्ति भी बहुत कम होती है। हाँ, हाथी में सूंघने और याद रखने की शक्ति बहुत होती है। स्वादिष्ट चीज़ों के सिवा वह साधारण और घटिया चीजों पर ध्यान नहीं देता। गन्ना, केला, नारियल और मीठी चीजें वह बड़े चाव से खाता है।

पालतू हाथियों की आयु सौ बरस होती है, पर जंगली हाथी डेढ़ सौ बरस तक जीते है। हाथी का बच्चा इक्कीस महीने के बाद पैदा होता है और चालीस बरस की आयु में जवान होता है।

यह कहावत तो सबने सुनी है कि "हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और"। यह दिखाने के दाँत वही हैं जो हाथी की सूँड़ के दोनों ओर बाहर को निकले होते हैं। हाथी इनसे अपने बचाव का काम लेता है और यह उसकी शोभा बढ़ाते हैं। हाथीदाँत बहुत कीमती होता है। लोग इसकी खोज में लगे रहते हैं। इसीलिए तो कहते हैं कि "हाथी मरने पर भी सवा लाख का।" अफ्रीका के हाथी के दाँत बहुत बड़े, भारी और सुन्दर होते हैं। यह ११ फुट तक लम्बे और दो मन तक भारी पाए गए हैं।

लड़ाई और सवारी के लिए मनुष्य बहुत पुराने समय से हाथी को काम में लाता आया है।
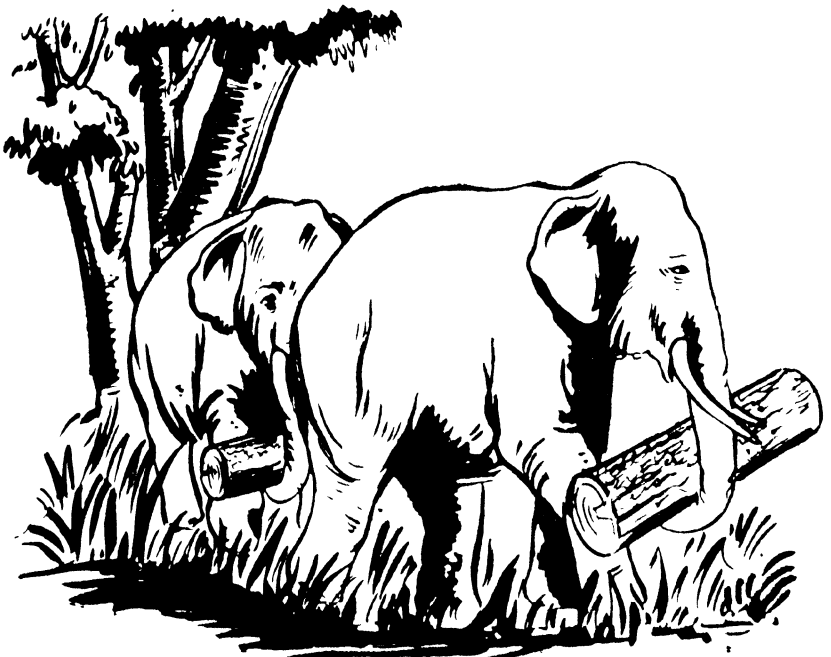
उससे सामान को एक जगह से दूसरी जगह लाने और ले जाने में भी बहुत सहायता मिलती है। लकड़ी के बड़े लट्ठे और पेड़ों के तने जंगलों से काट

कर हाथी द्वारा लाए जाते हैं। पिछली बड़ी लड़ाई में भी हाथियों से बड़े बड़े काम लिए गए। शेर के शिकार में तो हाथी को प्रायः काम में लाया जाता है। पुराने समय में हाथियों की लड़ाइयाँ भी कराई जाती थीं।

हाथीदांत से भाँति भाँति के गहने, खिलौने और चाकुओं और छुरियों के बेंट या दस्ते बनाए जाते हैं। भारत के कुछ इलाकों में हाथी का शिकार करना बन्द कर दिया गया है। मैसूर और मद्रास की सीमा पर बंडीपुर और ट्रावनकोर में पेरिआर झील के आसपास सरकार की ओर से हाथियों के लिए सुरक्षित स्थान बनाया गया है ताकि इनका वंश बढ़ता रहे।

४—भेड़

अब से बहुत पहले जब रूई और कपास का नाम भी न था, तब बकरे, ऊँट और भेड़ ही की खाल से तन ढाँकने का काम लिया जाता था और

इनके बालों और ऊन से कम्बल बनाये जाते थे। आज भी सब पशुओं में से भेड़ के बाल बहुत उपयोगी हैं। इनकी ऊन से गरम चादरें और भाँति भाँति के गरम कपड़े बनाए जाते हैं।

भारत में भेड़ें बहुत पाली जाती हैं। अलग अलग जलवायु में अलग अलग जाति की भेड़ें मिलती हैं। पहाड़ी भेड़ें मैदानी भेड़ों से बड़ी होती हैं, और उनकी ऊन भी मुलायम होती है। पहाड़ी इलाके भेड़ पालने के लिए बहुत अच्छे रहते हैं। पहाड़ी भेड़ की ऊन मैदानी भेड़ की ऊन से ज्यादा गरम और अच्छी होती है। इसी तरह सींग वाली भेड़ों से बिना सींग वाली भेड़ें अच्छी मानी जाती हैं।

स्पेन की मेरिनो भेड़ दुनिया में सबसे अच्छी है। यह भेड़ मामूली

मेरीनो नर
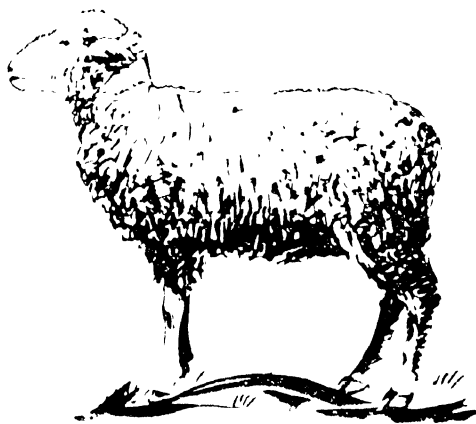
दोगली मेरीनो नस्ल

भेड़ों से बड़ी और मोटी ताज़ी होती है। इसके बदन पर एक इंच लम्बी और एक इंच चौड़ी जगह पर ४० हजार से ४८ हजार तक बाल होते हैं। इसकी ऊन सब
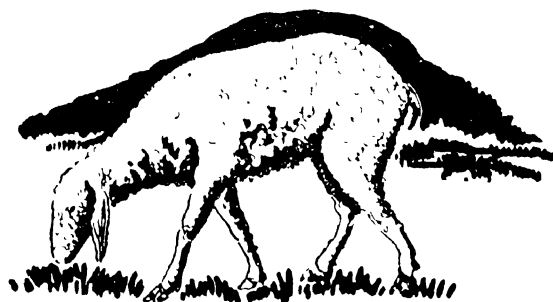
देशी भेड़

भेड़ों की ऊन से मुलायम होती है।

भेड़ की आयु आठ से नौ बरस तक है। भेड़ें अधिकतर या तो ऊन के लिए पाली जाती हैं या मांस के लिए। इस सम्बन्ध में यह याद रखना चाहिए कि जो भेड़ ऊन अच्छा देगी, उसका मांस अच्छा और स्वादिष्ट न होगा। इसीलिए ऊन और मांस वाली भेड़ों की जातियाँ अलग अलग होती हैं।

भेड़ गाभिन होने के पाँच महीने बाद एक या दो बच्चे देती है। मादा बच्चे दो तीन दिन पहले पैदा हो जाते हैं और नर बच्चे दो तीन दिन अधिक ले लेते हैं।

भेड़ संसार की हर चीज़ खा लेती है, पर सब्जियाँ अधिक चाव से खाती है। इसके अलावा गेहूँ, जौ, ज्वार आदि की बारीक भूसी में खली मिलाकर देने से अधिक लाभ होता है। जिन दिनों ओस पड़ रही हो, भेड़ों को धूप निकलने से पहले बाहर न जाने देना चाहिए। ओस भेड़ों को हानि पहुँचाती है।

भेड़ का दूध गाय के दूध से अधिक गाढ़ा होता है। इसके दूध का पनीर बहुत अच्छा और स्वादिष्ट होता है। भेड़ के दूध में दूसरे पशुओं के दूध के मुकाबले में चर्बी का अंश भी अधिक होता है।

२१

समुद्र का अजायबघर

मोती

हमारी पृथ्वी का लगभग दो तिहाई भाग पानी से ढका हुआ है जिसमें पाँच बड़े बड़े महासागर हिलोरें मारते हैं। इन महासागरों की गहराई का क्या कहना! कहीं कहीं तो ये छः सात मील तक गहरे हैं। इस गहराई का अनुमान कुछ इस प्रकार लगाया जा सकता है कि यदि संसार का सब से ऊँचा पहाड़ एवरेस्ट समुद्र में डाल दिया जाए, तो वह डूब कर लापता हो जाएगा।

जिस प्रकार धरती पर पेड़ पौधे, पशु पक्षी और मनुष्य रहते हैं, उसी प्रकार समुद्रों की दुनिया भी आबाद है। पर समुद्रों में बसने वाले प्राणी और पौधे धरती पर रहने वाले जीवधारियों और पौधों से कहीं अनोखे

हैं। इनमें से कुछ का रंग रूप तो ऐसा है कि जीवधारियों को देखकर पौधे होने का और पौधों को देखकर प्राणी होने का सन्देह होता है। एनीमोन और मूंगा इसी प्रकार के जीव हैं। ये देखने में बिलकुल फूल जैसे लगते हैं।

एनीमोन

समुद्र में रहने वाले कुछ जीव मनुष्य के बड़े काम के हैं। सीप और मोती पैदा करने वाले घोंघे की गिनती ऐसे ही जीवों में है। परन्तु मोती वहीं के घोंघों में पाया जाता है जहाँ घोंघे बहुत अधिक हों। अधिक होने के कारण घोंघों को अपने भोजन के लिए इधर उधर घूमना पड़ता है और इस प्रकार हिलने डुलने से रेत के छोटे छोटे कण शरीर में पहुँच जाते हैं और कष्ट देते हैं। इस कष्ट से बचने के लिए घोंघा इन रेत के कणों के चारों ओर एक लसदार पदार्थ लपेट लेता है जो बाद में कड़ा होकर मोती बन जाता है।

मूंगा

घोंघा

समुद्र से मोती निकालने का काम डुबकी लगाने में चतुर गोताखोर करते हैं।
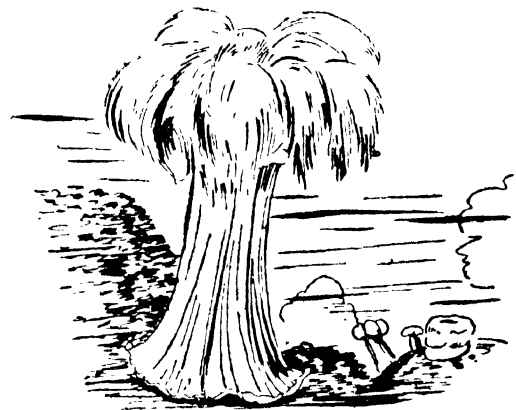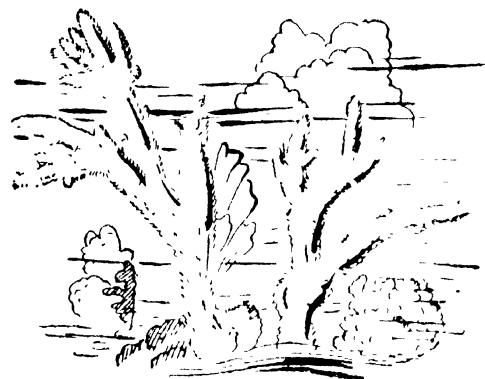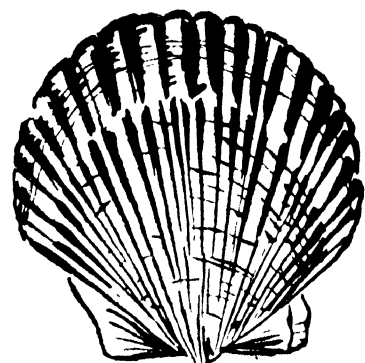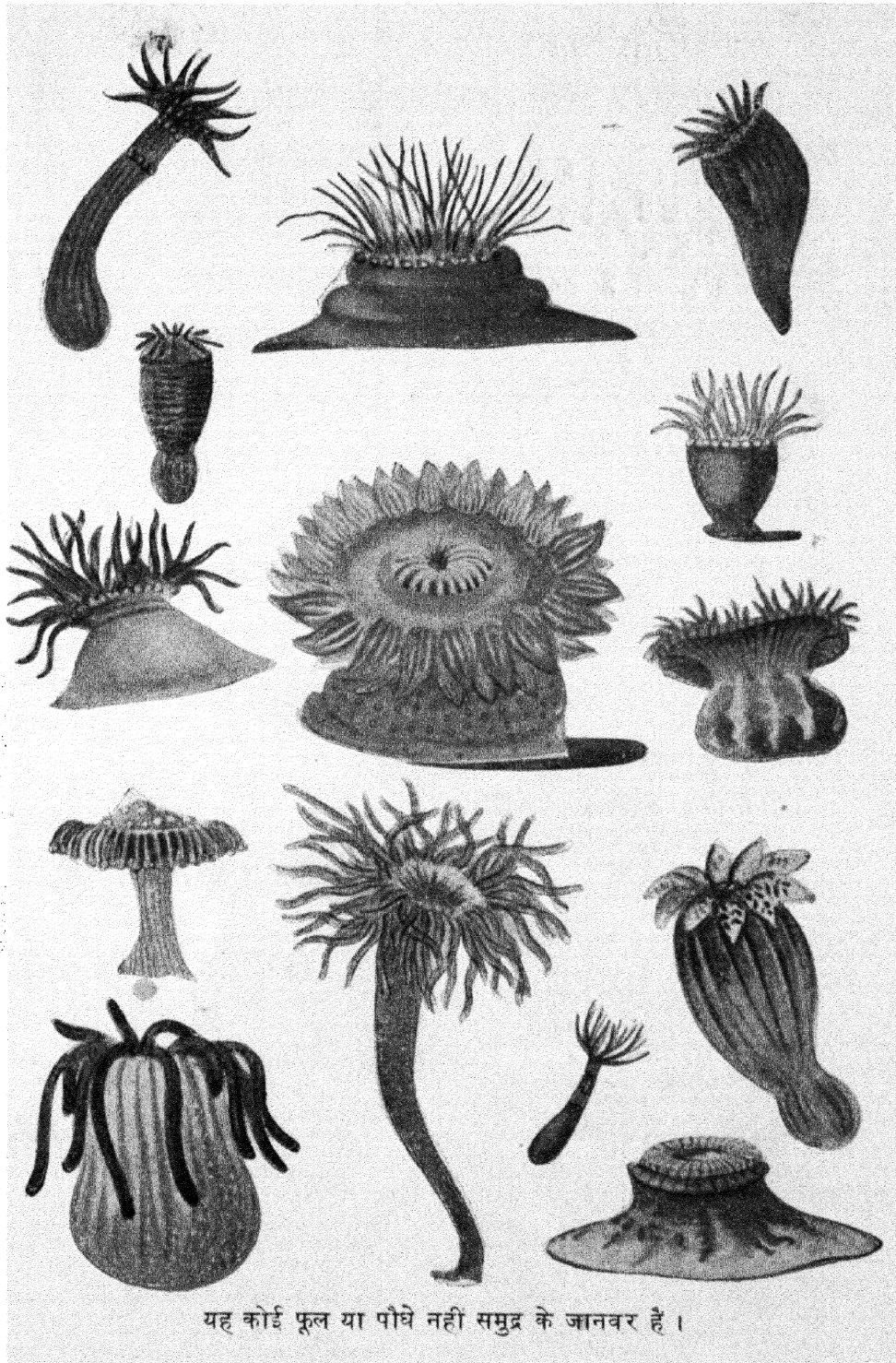
यह कोई फूल या पौधे नहीं समुद्र के जानवर हैं ।
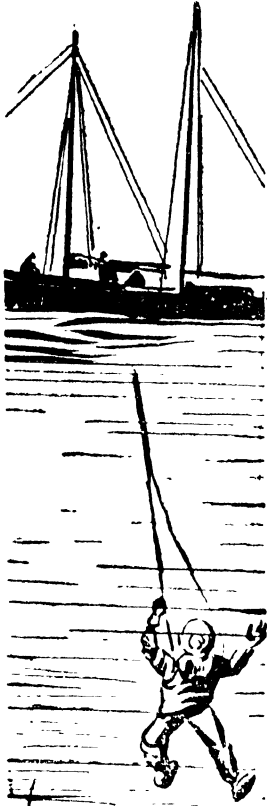
पहले यह काम बहुत ख़तरनाक था। समुद्र में रहने वाली बड़ी बड़ी मछलियाँ और जानवर किसी भी समय आक्रमण कर सकते थे। परन्तु अब यह काम इतना कठिन नहीं। गोताखोरों के लिए एक विशेष प्रकार का पहनावा निकल चुका है जो उनकी रक्षा करता है। साथ ही साँस लेने के लिए एक नल के द्वारा ताजा हवा भी पहुँचाता है, इसलिए गोताखोर अधिक देर तक समुद्र में रह सकते हैं।

समुद्र का एक नाम रत्नाकर है जिसका अर्थ हुआ रत्नों का भंडार। मोती उस भंडार का एक रत्न है। ऐसी ऐसी बहुत सी अनोखी और क़ीमती चीज़ें समुद्रों में मिलती हैं।

२२

खेतीबाड़ी का साधारण परिचय

संसार के आरम्भ में मनुष्य लगभग दूसरे जानवरों की तरह जंगलों में रहता था। वह शिकार करके या जंगल के फल फूल इकट्ठे करके अपना पेट भरता था। संसार के पुराने इतिहास की खोज करने वालों का कहना है कि मनुष्य शिकारी जीवन के बाद चरवाहा बना और फिर धीरे धीरे और आगे बढ़कर उसने खेतीबाड़ी शुरू की। बहुत से लोगों का विचार है कि पेट की आग ने आदमी को खेती करने के लिए मजबूर किया।

एक लेखक का कहना है कि खेतीबाड़ी के विकास का सेहरा जंगली सुअरों के सिर है। मनुष्य ने देखा कि जंगली सुअर जिस जमीन को खोद कर चले जाते हैं, उसमें पौधे अधिक निकलते हैं। मनुष्य ने भी पहले पहल

अपने बीज या पौधे बोने के लिए ज़मीन को अच्छी तरह खोदा और जोता। पर यूनानियों का पुराना सिद्धान्त यह था कि मनुष्य ने पहले पहल जंगली झाड़ झंखाड़ की भरमार देख कर ज़मीन को ठीक रूप देने के लिए खोदा और फिर नए अँखुए फूटते देख कर उसे धीरे धीरे बोने और जोतने की सूझी।

जुताई के पुराने तरीके

हल की ईजाद का दावा बहुत सी जातियाँ कर सकती है। पर सभी जातियों में हल अनेक मंजिलें तय करके आया है। सिन्धु नदी के किनारे की सभ्यता (३२५० से २७५० ईसवी पूर्व तक) में इस बात के प्रमाण

मिलते हैं कि खेतीबाड़ी ने उस समय काफ़ी उन्नति कर ली थी।

वैदिक युग (२५०० से ५०० ई० पू० तक) में भी इस दिशा में बहुत उन्नति हुई थी। मिस्र के पिरामिडों पर बनी पत्थर की मूर्तियों में, जो चार हज़ार से लेकर सात हज़ार बरस तक पुरानी हैं, लकड़ी के ऐसे हल भी दिखाए गए हैं जिन्हें जानवर खींच रहे हैं।

मतलब यह है कि ज़मीन की जुताई के भाँति भाँति के यंत्र एक ऐसे नोकदार डंडे के ही बदलते हुए रूप हैं, जिसका काम मिट्टी खोदना था। शुरू में इस तरह काम आने वाले यंत्रों को मनुष्य अपने आप चलाता था। धीरे धीरे उसने ऐसे यंत्रों की खोज कर ली जिन्हें बैल या घोड़े घसीट

सकें। मशीन से भी यह काम लिया जा सकता है, यह बात मनुष्य को उन्नीसवीं सदी के बीच में आ कर सूझी और तब भाप के इंजनों से भी ज़मीन की जुताई होने लगी।

हमारे पुरखे अपने हाथ से हल चलाते थे। अब ऐसे बड़े बड़े इंजन बन चुके हैं जिनसे ज़मीन काटने का काम भी

लिया जा सकता है और जुताई, बुवाई, फसल काटने और नाज निकालने का भी। पुराने हल से लेकर नए इंजन तक खेतीबाड़ी का पूरा विकास देखा जा सकता है। इसका अर्थ यह नहीं कि नए तरीकों में कोई बुराई नहीं और नए तरीक़े हर जगह हर दशा में पुरानों से अच्छे ही पड़ते हैं।

सिंचाई

अच्छी उपज के लिए पूरा पूरा पानी ज़रूरी है। कोई पौधा पानी के बिना नहीं जी सकता। पानी के बिना पौधे की क्या दशा होती है, इसका अनुमान गमलों के उन पौधों को देख कर लगाया जा सकता है जिनकी देखभाल नहीं की जाती। सभी युगों में किसान के सामने यह समस्या रही कि वह पानी के मामले में प्रकृति की मनमानी पर किस तरह काबू पाए। कभी बाढ़ और कभी सूखा, इसका उपाय क्या है ?

भारत में भी खेतीबाड़ी की उन्नति में सबसे बड़ी रुकावट प्रकृति की मनमानी ही है। देश के किसी भाग में वर्षा अधिक होती है और

किसी में कम। और फिर बरसात के मौसम का भी कुछ ठीक नहीं है। कभी बारिश बिलकुल नहीं होती और कभी बहुत कम होती है। इस देश में हिमालय के कुछ पहाड़ी इलाकों, आसाम तथा पूर्वी और पच्छिमी घाटों के इलाकों को छोड़ कर और सब जगह फसल का होना न होना इस बात पर निर्भर है कि सिंचाई किसी न किसी प्रकार होती रहे।

न जाने कब से भारत के किसान कुओं, तालाबों और बाँधों के द्वारा वर्षा का पानी इकट्ठा करते रहे हैं। भारत में सिंचाई के साधन दूसरे सब देशों से अधिक हैं। पाँच करोड़ एकड़ से भी अधिक ज़मीन पर सिंचाई के इन साधनों से खेती की जाती है। संयुक्त राज्य अमरीका और पाकिस्तान में सिंचाई से उपज देने वाली जमीन से यह ढाई गुना अधिक है।

खेतीबाड़ी के सुधार की नई नई योजनाएँ, जैसे भाखरा, नंगल, हीराकुड, दामोदर घाटी आदि चल रही हैं। पर अभी इस देश में उपजाऊ धरती का आधे से कुछ कम भाग कुओं और तालाबों से ही सींचा जाता है। इसलिए हमारे देहातों के आर्थिक ढाँचे में कुओं और तालाबों का महत्व भुलाया नहीं जा सकता।

सिंचाई के साधन

सिंचाई के मुख्य साधन ये हैं: कुएँ, तालाब, पोखर, नाले और नहरें।

१. कुएँ: भारत की कुल सींची जाने जाने वाली ज़मीन का तीस प्रतिशत भाग (लगभग डेढ़ करोड़ एकड़) कुओं से सींचा जाता है। कुओं का पानी बहुत ही होशियारी से बरता जाता है। इस बात का ध्यान रखा

जाता है कि पानी एक बूँद भी बेकार न जाय, क्योंकि कुएँ से पानी निकालने का सारा खर्च किसान को उठाना पड़ता है।

२. तालाब और पोखर : सिंचाई का यह तरीका हमारे देश में सब से पुराना है।

३. नाले : सिंचाई में नालों का महत्त्व इतना अधिक नहीं है, पर अपने आसपास की ज़मीन के लिए ये काफ़ी उपयोगी होते हैं।

४. नहरें : सिंचाई का यह तरीक़ा भी पुराना है। दूसरे तरीक़ों से यह सस्ता भी है। हमारे देश में लगभग दो करोड़ एकड़ ज़मीन की सिंचाई नहरों से होती है।

नहरें प्रायः खेतों की सतह से ऊँची सतह पर बनाई जाती हैं, ताकि उनका पानी आसानी से खेतों में पहुँच जाए। पर कुओं का पानी नीचे से खींच कर ऊपर लाना पड़ता है।

कहीं कहीं नहरें भी नीची सतह पर होती हैं और उनका पानी ऊपर खींचना पड़ता है। पर इस तरह की सिंचाई बहुत महँगी पड़ती है, इसलिए इस प्रकार सिंचाई वहीं करनी चाहिए जहाँ की भूमि बहुत ही उपजाऊ हो। सिंचाई का पूरा लाभ उठाने के लिए यह आवश्यक है कि किसान अपनी उपज की क़ीमत और सिंचाई की लागत दोनों को ठीक ठीक समझे।

नीची सतह से पानी को ऊपर उठाने के लिए भाँति भाँति के साधन काम में लाए जाते हैं—जैसे मोट, रहट, चेन पम्प, ढेंकली, पम्प आदि इन में से पहले दो अधिक चालू हैं।

खाद :

सिंचाई का ठीक प्रबंध हो जाने के बाद खेतीबाड़ी में अगली बात

सोचने की यह है कि जमीन की उपजाऊ शक्ति किस तरह कायम रखी जाए। भारत के अधिकतर भागों में जमीन की उपजाऊ शक्ति काफी कम है, और इस बात का डर है कि बीजों की बढ़िया किस्में बोने से जो अपने लिए अधिक खूराक खींचते हैं, जमीन की यह शक्ति और घट जाएगी। इसलिए अच्छी फ़सल के लिए खाद बहुत जरूरी है। पौधों के लिए नाइट्रोजन एक बड़ी आवश्यक खूराक है और भारत की जमीन में इसकी अक्सर कमी रहती है। यह कमी खाद से पूरी की जाती है। इसलिए खाद की समस्या दूसरे शब्दों में नाइट्रोजन की कमी को पूरी करने की समस्या है।

इस देश में, जहाँ खेतीबाड़ी इतने पुराने समय से हो रही है, जमीन की उपजाऊ शक्ति अभी तक एक समस्या ही क्यों बनी है? इसका एक विशेष कारण है। इस देश का जलवायु सारे साल इतना गर्म रहता है कि उस गर्मी में हमारी धरती के जीवनदायी तत्व लगातार जलते रहते हैं। नाइट्रोजन उन तत्वों में से मुख्य है। इसलिए उसे किसी न किसी तरीक़े से जमीन में क़ायम रखना चाहिए। नहीं तो जमीन की उपजाऊ शक्ति दिन दिन कम होती जाएगी।

अब हमें यह देखना है कि वे खादें कौन सी हैं, जिनमें नाइट्रोजन और दूसरे जीवनदायी तत्व मौजूद हैं और जो सस्ती, सुलभ और लाभदायक भी हैं? वे क्रम से ये हैं:

१. गोबर और मल।

२. मिला कर बनाई हुई या कम्पोस्ट खाद।

३. खल।

४. हरी खाद।

५. व्यापारिक खाद।

१. गोबर और मल : गोबर और मल खाद के लिए सबसे अधिक काम की और सबसे अधिक लाभदायक चीजें हैं। मगर हिसाब लगाया गया है कि हमारे देश में लगभग दो तिहाई गोबर उपले और पाथियाँ बना कर जला दिया जाता है। तीसरा हिस्सा भी इस लापरवाही से रखा जाता है कि खाद के रूप में काम में आने से पहले वह बहुत से तत्व खो बैठता है।

मल की खाद की दशा तो और भी बुरी है। हमारे पड़ोसी देश चीन में तो मल और कम्पोस्ट खाद बहुत अधिक काम में लाई जाती है। पर हमारे देश का किसान उसे छूना भी पसन्द नहीं करता।

इस तरह गोबर के जलाए जाने और मल का उपयोग इतना कम होने के कारण हमारे देश में खाद की समस्या ने भयंकर रूप ले लिया है। यहाँ तो एक एकड़ जमीन के पीछे एक टन खाद भी मुश्किल से मिलती है। यह फ़सल की आजकल की जरूरत से बहुत ही कम है। इसलिए खाद के रूप में गोबर और मल का पूरा पूरा उपयोग होना आवश्यक है।

२. कम्पोस्ट खाद : पहले कहा जा चुका है कि गोबर जलाने से खाद की कमी हो जाती है। इस कमी को पूरा करने के लिए अब से कुछ समय पहले कूड़ा करकट और पत्तों को मिलाकर उससे खाद बनाने का तरीक़ा निकाला गया था। पर अभी इस काम में उतनी सफलता नहीं मिल सकी जितनी आशा की जाती थी। कम्पोस्ट खाद बढ़िया तो जरूर होती है, पर उसके लिए जरूरी सामान, मजदूर और पानी की कमी के कारण इसका अधिक प्रचार नहीं हो सका। इसका प्रचार बढ़ाना चाहिए।

३. खल : खल में भी नाइट्रोजन और खाद के दूसरे तत्व मौजूद हैं। पर आजकल इनका प्रयोग केवल उन्हीं फ़सलों के लिए होता है जो कटाई के बाद एकदम बिक सकें। खल महँगी भी होती है और आसानी से मिलती भी नहीं। इसलिए देहातों में इसका प्रचार कम है। जब तक खल बड़े पैमाने पर सस्ती नहीं बनाई जाती, तब तक किसान इसे नहीं अपना सकता।

४. हरी खाद : पुराने समय में मटर आदि बोने के बाद उन्हें उसी ज़मीन में काट कर हल चला दिया जाता था। पर खाद देने का यह उपाय अब काम में नहीं लाया जाता। पुराने तरीक़ों में तो आसपास के पेड़ों की शाखें, पत्ते और झाड़ झंखाड़ आदि सब काटकर खाद की तरह इस्तेमाल कर लिए जाते थे। दाने वाले बहुत से पौधों को खाद की तरह इस्तेमाल करके देखा गया है। इनमें से सनई, ढेंचा, नीलीपसेरा और गुवार अधिक चलते हैं। सनई तो लगभग हर जगह हरी खाद की तरह बरती जाती है।

हरी खाद से उपज ख़ासी बढ़ जाती है, यह बात अनुभव और खोज दोनों से साबित हो चुकी है। चावल, गन्ना और गेहूँ की फ़सलों पर इसका प्रयोग किया जा चुका है। इस बात के काफ़ी प्रमाण मिल गए हैं कि हरी खाद सबसे अच्छी और सस्ती रहती है, और इसे हर किसान आसानी से अपना सकता है।

५. व्यापारिक खादें : बाजार में ऐसी व्यापारिक खादें भी मिलती हैं, जो सरलता से काम में लाई जा सकती हैं। इनमें से कुछ ये हैं : अमोनियम सलफ़ेट, सोडियम नाइट्रेट, केल्शियम नाइट्रेट, हड्डी का चूरा, एम्पोफ़ास आदि। सुपर फ़ासफ़ेट तथा पोटाशियम सलफ़ेट आदि कुछ खादें ऐसी भी

हैं जो जमीन को फ़ास्फ़ोरस और पोटाश काफ़ी मात्रा में दे सकती हैं। अलग अलग फ़सलों को इनमें से अलग अलग तत्वों की ज़रूरत होती है। इसलिए इन खादों का उपयोग करने से पहले किसी जानने वाले से या उस जगह के सरकारी अधिकारी से ज़रूर सलाह कर लेनी चाहिए। ये खादें महँगी होती हैं, और इनका इस्तेमाल प्रायः क़ीमती फ़सलों में ही किया जा सकता है। पर सिंदरी के कारखाने में अब अमोनिया सल्फ़ेट बनने लगा है, इसलिए आशा है कि भविष्य में किसान को यह सस्ता और सुलभ होगा।
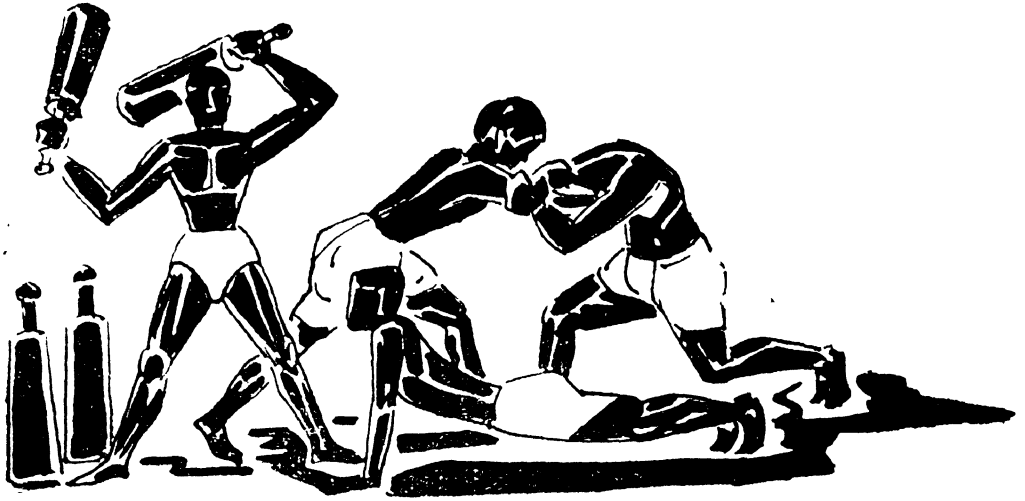
२३

स्वास्थ्य के मूल सिद्धान्त

प्रकृति ने मनुष्य के लिए हजारों अच्छी अच्छी चीजें पैदा की हैं, पर मनुष्य उनका आनन्द तभी ले सकता है, जब वह पूरी तरह स्वस्थ्य हो।

सब बातों को ध्यान में रखते हुए स्वास्थ्य के लिए भोजन एक बहुत ज़रूरी चीज़ है। हम रोज कितना और कैसा भोजन करें, इसका फ़ैसला करने के लिए पहले यह जानना चाहिए कि हमें भोजन की ज़रूरत क्यों है और शरीर में पहुँच कर भोजन क्या काम करता है ?

जब हम कुछ काम करते हैं, तो हमारे अंगों के हिलने से हमारे पुट्ठों के कोष्ठ अर्थात् भीतरी भाग टूट फूट जाते हैं। हम जितनी तेज़ी से काम

करते हैं, कोष्ठों की टूट फूट भी उतनी ही अधिक होती है। यदि हम शरीर से कोई मेहनत का काम न करें और चारपाई पर लेटे रहें, तब भी शरीर के भीतरी अंग काम करते रहेंगे और उनके पुट्ठों के कोष्ठ टूटते फूटते रहेंगे। दिमाग़ी काम करने से भी मस्तिष्क के पुट्ठों के कोष्ठ टूटते फूटते हैं। कोष्ठों की यह टूट फूट हमारे शरीर में जीवन भर जारी रहती है। इसलिए जिन्दा रहने और स्वस्थ रहने के लिए उन कोष्ठों की मरम्मत भी सदा जारी रहनी चाहिए। इसके सिवा नई उम्र में हमारा शरीर बढ़ता भी है। इसके लिए हमें नए पुट्ठों की ज़रूरत पड़ती है।

ज़िन्दा रहने के लिए और पुट्ठों को चलाने के लिए हमारे शरीर में गर्मी की भी ज़रूरत पड़ती है। यदि शरीर में गर्मी कम हो जाए, तो पुट्ठों की हिलने डुलने की शक्ति कम हो जाएगी। गर्मी यदि बढ़ जाए, तो पुट्ठों के कोष्ठों की टूट फूट भी अधिक होने लगेगी। इस सब के लिए ही मनुष्य को भोजन की ज़रूरत पड़ती है।

भोजन के सम्बन्ध में जो दूसरी बात जाननी ज़रूरी है, वह यह है कि भोजन हमारे शरीर की आवश्यकताओं के अनुकूल होना चाहिए। हमारे शरीर में अधिक भाग मांस, हड्डी और खून का है। इसलिए हमारा भोजन ऐसा होना चाहिए जो मांस, हड्डियाँ और खून बना सके।

डाक्टरों का कहना है कि मिला जुला भोजन अच्छा होता है। इसमें आटे और चावल के साथ साथ हरी तरकारियाँ, दालें, दूध और दूध से बनी चीज़ें, या दाल और दूध की जगह मांस, मछली, चिकनाई (घी, तेल आदि), ताज़े पके फल, चीनी, नमक आदि सब चीज़ें उचित मात्रा में ज़रूर रहनी चाहिए। तरकारियों में पत्ते वाली सब्ज़ियाँ ज़रूर हों।

दाल, दूध, और मांस मछली में प्रोटीन रहता है। प्रोटीन शरीर बढ़ाने में काम आता है। दूध में जो प्रोटीन रहता है, वह दालों के प्रोटीन से अच्छा होता है। मनुष्य का शरीर उसे आसानी से हज़म कर लेता है, जिससे शरीर जल्दी बढ़ता है। इसलिए गर्भवती स्त्रियों, बच्चों और कमज़ोरों के भोजन में दूध या उसकी जगह मांस मछली अधिक होनी चाहिए।

दूध में केलशियम यानी चूना भी बहुत होता है, जो हड्डियाँ बनाता है। हरी और पत्ते वाली तरकारियों में लोहा और दूसरी धातुएँ होती हैं, जो खून को ताकतवर बनाती हैं और कब्ज़ को भी रोकती हैं।

अनाज में निशास्ता (स्टार्च) रहता है, जो चिकनाई यानी घी तेल से मिल कर शरीर में गर्मी पैदा करता है। जो आदमी अधिक शारीरिक मेहनत करता है, उसे अधिक गर्मी की ज़रूरत होती है। इसलिए ऐसे लोगों को अनाज अधिक खाना चाहिए और उसके साथ थोड़ी चिकनाई भी। चीनी भी इसी काम में आती है। अगर ये चीज़ें अधिक खाई जाएं और शारीरिक मेहनत कम की जाए, तो शरीर में चरबी बढ़ जाती है और

मोटापन आ जाता। अगर मोटापा कम करना हो, तो ये चीज़ें कम खानी चाहिए।

चावल और गेहूँ में भी कुछ धातुएँ होती हैं और वे उनके छिलकों के ठीक नीचे रहती हैं। गेहूँ को कभी बारीक पीसना और छानना न चाहिए। यदि गेहूँ में धूल, मिट्टी, कंकर मिले हों, तो उसे पीसने से पहले साफ़ कर लेना चाहिए। अगर गेहूँ को धोकर और सुखाकर पीसा जाए, तो अधिक अच्छा होगा। चावल बिना पालिश किया हुआ खाना चाहिए और पकाते समय उसका माँड नहीं निकालना चाहिए। मिल के पालिश किए हुए चावलों से बेरी बेरी जैसी कई तरह की बीमारियाँ हो जाती हैं।

फलों में विटामिन और ग्लूकोज बहुत होता है। इनमें विटामिन शरीर के लिए बहुत ज़रूरी हैं। ये शरीर की रचना करते हैं। अगर प्रोटीन को शरीर बनाने का मसाला कहा जाए, तो विटामिन वे राज मेमार हैं जो उस मसाले से शरीर को बनाते हैं। ये कई तरह के होते हैं और सब के सब स्वास्थ्य के लिए ज़रूरी हैं। कई तरह के फल जैसे केले, संतरे नीबू, आम आदि खाने से सभी विटामिन ठीक ठीक मिल जाते हैं।

फल मौसम के अनुसार और पके होने चाहिए। तरकारियों और अनाज को पचने लायक बनाने के लिए पकाने की ज़रूरत पड़ती है। परन्तु ज्यादा पकाने से उनके पौष्टिक तत्व नष्ट हो जाते हैं और विटामिन भी
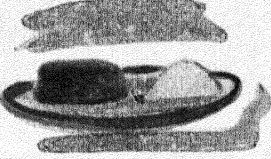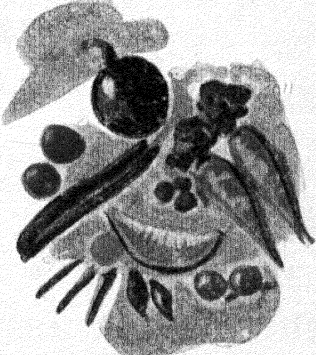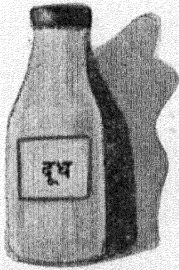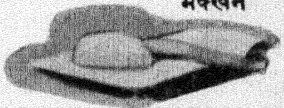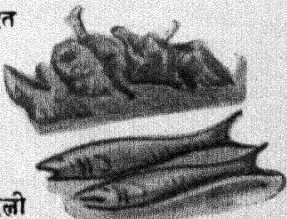
जल जाते हैं। इसलिए बहुत करारी या खर रोटी खाने की आदत अच्छी नहीं। पकाते समय ज्यादा मिर्च मसाले डालने से भी भोजन की ताक़त नष्ट हो जाती है।

स्वास्थ्य के लिए पानी भी बहुत जरूरी है। हमारे शरीर में तीन चौथाई भाग पानी है। यह औसत बना रहना चाहिए। खाना हज़म होने के बाद उसका लाभकारी भाग पानी में घुल कर ही खून में मिलता है। पानी शरीर की गन्दगी को भी बाहर निकालता है। पानी कम पिया जाए, तो कब्ज़ हो जाता है और पेशाब भी कम आता है। शरीर में खुश्की बढ़ जाती है। पेशाब गाढ़ा होने से गुर्दे और मसाने में पथरी पड़ जाने का डर रहता है। खून भी गाढ़ा पड़ जाता है और स्वास्थ्य बिगड़ने लगता है। पसीना कम आता है, इसलिए शरीर की गन्दगी बाहर नहीं निकल पाती। पाचन शक्ति भी कम हो जाती है। सिर में दर्द रहने लगता है और घबराहट सी मालूम होती है। इसलिए हमें काफ़ी पानी पीने की आदत डालनी चाहिए। पर बहुत अधिक पानी पीने या ज्यादा बर्फ़ मिला पानी पीने से भी पाचन शक्ति कम हो जाती है और भूख भी कम लगती है। भोजन करने के दो तीन घंटे के बाद काफ़ी पानी पी सकते हैं।

गर्मियों में अधिक पानी की जरूरत होती है, क्योंकि पसीने से काफ़ी पानी निकल जाता है। गर्मियों में अधिक पानी पीने से धूप और लू से भी बचाव रहता है।

पीने का पानी साफ़, बिना बू का और ताजा होना चाहिए। जहाँ नल न हो, वहाँ जिस कुएँ से पीने का पानी लिया जाता हो, उसे साफ़

हम रोज़ क्या खाएं ?

मांस न खाने वाले दूध दही अधिक खाएं।

रखना जरूरी है। उस पर नहाने, कपड़े धोने, जानवरों को पानी पिलाने या नहलाने पर रोक हो। गन्दे और मैले बरतन में कुएँ से पानी न निकाला जाए। कुएँ को कभी-कभी साफ़ भी करते रहना चाहिए। अगर इलाक़े में कोई छूत की बीमारी फैली हो, तो कुएँ की सफ़ाई का और अधिक ध्यान रखा जाए। बरसात का या नाली का पानी कुएँ में न जाने पाए। यदि कुआँ बहुत दिनों से बन्द हो, तो उसका पानी तब तक न पीना चाहिए, जब तक उसकी एक बार सफ़ाई न हो जाए।
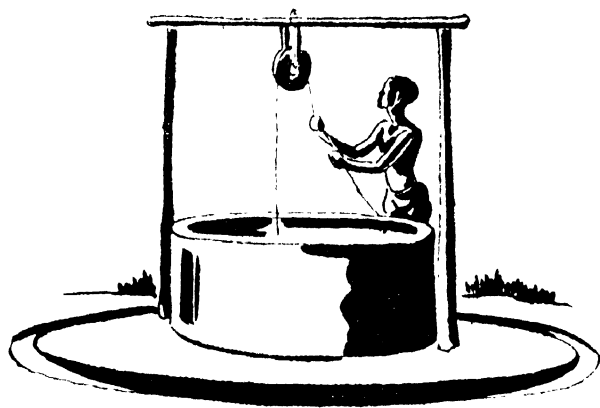
पानी शरीर को साफ़ करने के भी काम आता है। भारत गरम देश है। यहाँ पसीना अधिक निकलता है। अगर शरीर को रोज़ अच्छी तरह साफ़ न किया जाए, तो शरीर पर मैल जम जाता है। इससे रोओं के मुंह बन्द हो जाते हैं और शरीर की गन्दगी बाहर नहीं निकल पाती। शरीर में खुजली भी होने लगती है। रोज़ कम से कम एक बार ज़रूर नहाना चाहिए। गर्मियों में दो बार नहाना भी अच्छा होता है। जाड़ों में अगर पानी बहुत ठंडा हो, तो उसे थोड़ा गरम कर लिया जाए। पर अधिक गरम पानी में नहाना हानि पहुँचाता है। नहाते समय शरीर को हथेलियों से खूब रगड़ना चाहिए जिससे मैल छूट जाए। साबुन अधिक न लगाना चाहिए। इससे शरीर में रूखापन आ जाता है। जाड़ों में शरीर पर कभी कभी तेल मलना

लाभदायी धोता है। दांत, नाक, गला, बाल, बगलें, और जाँघें खास तौर

से साफ़ रखनी चाहिए। नहाने के बाद शरीर को तौलिये से खूब रगड़ रगड़ कर पोंछना चाहिए। रगड़ कर पोंछने से खून की चाल तेज़ हो जाती है और थोड़ी गरमी जान पड़ने लगती है जो अच्छी लगती है। कपड़े साफ़ और धुले हुए पहनने चाहिए। नहा कर मैले और गन्दे कपड़े पहनने से नहाना और न नहाना बराबर हो जाता है। जो कपड़े शरीर से लगे रहते हैं जैसे बनियान या जाँघिया वे सफ़ेद रंग के होने चाहिएँ। उन्हें धोते समय उसमें नील भी न देना चाहिए, क्योंकि रंग पसीने में मिल कर शरीर की चमड़ी को ख़राब कर देता है।

सांस लेने के लिए ताजा और खुले स्थान की हवा अच्छी होती है। गन्दी और बन्द हवा में साँस लेने से स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। हम जो भोजन करते हैं, वह पेट में पचता है। पचते समय एक गैस जिसे कार्बन डाई आक्साइड कहते हैं, पैदा होती रहती है। यह खून में मिलकर खून को गन्दा कर देती है। यह गैस जहरीली और जिन्दगी के लिए ख़तरनाक होती है। इसे निकालते रहने का काम हमारे फेफड़े करते हैं। कार्बन डाई आक्साइड से लदा हुआ खून जब फेफ़ड़ों में से जाता है, तो वह खून बाहर निकलने वाली साँस की हवा को कार्बन डाई आक्साइड दे देता है और बाहर की अच्छी ताजा गैस आक्सीजन अन्दर ले लेता है। इसीलिए साँस से जो हवा हम बाहर निकालते हैं, उसमें कार्बन डाई

ग्राक्साइड अधिक होता है। अगर रहने के कमरे में ताजा हवा हर समय न आती हो, तो उसमें बराबर साँस लेने से ग्राक्सीजन कम हो जाता है और कार्बन डाई ग्राक्साइड बढ़ जाता है और यह हवा साँस लेने के लिए हानिकर हो जाती है। इसीलिए रहने के कमरे में दरवाज़े और खिड़कियाँ जहाँ तक हो सके, खुली रहनी चाहिए जिससे ताज़ा हवा आती रहे।

साँस हमेशा नाक से लेनी चाहिए। नाक से साँस लेने से नाक के बाल हवा की धूल को रोक लेते हैं। इस तरह हवा छन कर भीतर पहुँचती है। इसके सिवा उसे लम्बे और पेचदार रास्ते से होकर जाना पड़ता है, इसलिए कुछ देरी लगती है और उसकी गर्मी शरीर की गर्मी के अनुकूल हो जाती है। यदि साँस मुंह से ली जाए तो ये सब बातें नहीं होतीं। यही कारण है कि मुँह से साँस लेने वाले को गले और छाती की बीमारियाँ अधिक होती हैं, जैसे नज़ला, ज़ुकाम, खांसी और गला खराब होना।

हर रोज सैर करना और कसरत करना बहुत ज़रूरी है। काम करने से पुट्ठों में जो टूट फूट होती है और फोक पैदा हो जाता है, उसका अधिक भाग टट्टी, पेशाब, पसीना और साँस के द्वारा बाहर निकल जाता है। परन्तु थोड़ा भाग पुट्ठों में रह जाता है। इसको निकालने के लिए कसरत करना आवश्यक है।

कसरत करने से तन्दुरुस्ती ठीक रहती है और शरीर मज़बूत होता है। कसरत करते समय जब हम अपने अंगों को हिलाते हैं और पुट्ठों को पूरी ताक़त से सिकोड़ते हैं, तब गन्दा खून और फोक उनसे बाहर निकल जाता है। फिर जब हम उन्हें ढीला करते हैं, तब ताजा खून भीतर आ जाता है। कई बार इसी तरह करने से गन्दा खून और फोक जमा नहीं

होने पाता। ताजा खून मिलने से पुट्ठे मजबूत होते हैं और नए पुट्ठे बनते हैं। कसरत खुली जगह और ताजा हवा में करनी चाहिए। कसरत करने से भूख भी बढ़ती है और कब्ज भी दूर होता है। स्त्रियों और बच्चों को भी कसरत करनी चाहिए। जो लोग किसी कारण से कसरत न कर सकते हों, उन्हें खुली हवा में सैर करनी चाहिए। सैर करते समय जरा तेज मलना चाहिए। टहलते समय बीच बीच में गहरी साँस लेनी चाहिए। इससे फेफड़ों की कसरत हो जाती है और वे साफ़ हो जाते हैं।

काम करने से थकान आती है। इस थकान को दूर करने के लिए हमें आराम और नींद की ज़रूरत होती है। यदि हम आराम नहीं करते, तो थकान बढ़ती जाती है और अन्त में इतनी अधिक हो जाती है कि पुट्ठे जवाब दे देते हैं। सोने और आराम करने से पुट्ठों की मरम्मत होती है और नए पुट्ठे बनते हैं।

जब हम काम करते हैं तब हमारे खून का अधिक भाग हमारे हाथ पैरों में रहता है और पेट में कम जाता है। लेकिन जब हम आराम करते हैं, तब इसका उलटा होता है। पेट और आँतों में खून की मात्रा बढ़ जाती है। इससे भोजन के हज़म होने और खून में मिल जाने में बहुत मदद मिलती है। खाना खाने के बाद थोड़ी देर आराम करना बहुत लाभदायक होता है। यदि हमें कभी जल्दी हो, तो अच्छा यह होगा कि हम पेट भर भोजन न करें।

आराम करने का अर्थ केवल हाथ पैर ढीले करके लेट जाना नहीं। हमें अपने दिमाग़ को भी आराम देना चाहिए। यदि हम लेटे लेटे परेशानी

में डालने वाली बातें सोचते रहें, तो इस तरह लेटने से आराम नहीं मिलता, बल्कि थकान बढ़ जाती है। आराम करने और सोने का स्थान अलग और शान्तिमय हो। बिस्तर मौसम के अनुकूल और कमरा हवादार होना चाहिए।

कपड़े केवल बाहरी बनाव सिंगार की चीज नहीं होते। वे सर्दी गर्मी से हमारे शरीर को बचाते हैं। मनुष्य के शरीर की खाल दूसरे जानवरों की खालों से पतली होती है। उस पर रोएं भी कम और छोटे होते हैं। इसलिए उस पर गर्मी सर्दी का प्रभाव अधिक पड़ता है। उनसे बचने के लिए हमें कपड़ों की जरूरत होती है।

गर्मियों में ठंडे, धुले और हलके कपड़े होने चाहिएं जिससे शरीर पर ताजा हवा लगती रहे। धूप में चलते समय सिर को ढाँकना बहुत जरूरी है। तेज धूप से आँखों को भी बचाना चाहिए।

जाड़ों में कपड़े गर्म होने चाहिएं। जरूरत से ज्यादा कपड़े पहनना हानिकारक है। अक्सर लोग जाड़े से बचने के वहम में बहुत अधिक कपड़े पहन लेते हैं। एक तो उन कपड़ों का बोझ इतना हो जाता है कि चलने फिरने और काम करने में रुकावट होती है, दूसरे स्वास्थ्य पर भी बुरा असर पड़ता है।

बच्चों को कपड़े पहनाने में लोग अक्सर भूल करते हैं। जाड़े से बचाने के लिए उनकी छाती पर तो बहुत अधिक कपड़े लाद दिए जाते हैं, पर कमर से नीचे टाँगें नंगी रहती हैं। ऐसा करना हानिकारक है। सर्दी अधिकतर पैरों से चढ़ती है। जब पैर ठंडे होते हैं, तो बेचैनी मालूम होती है। यहाँ तक कि सो भी नहीं पाते। इसलिए बहुत जाड़ा हो, तो टाँगों

को भी ढक कर रखना चाहिए।

कपड़ों का हमारे स्वभाव पर भी प्रभाव पड़ता है। साफ़ कपड़े पहनने से सफ़ाई की आदत पड़ती है और बराबर सफ़ाई का ध्यान रहता है। मैले कुचैले कपड़े पहनने से गन्दा रहने की आदत पड़ जाती है।

चलते समय शरीर का पूरा बोझ पैरों पर पड़ता है, इसलिए पैरों का मज़बूत होना ज़रूरी है। हम प्रायः पैरों की ओर ध्यान ही नहीं देते। पैरों में तेल की मालिश करनी चाहिए, उनको साफ़ रखना चाहिए और जूते पहनने चाहिए। अधिक गरम या अधिक ठंडे फ़र्श पर नंगे पैर फिरना हानि पहुँचाता है। जूता खुला हुआ और आराम देने वाला हो। तंग जूता पहनने से पैरों की बनावट बिगड़ जाती है और उंगलियों में घट्टे पड़ जाते हैं जो चलने में कष्ट देते हैं।

खाने, पीने, सोने, काम करने और सब बातों में बीच की राह पर चलना अच्छा होता है। काम उत्साह के साथ करना चाहिए और उसमें आनन्द लेना चाहिए। किसी काम से जी बहुत थक या ऊब न जाए, इसलिए बीच बीच में काम को बन्द करके या बदल कर मनोरंजन के लिए समय देना और सदा प्रसन्न चित्त रहना स्वास्थ्य के लिए बहुत हितकर है। बड़े बड़े विद्वानों और डाक्टरों की राय है कि हँसने से बढ़कर और कोई ताक़त की दवा नहीं।
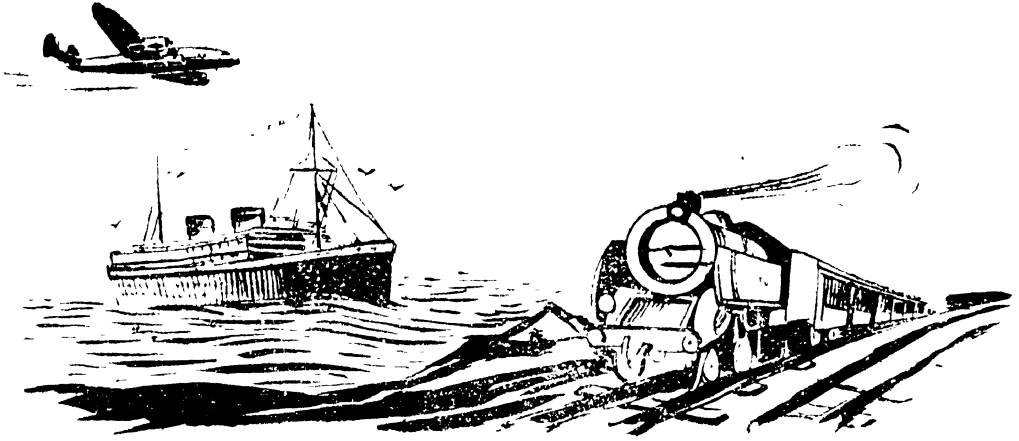
२४

बड़े बड़े आविष्कार

विज्ञान ने हमारे जीवन का ढाँचा बदल दिया है। अँधेरे में उजाला करने के लिए बिजली, एक कोने से दूसरे कोने तक ख़बर भेजने के लिए तार और बेतार के तार विज्ञान ही की देन हैं। मनुष्य ने विज्ञान की सहायता से नदियों को बाँधकर नहरें निकालीं, ऊँचे ऊँचे पहाड़ों को काटकर सुरंगे बनाईं और अब तो बनावटी बादलों से पानी भी बरसा लेता है। सिनेमा, रेडियो और ग्रामोफ़ोन, टेलीफोन, डाक, तार, मोटर, रेल और जहाज़—सबने मिल कर समय और दूरी की कठिनाइयाँ दूर कर दी हैं।

१—रेलगाड़ी

विज्ञान की उन्नति के साथ साथ मनुष्य ने सीखा कि भाप, पेट्रोल ग्रौर बिजली में बहुत बड़ी शक्ति छिपी है। भाप में छिपी शक्ति का ग्रनुभव सबसे पहले जेम्स वाट ने किया। जेम्स वाट ग्रंग्रेज़ थे। एक दिन वह ग्रपने रसोईघर में बैठे थे। चाय के लिए पानी उबाला जा रहा था। पानी की भाप से केटली का ढक्कन बार बार उठ रहा था। भाप की इसी शक्ति से काम लेकर वाट ने कई पम्प ग्रौर इंजन बनाए।

भाप से लोहे की पटरियों पर रेलगाड़ी चलाने का काम यूरोप में सबसे पहले जार्ज स्टीफेन्सन ने किया। स्टीफेन्सन कोयले की खानों में काम करते थे। उन्होंने देखा कि कोयला ढोने वाली गाड़ी लोहे की पटरियों पर

जार्ज स्टीफेंसन का पहला इंजन
(१८२५ ई०)
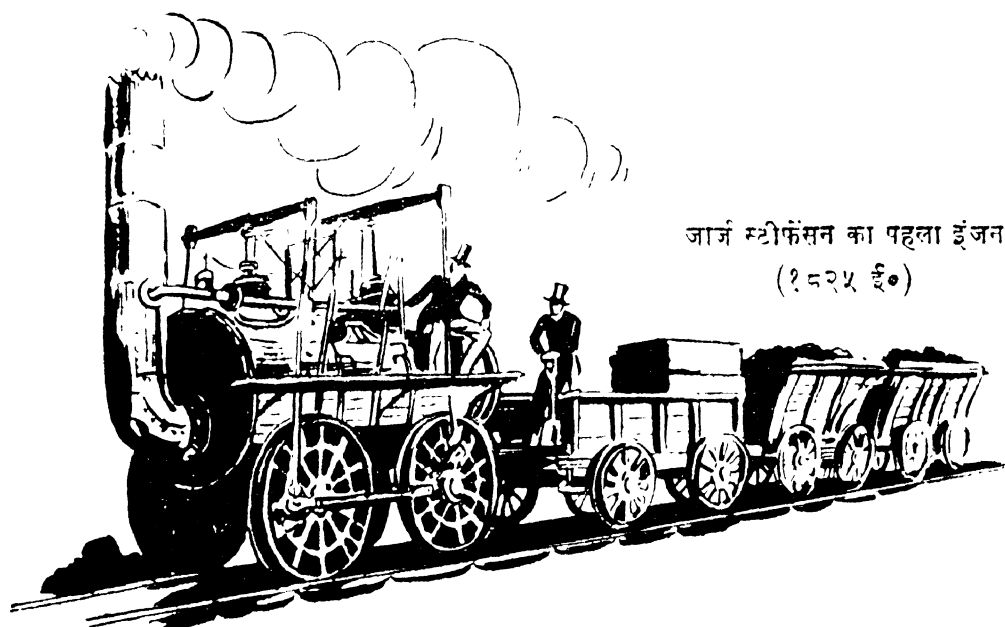
ग्रधिक तेज़ी से चलती है। इसी सूझ पर उन्होंने एक रेलगाड़ी बनाई। यह गाड़ी घंटे में बारह मील की चाल से चलती थी। उस समय के लोग

इस धीमी चाल से चलने वाली गाड़ी में भी बैठते हुए डरते थे।

१८४१ का इंजन

१८६० का अमरीकन इंजन जिसमें लकड़ी जलती थी।
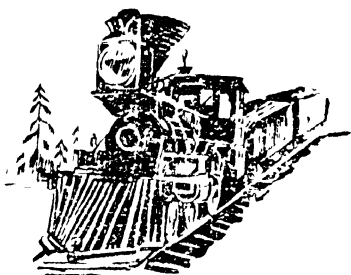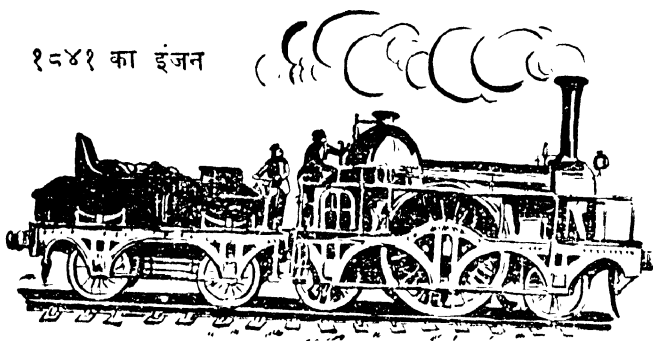
धीरे धीरे इंजन और गाड़ी में सुधार होता गया। इसी का फल है कि आज एक इंजन बहुत लम्बी गाड़ी को कुछ घंटों में सैकड़ों मील ले जाता है। गाड़ियों में खाने पीने, पढ़ने सोने और सर्दी गर्मी से बचने के सब सुभीते होते हैं, और गाड़ियाँ इस तरह दौड़ती हैं कि मुसाफ़िर को यह मालूम भी नहीं होता कि वह साठ सत्तर मील प्रति घंटे की चाल से जंगलों और नदियों को पार करता दौड़ा चला जा रहा है।

कुछ देशों में गाड़ियाँ धरती के नीचे भी चलती हैं। लंदन शहर में धरती के नीचे ही नीचे रेलों का जाल सा बिछा हुआ है। अमरीका में हडसन नदी के नीचे एक सुरंग बनाकर उसमें से रेल चलाई गई है।

भाप से रेलगाड़ी किस तरह चलती है? रेलगाड़ी को खींचने का

काम इंजन करता है, और इंजन चलता है कोयले और पानी के सहारे। कोयला जलाने के लिए इंजन में ही एक भट्टी होती है। भट्टी के साथ के हिस्से में पानी रहता है। गरम धुआँ छोटी छोटी नालियों से ले जाकर पानी में से गुज़ारा जाता है। इस तरह पानी उबल उबल कर भाप बनने लगता है। इसी भाप को दबाकर उसमें शक्ति पैदा की जाती है।

इंजन को चलाने के लिए उसके पहियों पर लोहे की भारी सलाखें लगी रहती हैं। यह सलाखें भाप की शक्ति से पहियों को आगे चलने पर मजबूर करती हैं। भाप का दबाव घटा बढ़ा कर गाड़ी की चाल घटाई-बढ़ाई जाती है।

लोहे की पटरियों पर चलने वाली गाड़ियों को कुछ कम ताक़त की ज़रूरत होती है। पटरियों की चौड़ाई देश देश में अलग अलग है, पर अधिकतर बड़ी लाइन साढ़े पाँच फुट चौड़ी होती है और छोटी लाइन सवा तीन फुट। टेढ़े मेढ़े रास्तों पर से गुज़रने के लिए छोटी लाइन अच्छी रहती है। पहाड़ों पर धरती बराबर नहीं होती। ऐसे स्थानों पर छोटी लाइन पर ही गाड़ियाँ चलती हैं। कुछ स्थान ऐसे भी हैं जहाँ लोहे के मोटे मोटे तार लटका कर उन पर रेल की पटरियाँ बिछा दी गई हैं और उन पटरियों पर रेलगाड़ियाँ चलती हैं।

आजकल भाप के अलावा बिजली, डीज़ल तेल और पेट्रोल से भी इंजन चलने लगे हैं। बिजली से चलने वाली रेलों में बिजली या तो बाहर से तारों के ज़रिए ली जाती है, या इंजन के अन्दर तेल से पैदा की जाती है।

रेलगाड़ियां अक्सर सत्तर अस्सी मील प्रति घंटे की चाल से चलती

है, पर कुछ गाड़ियों की चाल सौ मील प्रति घंटे से भी ऊपर पहुँच चुकी
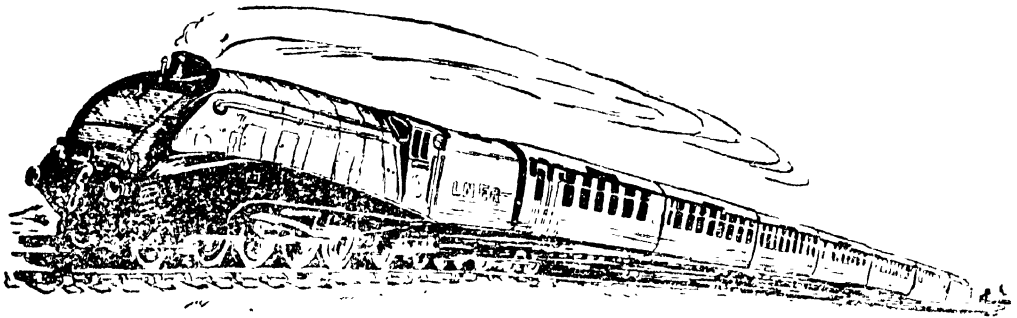
१०७ मील प्रति घंटा चलने वाली रेल

है। भाप से चलने वाली एक गाड़ी एक सौ छब्बीस मील की चाल से दौड़ चुकी है। डीज़ल तेल से चलने वाली गाड़ियाँ १३३ मील प्रति घंटे की चाल तक पहुँच गई है। जर्मनी में एक ख़ास तरह के पंखों की सहायता से चलने वाली गाड़ी लगभग १४३ मील प्रति घंटे की चाल से चल चुकी है।

संसार की सब से लम्बी रेलवे लाइन सोवियत रूस में है। यह मास्को से ब्लाडीवोस्टक तक जाती है। इसकी लम्बाई ६,००० मील है। गाड़ी को एक सिरे से दूसरे सिरे तक पहुँचने में ९ दिन लगते हैं। अमरीका में ३,००० मील तक जाने वाली ऐसी गाड़ियाँ हैं जिनमें खाने पीने, सोने, काम करने और मनोरंजन वगैरह के सब साधन मिलते हैं। स्विटज़रलैंड और दक्खिनी अमरीका में पहाड़ों पर चलने वाली कुछ गाड़ियाँ समुद्र तल से १६,००० फुट तक की ऊँचाई पर चलती हैं, जहाँ साँस लेने के लिए आक्सीजन गैस का इन्तज़ाम करना पड़ता है। भारत में भी रेलगाड़ियाँ लगभग साढ़े सात हज़ार फुट की ऊँचाई तक पहुँच चुकी हैं।

इस तरह रेलगाड़ियों की सहायता से हमारे लिए दूर दूर के स्थानों तक आना जाना बहुत आसान हो गया है।

२—मोटर

रेलगाड़ी हर जगह नहीं जा सकती। बहुत से स्थानों तक पहुँचने के लिए मोटर एक अच्छी सवारी है। मुसाफिरों को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने के अलावा मोटरों, बसों और ट्रकों से और भी बहुत से काम लिए जाते हैं। ट्रकों में भर कर सामान ढोया जाता है। मोटरों से हमारे गाँवों में चलते फिरते सिनेमा, लायब्रेरियाँ और दवाखाने आदि पहुँच गए हैं। लड़ाई के दिनों में मोटरों से तरह तरह का सामान लाने ले जाने का काम लिया जाता है, अकाल और बाढ़ जैसे संकटों में इनकी सहायता से पीड़ितों को भोजन और कपड़े पहुँचाए जाते हैं, और सुख शान्ति के दिनों में मोटरें मनोरंजन का अच्छा साधन हैं।
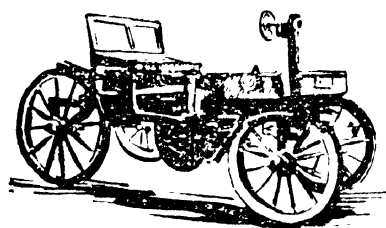
१८७५ की मोटर

१९०५ की मोटर

शुरू शुरू में मोटरें भाप से चलती थीं। उनके पहिये लकड़ी या लोहे के होते थे। वे शकल सूरत में भी भद्दी थीं। गैस से चलने वाली गाड़ी, जिसे हम अब मोटरकार कहते हैं, अब से कोई ७० बरस पहले बनी। ऐसी गाड़ी सबसे पहले गोटलिब डेमलर नामक एक जर्मन ने बनाई थी।
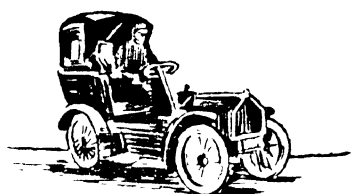
सन् १९१४ की पहली बड़ी लड़ाई तक मोटरों में लकड़ी या लोहे के पहिए होते थे। रबड़ के पहियों का चलन इस लड़ाई के बाद शुरू हुआ।

आजकल मोटर पेट्रोल से चलती है। मोटर के इंजन में पेट्रोल हवा के साथ मिलाकर उसमें बिजली की चिनगारी से आग लगा दी जाती है।

इससे गैस पैदा होती है। यह गैस अधिक जगह घेरना चाहती है, लेकिन अधिक जगह न मिलने के कारण उसे दबना पड़ता है। इस दबाव से उसमें शक्ति पैदा होती है। मोटर इसी शक्ति से चलती है।

ड्राइवर की सीट के ठीक आगे एक गोल पहिया सा लगा होता है। इसे 'स्टियरिंग व्हील' कहते हैं। इसकी सहायता से गाड़ी मोड़ी जाती है। ड्राइवर के पैरों के पास कुछ पुरज़े होते हैं जिन से गाड़ी तेज़ करने या रोकने वग़ैरह का काम लिया जाता है। मोटरों में कुछ ऐसी घड़ियाँ भी लगी होती हैं जिनसे गाड़ी की चाल और गाड़ी में ख़र्च होने वाले पेट्रोल की मात्रा वग़ैरह का पता चलता रहता है। एक घड़ी से यह पता लगता है कि गाड़ी जब से बनी, तब से आज तक कितने मील चल चुकी है।

समय के साथ साथ मोटरें और बसें भी रंग रूप बदलती रहती हैं। हर साल सुन्दर से सुन्दर गाड़ियाँ कारखानों से निकलती हैं जिससे हमारी यात्रा बराबर सुखद और सुगम होती जा रही है।
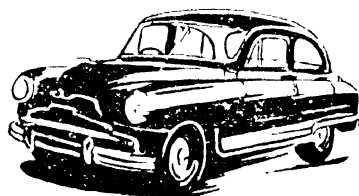
३—पानी के जहाज़

नाव और जहाजों में बैठकर नदियों और समुद्रों की यात्रा करना कोई नई बात नहीं है। एक देश से दूसरे देश

पहुँचने में पानी के जहाज़ बहुत समय से काम में आते रहे हैं। पहले जहाज़ कुछ छोटे होते थे। उनमें खाने पीने की चीज़ें और दूसरा सामान अधिक नहीं

भरा जा सकता था। रास्ते में समय भी बहुत लगता था। अब पहले से समय कम लगता है और यात्रियों के लिए सुविधाएँ भी अधिक हैं। इन जहाजों का समय भी निश्चित होता है। नए ढंग के जहाजों में लायब्रेरी, अस्पताल और सिनेमा आदि भी होते हैं। कुछ जहाजों की बनावट ऐसी है कि उन पर मौसम के बदलने का असर नहीं होता। संकट के समय मुसाफ़िरों की जान बचाने के लिए जहाजों में नावें भी होती हैं।
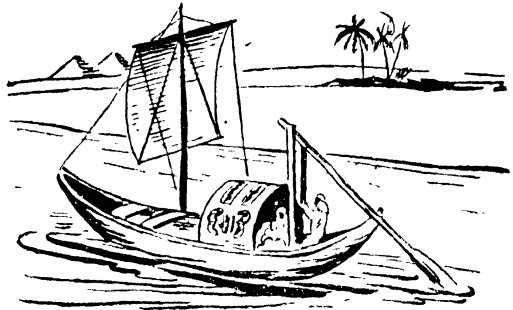
पानी के जहाज़ पहले अधिकतर लकड़ी के होते थे और हवा के ज़ोर से चलते थे।
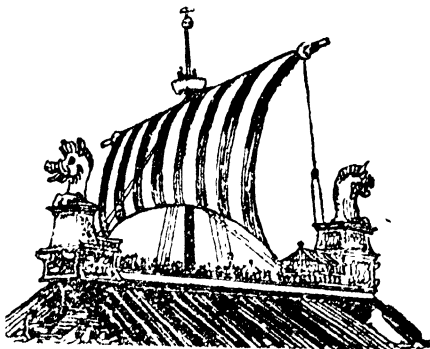
दो हज़ार साल पहले हवा से चलने वाला रोमन जहाज़

अब वे लोहे के होते हैं और भाप से चलते हैं। भाप की सहायता से बहुत बड़े बड़े पंखे पानी को पीछे फेंककर जहाज को आगे धकेलते हैं। ये पंखे बहुत भारी होते हैं। कुछ जहाजों में ये पंखे डीज़ल तेल या बिजली से भी चलते हैं।

पानी के जहाज कई तरह के होते हैं। कुछ केवल मुसाफिरों के लिए
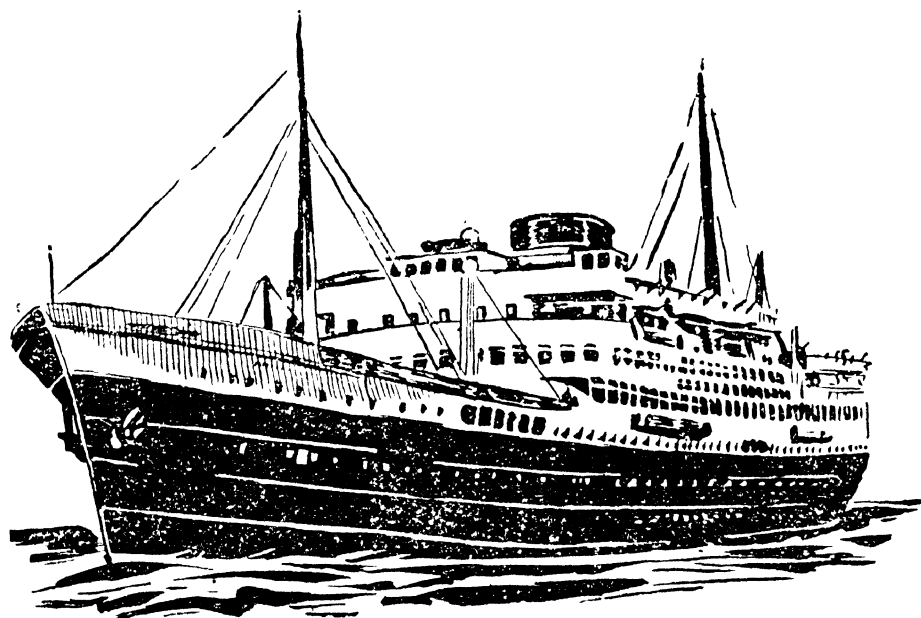
होते हैं, कुछ सामान ढोने के लिए और कुछ दोनों कामों के लिए। सामान ढोने वाले जहाज हज़ारों मन कोयला, लोहा, अनाज, फल वगैरह दुनिया के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँचा देते हैं। एक तरह के जहाज 'टैंकर्स' कहलाते हैं। इनमें हज़ारों गैलन पेट्रोल और दूसरे रासायनिक पदार्थ एक देश से दूसरे देश जाते हैं। कुछ जहाज दूसरे बड़े जहाजों को पानी में खींचते हैं। समुद्र में जमी हुई बरफ़ तोड़ने और टेलीफ़ोन के तार लगाने के लिए विशेष प्रकार के जहाज होते हैं।
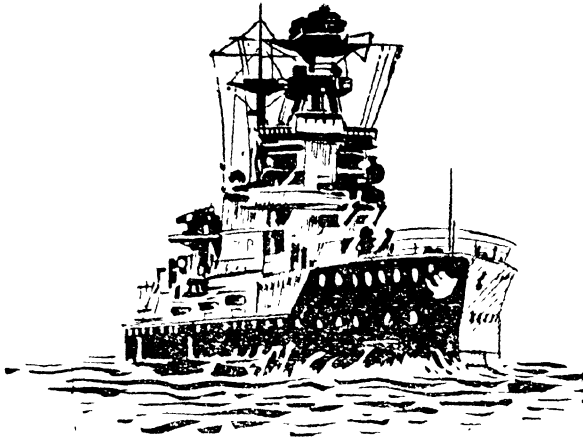
लड़ाई में भी कई तरह के जहाज़ काम में आते हैं। उनमें से कुछ जहाज़ इतने बड़े होते हैं कि उन पर हवाई जहाज़ों के उड़ने और उतरने के लिए अड्डे भी बने होते हैं। कुछ जहाजों पर गोला फेंकने वाली तोपें रहती हैं। दुश्मन के जहाजों को चुपचाप नीचे से सुरंग लगाकर डुबा देने के लिए पानी के अन्दर चलने वाली पनडुब्बियाँ भी होती हैं।

इस समय संसार के सबसे बड़े जहाज़ 'क्वीन एलिजाबेथ' और 'क्वीन मेरी' हैं। इन दोनों का वज़न अस्सी अस्सी हज़ार टन से भी अधिक है। जहाज़ का वज़न जानने के लिए यह देख लिया जाता है कि जहाज़ समुद्र में कितने पानी की जगह घेरता है। इस पानी के वज़न के बराबर ही जहाज़ का वज़न होता है। क्वीन एलिजाबेथ ९७७ फुट लम्बा और ११८ फुट चौड़ा है। इसमें १६ इंजन ४ पंखों को चलाते हैं। हर पंखे का वज़न ३२ टन है। इस जहाज़ में दो हज़ार मुसाफ़िरों और लगभग बारह सौ कर्मचारियों के लिए जगह है। इस जहाज़ पर दूसरी सुविधाओं के अलावा डाकख़ाना, बैंक और दूकानें भी हैं।

पानी के जहाज़ों ने हमें समुद्र के अनेक छोटे बड़े टापुओं तक पहुँचाने में बड़ी सहायता की है। नए देशों की खोज में भी उन्होंने सदा हाथ बँटाया है। कोलम्बस ने पानी के जहाज़ में बैठकर ही अमरीका की खोज की थी। इस तरह संसार के देशों को एक दूसरे के पास लाने में पानी के जहाज़ों ने बहुत बड़ा भाग लिया है।

४—हवाई जहाज़

आदमी सदा से चिड़ियों की तरह हवा में उड़ने का सपना देखता आया है। हर देश और हर जाति में ऐसी कहानियाँ
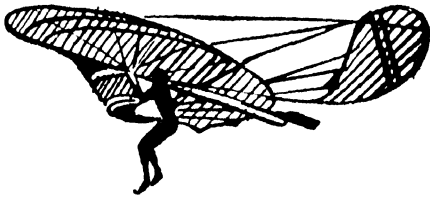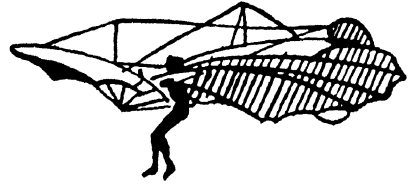
हैं जिनमें किसी न किसी रूप में उड़ने वाले मनुष्यों या उड़न खटोलों का ज़िक्र आता है। हमारे देश में भी रामायण और दूसरी पुस्तकों में ऐसे प्रसंगों की कमी नहीं है। ये सब कहानियाँ कहाँ तक सच्ची हैं, यह कहना बहुत कठिन है, पर यह बात निश्चय है कि अबसे कोई ढाई सौ साल पहले बैलूनों या गुब्बारों की सहायता से हवा में उड़ने की कोशिश की गई। शुरू में इन गुब्बारों में गरम हवा भरी गई थी, पर यह भारी होती थी। इसलिए बाद में हाइड्रोजन और हिलियम नाम की हलकी गैसें भरी जाने लगीं। गैस के प्रयोग से एक जगह से दूसरी
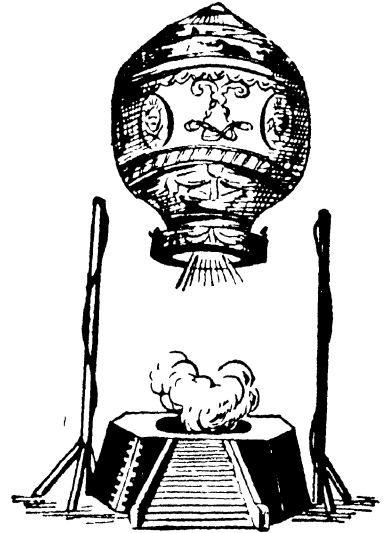
जगह जाने के लिए जेपेलिन भी बनाए गए जो मशीनों की सहायता से चलते थे। लेकिन इनमें आग लग जाने का भय रहता था।

अमरीका के दो निवासी जो भाई भाई थे, आज से कोई ५० वर्ष पहले हवाई जहाज़ में बैठ कर उड़े। ये राइट भाइयों के नाम से प्रसिद्ध हैं।

उस समय से लेकर आज तक विज्ञान दिन पर दिन उन्नति कर रहा है और एक से एक तेज़ उड़ने वाले हवाई जहाज़ बनते जा रहे हैं। आज हमारे
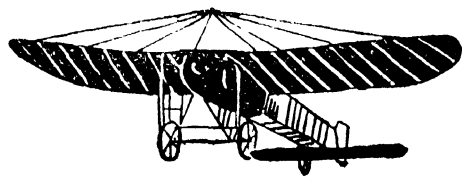
१९०९ का हवाई जहाज़
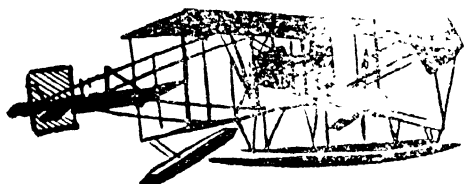
पानी पर उतरने वाला पहला हवाई जहाज़

पास जो हवाई जहाज़ हैं, वे कुछ घंटों में ही हमें सैकड़ों मील ले जाते हैं। विज्ञान की इस खोज ने हमारे जीवन पर गहरा प्रभाव डाला है। अब संसार के सब देश एक दूसरे के बहुत पास आ गए हैं। दुनिया के सब देश एक दूसरे की ज़रूरतें पूरी करने लगे हैं और उनकी आपस की जानकारी भी बढ़ गई है।
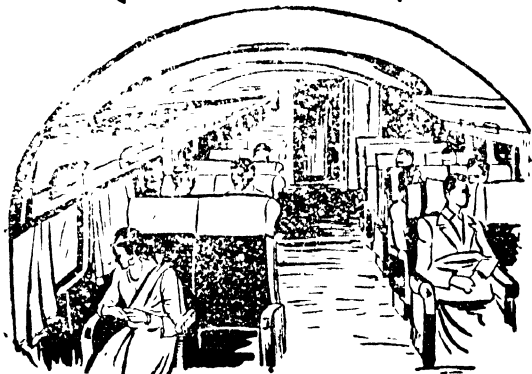
हवाई जहाज़ के भीतर की झाँकी

ऐसे ऐसे हवाई जहाज़ भी बनाए गए हैं जो हवा और पानी, दोनों में आसानी के साथ चल सकते हैं। लड़ाई के दिनों में कई तरह के नए हवाई जहाज़ बनाए गए। यह जहाज़ शत्रु देशों पर बम गिराने, बड़ी बड़ी मज़बूत छतरियों की सहायता से फौज उतारने और लड़ाई का सामान लाने ले जाने में बहुत उपयोगी सिद्ध हुए। इन्हीं की सहायता से बाढ़ वाले स्थानों में भोजन का सामान पहुँचाया जाता है, टिड्डी दल का सामना किया जाता है और जंगल की आग बुझाई जाती है। आजकल हवाई जहाज़ डाक लाने ले जाने का काम भी करते हैं।

आखिर हवाई जहाज़ है क्या? हवाई जहाज़ का ढाँचा और उसका

इंजन दोनों ही उसे उड़ने में सहायता देते हैं। उसका ढाँचा और पंख इस तरह के बनाए जाते हैं कि हवा में दौड़ते समय उसे ऊपर जाने की शक्ति अपने आप मिले। जितनी तेज़ी से वह दौड़ेगा, उतना ही ऊपर जाने का ज़ोर उसे मिल पाएगा। जिस तरह नाव आगे बढ़ाने के लिए हम पानी को पीछे फेंकते हैं, उसी तरह हवाई जहाज़ अपने पंखों से हवा को पीछे फेंकता है। ये पंखे मशीनों और पेट्रोल की सहायता से बहुत ही तेज़ी से चलाए जाते हैं। हवाई जहाज़ को उड़ने और उतरने में भी इनसे सहारा मिलता है। हवाई जहाज़ अपनी पूंछ से दिशा बदलता है। हवाई जहाज़ को उड़ने के लिए पहले कुछ दूर तक तेज़ी से ज़मीन पर दौड़ना पड़ता है,

हेलीकाप्टर

पर ऐसे भी हवाई जहाज़ हैं जो दौड़े बिना ऊपर चढ़ जाते हैं। इन्हें 'हेलीकाप्टर' कहते हैं। इनके ढाँचे के ऊपर एक बड़ा पंखा लगा रहता है।
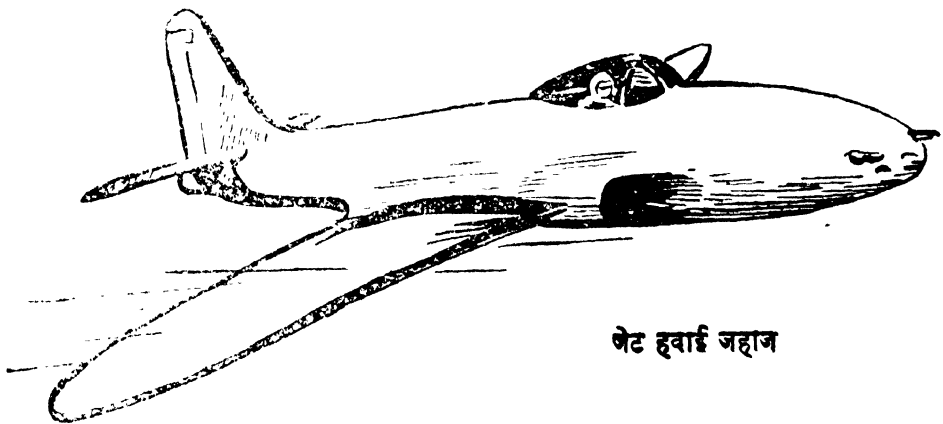
जेट हवाई जहाज

अब ऐसे भी हवाई जहाज़ बने हैं जिनमें पंखे नहीं होते। वे भारी

दबाव की गैस से चलते हैं। इन्हें 'जेट' हवाई जहाज कहते हैं। इस तरह के कुछ हवाई जहाज तो इतनी तेजी से दौड़ते हैं जितनी तेजी से आवाज़ एक जगह से दूसरी जगह पहुँचती है। आवाज एक घंटे में ७६० मील जाती है, एक मिनट में करीब १० मील और ६ सेकेण्ड में कोई एक मील।

दुनिया के सबसे बड़े हवाई जहाज का नाम है 'पहला ब्रेबेज़ीन'। इसके पंख २३० फुट चौड़े और १८० फुट लम्बे हैं। यह १०० मुसाफिरों को लेकर एक घंटे में ३०० मील की चाल से ५,००० मील तक जा सकता
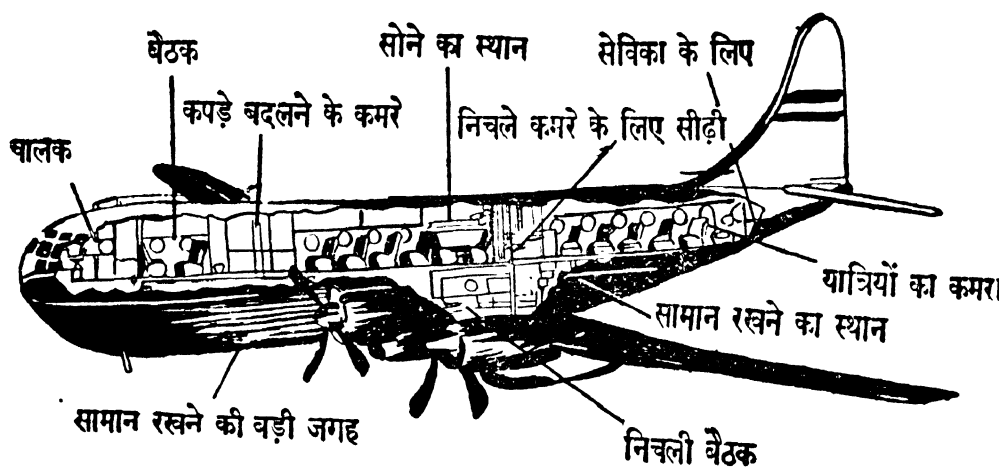
एक बड़ा जहाज

है। अब तक हवाई जहाज अधिक से अधिक दस मील की ऊँचाई तक पहुँच सके हैं, पर गुब्बारों में मनुष्य तेरह मील की ऊँचाई तक जा चुके हैं।

अब वैज्ञानिक एक ऐसा हवाई जहाज बनाने में लगे हैं जो इस धरती से उड़ कर चन्द्रलोक तक पहुँच सके और वह दिन दूर नहीं जब यह सपना सच होगा। उस समय हमारे विचार और हमारा जीवन किस तरह बदलेगा, यह कहना बहुत कठिन है।

५—बिजली

बिजली विज्ञान की सबसे बड़ी देन है। उसने हमें काम और आराम की ऐसी ऐसी चीजें दी हैं जिनकी अब से ६०-७० साल पहले किसी ने कल्पना भी न की थी। किसे मालूम था कि यह अद्भुत शक्ति हमारे जीवन का एक ज़रूरी अंग बन जाएगी। बटन दबाते ही अँधेरे में उजाला हो जाता है। बिजली के पंखों और बिजली की अँगीठियों ने गर्मी सर्दी का केवल नाम ही रहने दिया है। सबसे बड़ी बात यह है कि न कोयले का धुआँ सहना पड़ता है, न तेल की बदबू। बिजली के बिना रेडियो, सिनेमा, तारघर और टेलीफ़ोन कैसे चल सकते थे?

आजकल रेलगाड़ियाँ और जहाज़ भी बिजली से चलने लगे हैं। सब तरह के कारख़ानों में बड़ी बड़ी मशीनें बिजली से चलती हैं। उसी की सहायता से एक्सरे की मशीन हमारे शरीर के भीतर का रहस्य बता देती है।

बिजली बहुत आसानी से काम में लाई जा सकती है और सुभीते के साथ तारों की सहायता से दूर दूर तक पहुँचाई जा सकती है। बिजली दो तरह की होती है। एक वह जो रगड़ से पैदा होती है। कंघियाँ जब रेशमी या ऊनी कपड़ों पर रगड़ी जाती हैं, तो उनमें काग़ज़ जैसी चीजें उठाने की शक्ति आ जाती है। रगड़ से पैदा होने वाली इसी शक्ति से बिजली बनती है। बादलों की रगड़ से भी बिजली पैदा होती है। मगर आकाश की यह बिजली हमारे अधिक काम नहीं आती, प्रायः हानि ही पहुँचाती है।

दूसरी तरह की बिजली वह है जिससे बिजली के बल्ब आदि जलाए

जाते हैं। यह बिजली हमारे बहुत काम की है। यह भी दो तरह की होती है। एक वह जो एक ही दिशा में चलती है। इसे डी० सी० कहते हैं। दूसरी वह जो बारी बारी से दोनों दिशाओं में आगे पीछे चलती है। यह दूसरी तरह की बिजली पहले एक दिशा में आगे बढ़ती है और फिर कम होती हुई बिल्कुल समाप्त हो जाती है। इसके बाद वह दूसरी दिशा में बढ़ने लगती है और फिर उसी तरह समाप्त हो जाती है। इसे बिजली का एक चक्कर कहते हैं। बिजली एक सेकेण्ड में ऐसे लगभग ५० चक्कर लगाती है। इस दूसरी तरह की बिजली को ए० सी० कहते हैं। यह डी० सी० से ज्यादा ख़तरनाक होती है। यदि डी० सी० का तार छू जाए, तो वह झटका देकर गिरा देता है। इससे चोट तो लग सकती है, पर मरने का डर नहीं रहता। लेकिन ए० सी० का तार छू जाने से वह अपने साथ चिपका लेता है। इसलिए प्रायः मर जाने का भय रहता है। ऐसा खतरा होने पर भी सस्ती होने के कारण ए० सी० बिजली अधिक काम में लाई जाती है। कल-कारखाने ए० सी० बिजली से ही चलाए जाते हैं।

बिजली दो तरह से पैदा की जाती है, एक बैटरियों से और दूसरी डायनेमो नाम की एक मशीन से। बैटरियों में बिजली रासायनिक क्रिया से पैदा होती है। डायनेमो में चुम्बक लगे होते हैं। जब इन चुम्बक वाले लोहों के अन्दर तार तेज़ी से घुमाए जाते हैं तो उनमें अपने आप ही बिजली पैदा हो जाती है। डायनेमो को चलाने के लिए ऊँचाई से गिरते हुए पानी से सहायता ली जाती है। इस पानी पर बाँध भी बनाए जाते हैं। जहाँ पानी की शक्ति नहीं मिल
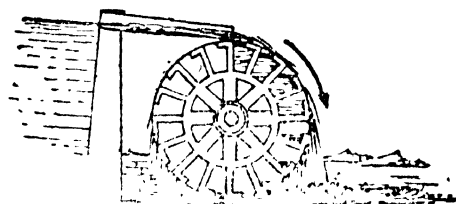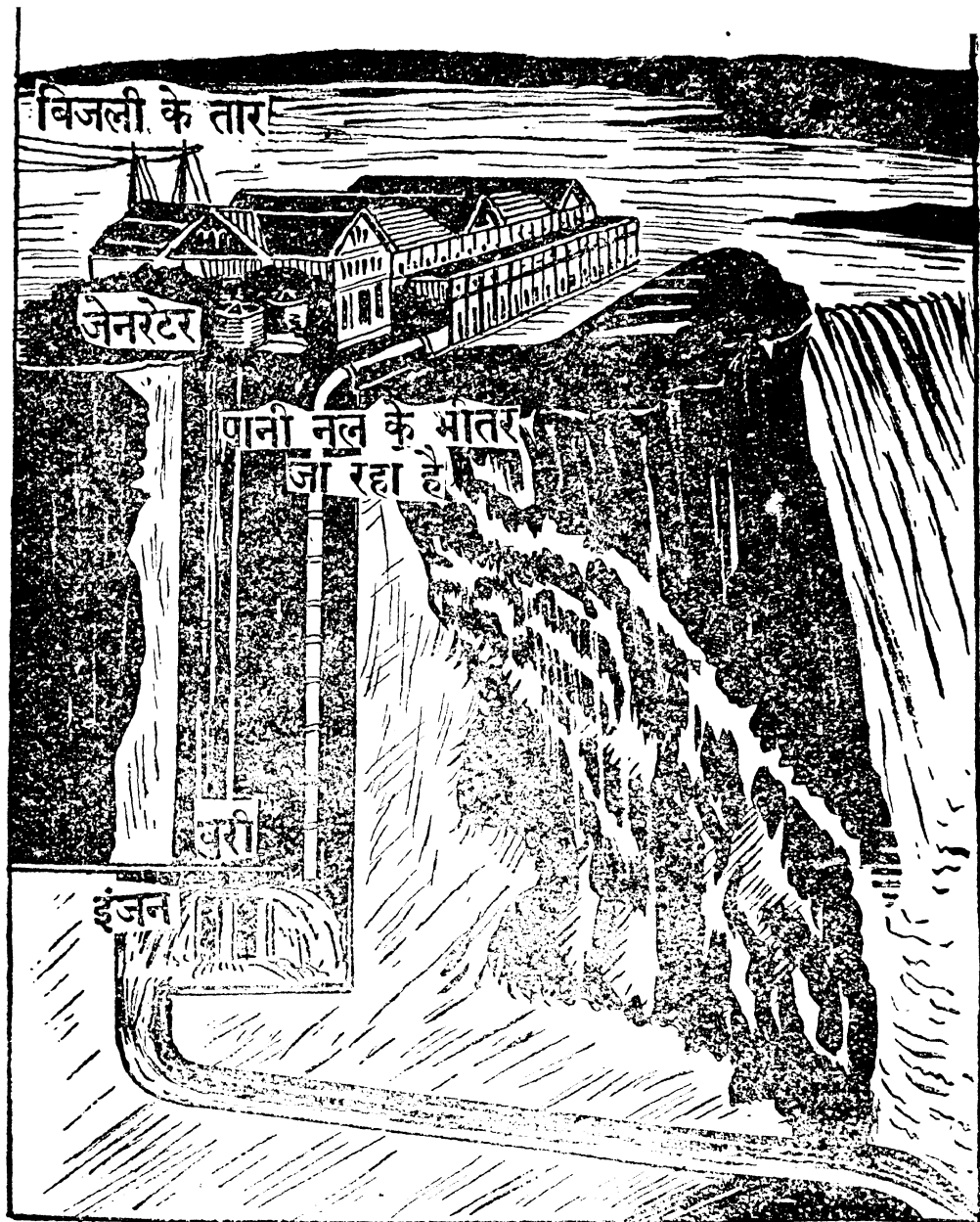
गिरता हुआ पानी बिजली पैदा करने का एक सस्ता साधन है। पहले एक या कई नलों के द्वारा पानी का बहाव इस प्रकार बदल दिया जाता है कि वह बहुत जोर से गिरने लगे और इंजन चल सके। इंजन चलने पर धुरी घूमने लगती है और बिजली पैदा करने वाली मशीन (जेनरेटर) काम करने लगती है। यह बिजली तारों से दूर दूर तक गाँवों और शहरों को भेजी जाती है।

सकती, वहाँ डायनेमो तेल या भाप से चलते हैं।

डायनेमो को ईजाद इंग्लैंड निवासी फैरेडे ने की थी। फैरेडे की खोज की बदौलत आज हम बड़े बड़े कारखाने चलाते हैं। घंटों का काम मिनटों में हो जाता है और संसार उन्नति की ओर बढ़ रहा है।
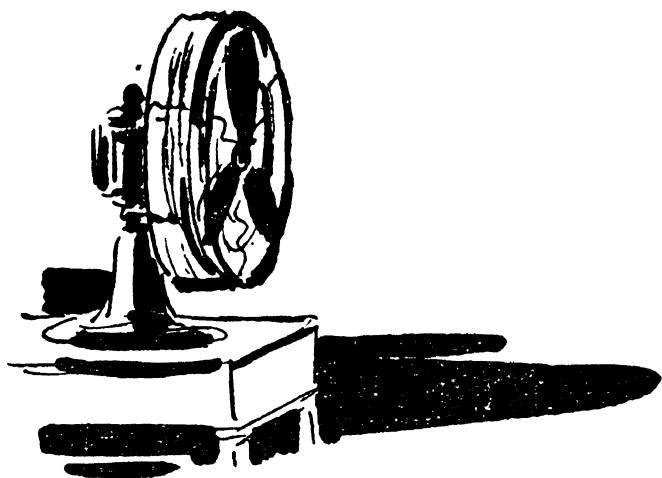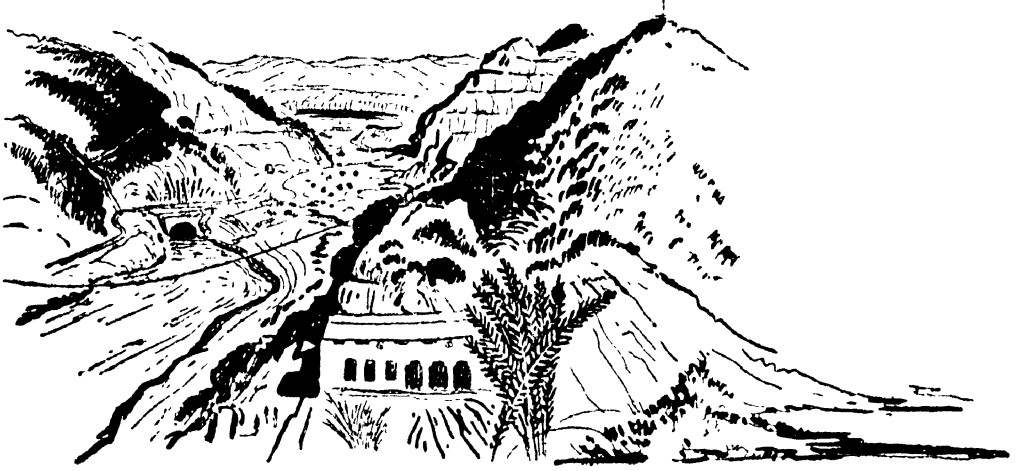
२५

भाखड़ा बाँध

हज़ारों बरस से आदमी इस खोज में रहा है कि संसार की सब वस्तुओं को किस तरह अपने लिए लाभदायक बनाए। इसी लिए उसने संसार को सुन्दर और सुखदायी बनाने की बराबर कोशिश की है।

बिजली को 'आविष्कारों की माँ' कहा जाता है, क्योंकि इसके बिना दूसरी न जाने कितनी खोजें हो ही न सकती थीं। बिजली भाप या तेल से भी पैदा की जाती है और पानी से भी तैयार होती है। पानी से बिजली बनाना सबसे सस्ता है।

पानी में कितनी शक्ति है, इसका पता तालाब या नदी के धीरे धीरे बहते हुए पानी से नहीं लगाया जा सकता। इस शक्ति का कुछ अनुमान

उस बाढ़ से लगाया जा सकता है जो अपने साथ गाँव के गाँव बहा ले जाती है ।

बहुत पुराने समय से हमारे देश में पानी की इस शक्ति से कोई न कोई काम लिया जाता रहा है । पहले नदियाँ माल लाने ले जाने का सब से बड़ा साधन थीं । बंगाल और बिहार में अब भी नावें इस काम में आती हैं । पहाड़ी इलाकों में झरनों से आटा पीसने की चक्कियाँ और लकड़ी चीरने की मशीनें चलती हैं ।

नदियों पर बाँध बनाने से पानी की यह अपार शक्ति देश के लिए बड़ी लाभदायी बन जाती है । बाँध से नदी का पानी रोक देने पर बाढ़ का डर जाता रहता है और उस पानी से सिंचाई की जाती है । इसके अलावा इस पानी से बिजली भी बनाई जा सकती है । हमारे देश में कई स्थानों पर इस तरह बिजली तैयार की जा रही है । इस काम के लिए कुछ नए बाँध भी बन रहे हैं । भाखड़ा का बाँध उनमें से एक है ।

भाखड़ा बाँध पंजाब के अम्बाला ज़िले में रूपड़ से ४५ मील ऊपर सतलज नदी पर बनाया गया है । इस जगह सतलज ऐसी घाटी में से गुज़रती है जहाँ उसके दोनों किनारों पर ऊँचे ऊँचे पहाड़ हैं । कम से कम खर्च पर ऊँचे से ऊँचा बाँध बनाने के लिए ऐसा स्थान बहुत अच्छा रहता है । इसी लिए यहाँ ६८० फुट ऊँचा बाँध बनाया गया है। भाखड़ा बाँध ऊँचाई में संसार भर में दूसरे दरजे का है । सबसे ऊँचा बाँध अमरीका का ७३० फुट ऊँचा 'हूवर' बाँध है। भाखड़ा बाँध नीचे से ६५० फुट और ऊपर से ४० फुट चौड़ा है ।

यह बड़ा काम शुरू करने से पहले रूपड़ से भाखड़ा तक ४५ मील

भाखड़ा नंगल बांध
का
नक़्शा

लम्बी रेल की बड़ी लाइन और एक बड़ी सड़क बनानी पड़ी। मजदूरों और दूसरे काम करने वालों के लिए भाखड़ा से ७ मील नीचे की ओर नंगल में एक छोटा सा शहर बसाया गया। बाँध बनवाने से पहले नदी का बहाव बदलना पड़ता है। इसी लिए भाखड़ा में ५० फुट चौड़ी दो सुरंगें बनाई गईं। इनमें से एक २,५७५ फुट लम्बी और दूसरी २,३८७ फुट लम्बी है। नदी का पानी इन सुरंगों में से निकाल कर बाँध की नीव की खुदाई का काम शुरू हुआ। नीव १५० फुट गहरी है।

भाखड़ा से ७ मील नीचे नंगल नामक स्थान पर सतलज नदी पर ही एक छोटा बाँध बना कर एक नहर निकाली गई है। इस नहर पर दो बिजली घर बनेंगे और यह नहर पंजाब, पेप्सू और बीकानेर की बंजर भूमि को सींचेगी। भाखड़ा बाँध बनाने का काम कितना बड़ा है, इसका
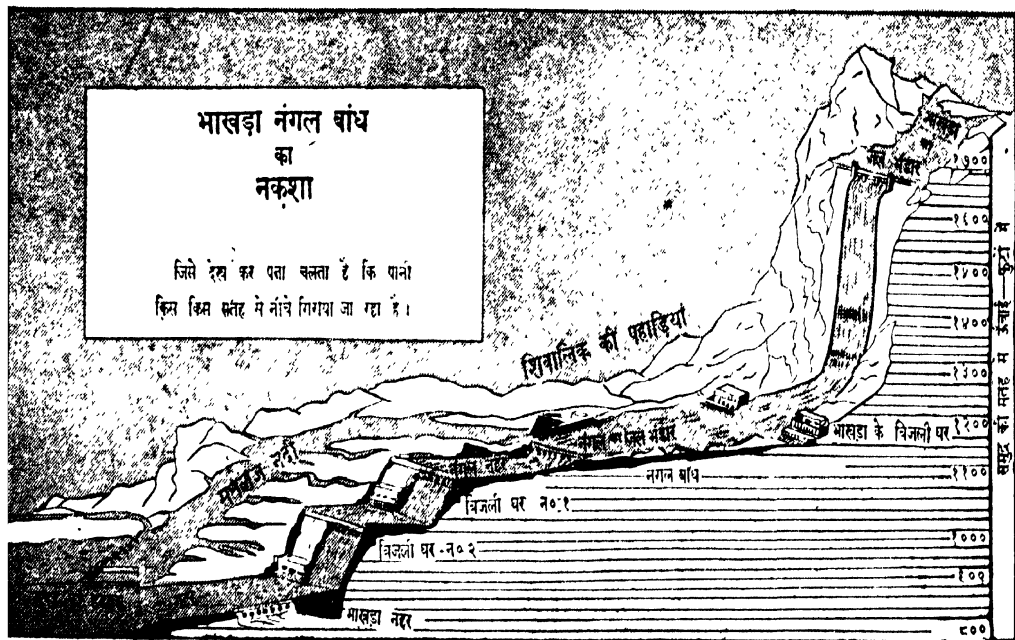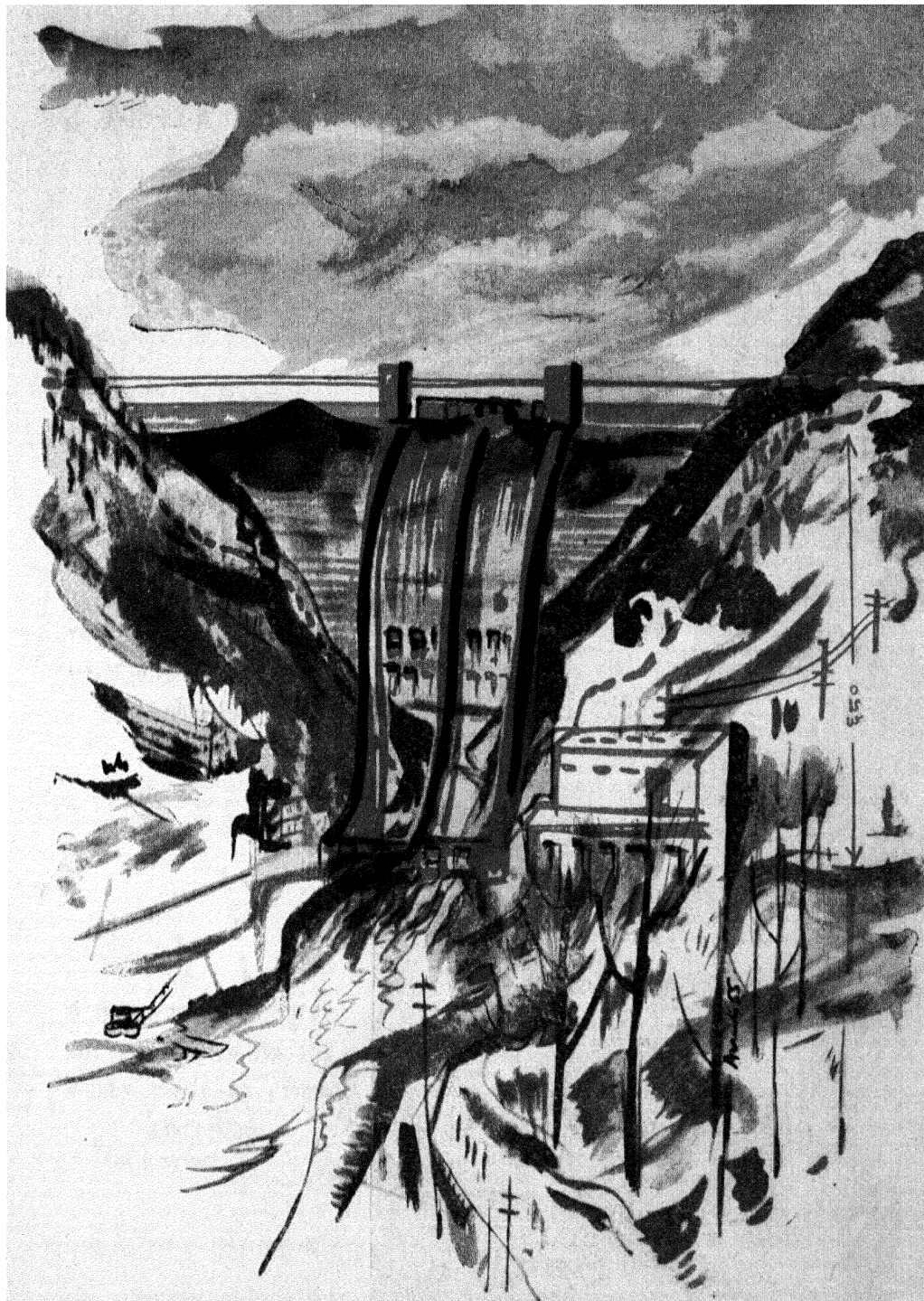
लाल रंग में भाखड़ा बाँध की रूपरेखा बताई गई है। पानी रोक देने से ५६ मील लम्बी और ४ मील चौड़ी झील बन जाएगी।

भाखड़ा

भारत का मंगल तारा

नंगल का बिजलीघर नं० १
ऐसे कई बिजलीघर बन रहे हैं।
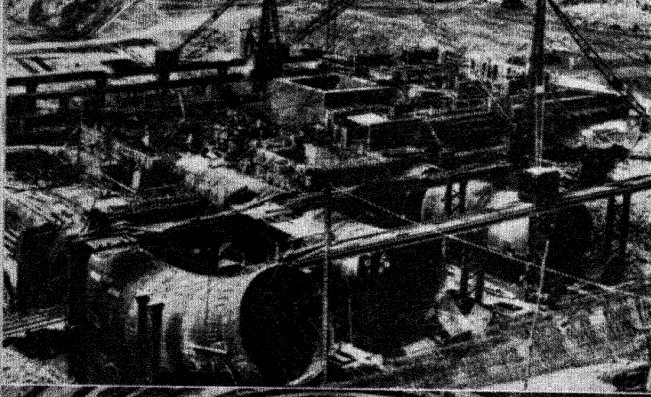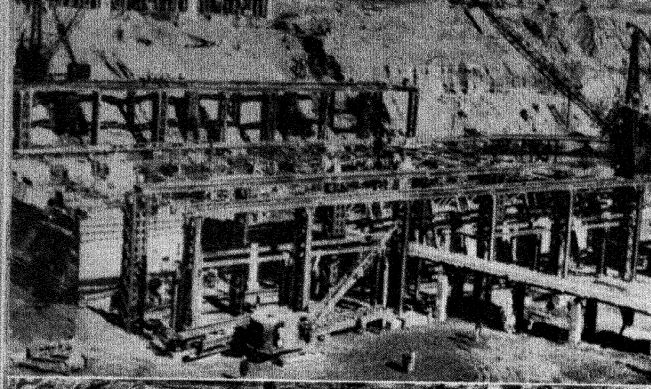
१८ फुट व्यास के नल जिन के द्वारा बिजलीघर में मशीनें चलाने के लिए पानी पहुँचाया जाएगा।
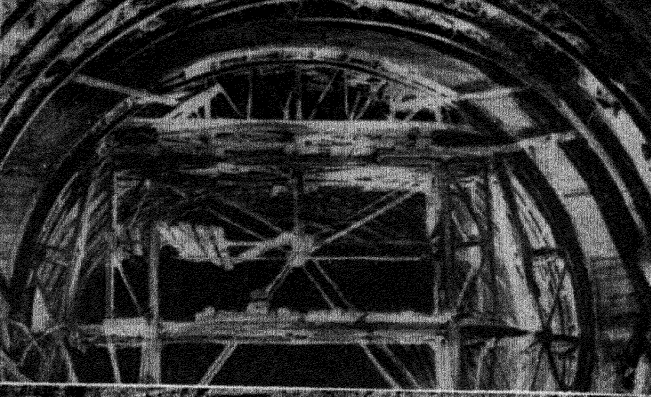
५० फुट व्यास की सुरंग जिस के द्वारा नदी का बहाव मोड़ दिया जाएगा। इस से बाँध बनाने में सुभीता होगा।
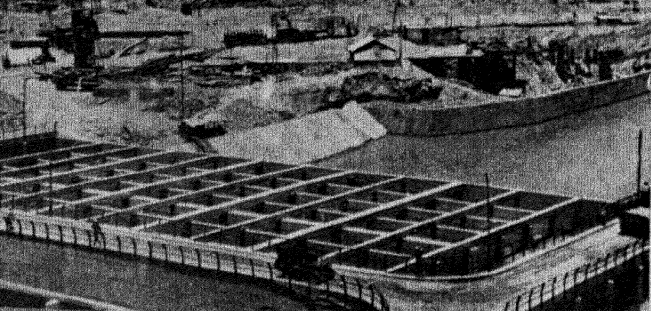
नंगल नहर, उसके ऊपर से बहता हुआ नाला और आने जाने का रास्ता।

कुछ अनुमान इन आंकड़ों से लगाया जा सकता है :

पत्थर की खुदाई	४० करोड़ घनफुट
मिट्टी की खुदाई	३५० करोड़ घनफुट
कंक्रीट की चुनाई	५० करोड़ घनफुट
सीमेंट का ख़र्च	३ करोड़ बोरी
लोहा और इस्पात	३३ लाख मन।

कहा जाता है कि इस बांध की नहरों से करीब १ करोड़ एकड़ भूमि की सिंचाई होगी जिससे हमारी अनाज की समस्या बहुत कुछ हल हो सकेगी। यह योजना पूरी हो जाने पर हर साल ३१६ लाख मन
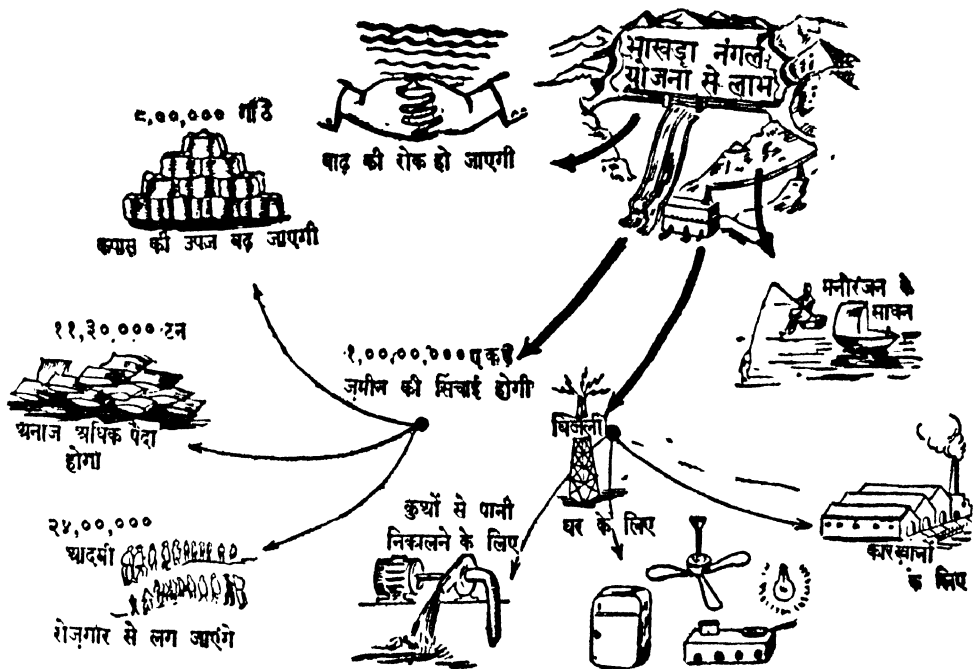
अनाज, ८ लाख गाँठ रूई और ४ करोड़ मन भूसा अधिक होगा और देश के उद्योग धंधों की उन्नति के लिए ४ लाख किलोवाट बिजली मिल सकेगी।

भाखड़ा बाँध से जो झील बनेगी वह ५६ मील लम्बी और ४ मील चौड़ी होगी। इस झील से मछली का व्यापार भी बढ़ सकेगा।

इस पूरी योजना पर १५१ करोड़ ४० लाख रुपये खर्च होंगे। ऐसा अन्दाज़ा है कि यह सारा ख़र्च १२ साल में निकल आएगा। इसी लिए पाँच साला योजना में इस बाँध को सबसे पहला स्थान दिया गया है।
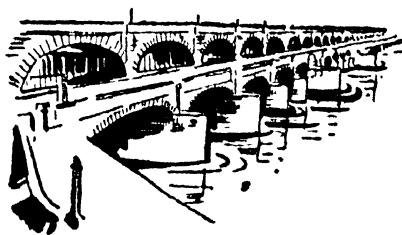
२६

साबुन बनाना

प्रतिदिन काम में आने वाली यह चीज़ हर कोई अपने हाथ से बना सकता है। तरीक़ा सीखने की देर है, फिर तो कुछ घंटों में ही महीने भर का साबुन आसानी से तैयार हो जाता है।

इस लेख में थोड़े से शब्दों में यह बताया गया है कि कपड़े धोने और नहाने का साबुन किन तरीक़ों से बनाना चाहिए। साबुन बनाने में कुल चार चीजें काम में आती हैं :

१. तेल; २. खार, सज्जी मिट्टी, सज्जी खार या पापड़ खार और चूना; ३. पानी और ४. नमक।

तेल : तेल कैसा हो और वह कितना रहे, यह इस बात पर

निर्भर करता है कि हम साबुन कैसा बनाना चाहते हैं। फिर यह भी देखना ज़रूरी है कि तेल ऐसा हो जो अधिक महँगा न पड़े। खाने के काम न आने वाले तेल से भी साबुन बनाया जा सकता है, जैसे, महुआ, नीम, और करंजा।

खार : सज्जी मिट्टी और दूसरे खार हर जगह आसानी से मिल जाते हैं। ये खार पड़े पड़े उपजाऊ ज़मीन को नुक़सान पहुँचाते हैं। अगर इनसे कास्टिक सोडा बना लिया जाय, तो कितना अच्छा हो। सज्जी मिट्टी को गरम पानी में घोल कर गरम गरम ताजे बुझे चूने का काफी पानी मिला देना चाहिए। फिर इसे कुछ देर पड़ा रहने दें। थोड़ी देर में ऊपर कास्टिक सोडे की तह जम जाएगी।

पानी : पानी ऐसा बरतना चाहिए जो साफ़ सुथरा हो और खारी न हो।

नमक : नमक आमतौर पर साबुन को दूसरी चीज़ों से अलग करने या साफ़ करने के लिए डाला जाता है।

बनाने का तरीक़ा

तेल को मिलाने के कुछ नुस्ख़े नीचे दिए गए हैं। उन में से किसी एक नुस्ख़े के अनुसार दो सेर तेल एक चौड़े मुँह वाले बर्तन में डालिए। बर्तन को ज़रा गरम करिए और उसमें कास्टिक सोडा डालिए। थोड़ी ही देर में तेल और कास्टिक सोडा मिलकर एक गहरी झाग सी उठाएंगे और वह ऊपर की सतह पर खौलती हुई नज़र आएगी। हो सकता है कि शुरू में यह झाग किसी कारण से न उठे, पर तजरबे से यह मुश्किल जल्दी दूर हो जाएगी। आग पर रखा हुआ यह घोल धीरे धीरे गाढ़ा होता जाएगा

और आख़िर उसमें से भाप उठनी बंद हो जायगी। सारा घोल उफन कर ऊपरी सतह पर जम जायगा। इस समय काफ़ी सावधानी बरतनी चाहिए। कास्टिक सोडा थोड़ा थोड़ा साथ में मिलाते जाना चाहिए। थोड़े ही दिनों के तजुर्बे से यह मालूम हो जायगा कि कास्टिक सोडा कितना मिलाना काफ़ी है और किस समय उसका पूरा असर तेल में आ चुकता है।

अब साबुन तैयार हो गया, पर इसमें अलग छूटा हुआ खार और ग्लिसरीन भी मौजूद है। अब उसमें नमक का पानी डालना ज़रूरी है ताकि साबुन इन दोनों चीजों से अलग होकर नीचे बैठ जाय। पहले इसे ठंडा होने दिया जाता है और फिर इसकी घड़ाई की जाती है ताकि फालतू हिस्सा इसमें से छूँट जाय। इस साबुन को अलग निकाल कर फिर नए सिरे से पिघलाया जाता है। तब साँचों में डाल दिया जाता है। जब यह जम कर सख़्त हो जाता है तब साँचों से निकाल कर इसकी छोटी छोटी टिकियाँ बना ली जाती हैं। सूखने के बाद इसे काम में लाया जा सकता है।

यदि सिर धोने का साबुन बनाना हो, तो आग के ऊपर के घोल को कई बार आँच देकर नीचे बैठने दिया जाता है और कास्टिक सोडे से उसे पूरी तरह अलग करना पड़ता है। इसके बाद मनचाहा रंग और सुगंध उसमें डाल सकते हैं। नहाने और सिर धोने का साबुन तैयार हो गया।

तेल मिलाने के नुसखे

१—नारियल का तेल	५० फ़ी सदी
मूंगफली का तेल	२५ फ़ी सदी
बिनौले का तेल	२० फ़ी सदी
रोज़िन	५ फ़ी सदी

कास्टिक	जरूरत के अनुसार
२—महुवे का तेल	६० फ़ी सदी
नारियल का तेल	२० फ़ी सदी
मूंगफली का तेल	१५ फ़ी सदी
रोज़िन	२ फ़ी सदी
अरंडी का तेल	२ फ़ी सदी
३—नीम का तेल	४० फ़ी सदी
नारियल का तेल	४० फ़ी सदी
मूंगफली का तेल	१० फ़ी सदी
महुवे का तेल	७ फ़ी सदी
रोज़िन	३ फ़ी सदी
४—पूनल का तेल	५० फ़ी सदी
नारियल का तेल	३५ फ़ी सदी
मूंगफली का तेल	१५ फ़ी सदी
५—तिल का तेल	१५ फ़ी सदी
मूंगफली का तेल	५० फ़ी सदी
अरंडी का तेल	५ फ़ी सदी
महुवे का तेल	२० फ़ी सदी
६—चर्बी	४३ फ़ी सदी
मूंगफली का तेल	३७ फ़ी सदी
नारियल का तेल	१६ फ़ी सदी
रोज़िन	४ फ़ी सदी

७—कुसुम का तेल	४० फ़ी सदी
बिनौले का तेल	१४ फ़ी सदी
नारियल का तेल	१६ फ़ी सदी
रोज़िन	३ फ़ी सदी
८—तिल का तेल	४० फ़ी सदी
नारियल का तेल	४० फ़ी सदी
बिनौले का तेल	२० फ़ी सदी
९—महुवे का तेल	६० फ़ी सदी
नारियल का तेल	२० फ़ी सदी
मूँगफली का तेल	१६ फ़ी सदी
रोज़िन	४ फ़ी सदी

२७

फल संरक्षण

एक समय था जब हर फल अपनी फ़सल में शक्ल दिखाकर चला जाता था और अगली फ़सल आने तक उसकी राह देखनी पड़ती थी। कई फल तो ऐसे थे जो दूसरे देशों तक पहुँच ही नहीं पाते थे और सिर्फ़ किताबों से उनका नाम मालूम होता था। पर अब तरक्क़ी का युग है। अधिकतर फलों का आनन्द अब हर मौसम और हर देश में लिया जा सकता है।

कहते हैं कि लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह को लखनऊ का दसहरी आम बहुत पसन्द था। वे आम की बहार में दसहरी की फाँकें कटवा कर शहद में रख देते और सरदी के मौसम में उसे खाते थे। फल संरक्षण यानी फलों को सड़ने गलने से बचा कर रखना कोई नई बात

नहीं है। हर घर में अचार और मुरब्बे डाले जाते हैं। घर की स्त्री का यह गुण माना जाता है कि वह तरह तरह के अचार और मुरब्बे डालना जानती हो।

फल पड़े पड़े बिगड़ क्यों जाते हैं? सूखे मेवों की तरह वे देर तक क्यों नहीं रह सकते? देखा गया है कि ताज़ा फलों में रहने वाले छोटे छोटे कीटाणु जो अधिकतर उनके पानी के हिस्सों में होते हैं, फलों को देर तक नहीं रहने देते।

ये कीटाणु इतने छोटे होते हैं कि उन्हें सिर्फ खुर्दबीन से देखा जा सकता है। फलों, सब्जियों दूध, और यहाँ तक कि हवा और पानी में भी इस तरह के कीटाणु हैं। फलों के भीतर रहने वाले ये कीटाणु बाहर की हवा के कीटाणुओं से मिलकर गैसें पैदा करते हैं जिनसे उनमें सड़ाँध पैदा होने लगती है।

पानी जितनी आँच पर उबलना शुरू हो जाता है उस आँच को २१२ डिग्री की गरमी कहते हैं। ये कीटाणु २१२ डिग्री की गरमी में जीवित नहीं रह सकते। बहुत ठंड भी उन्हें नहीं सुहाती। बस, फल संरक्षण के दो तरीक़े निकल आए। पहला वह जिसमें उबलते पानी के द्वारा फल के ये कीटाणु मार दिए जाते हैं और दूसरा ठंड पहुँचाने का तरीक़ा जिसमें फलों के रहने की जगह इतनी ठंडी बना दी जाती है कि ये कीटाणु सुस्त पड़े रहते हैं और बढ़ नहीं पाते। ठंड पहुँचाने की एक खास अल्मारी होती है जिसे रेफ्रिजरेटर कहते हैं। इसमें मशीन के द्वारा गर्मी को घटाने बढ़ाने का प्रबन्ध रहता है। पर यह याद रखना चाहिए कि अधिक ठंड से वे कीटाणु मरते नहीं, सिर्फ़ सुस्त हो जाते हैं।

इन कीटाणुओं को मारने के कुछ और भी तरीक़े हैं जैसे कुछ ऐसे मसाले और खाने के तेज़ाब हैं जो इन को नष्ट कर देते हैं और नए कीटाणु नहीं पैदा होने देते। अचार डालने के लगभग सभी तरीक़ों में ये मसाले बरते जाते हैं। राई, कलौंजी और नमक ऐसे ही मसाले हैं। तेल भी नए कीटाणु नहीं पैदा होने देता। अचार पर तेल की सतह एक चादर का काम करती है जिसे चीड़ कर हवा और हवा के साथ ही नए कीटाणु अचार तक नहीं पहुँच पाते। इसके सिवा यदि कुछ कीटाणु अचार में रह भी जाते हैं तो वे भी हवा के न पहुँचने पर मर जाते हैं। इस तरह तेल अचार को सुरक्षित रखता है। अचार में कभी कभी सफ़ेद रंग की फफूँदी पड़ जाती है। उसके दो कारण होते हैं। या तो अचार डालने से पहले सब्ज़ी और फलों को अच्छी तरह पानी में उबाला नहीं जाता और उसमें ये कीटाणु रह जाते हैं, या फिर तेल की कमी से नए कीटाणु पैदा हो जाते हैं। तेल में तली हुई चीज़ देर तक क्यों रहती है? इसीलिए कि आग की तेज़ आँच से एक तो ये कीटाणु नष्ट हो जाते हैं, दूसरे उसके रोम रोम में तेल समा जाता है जिससे नए कीटाणु पैदा नहीं होने पाते।

अचार डालना फल को सुरक्षित रखने का ढंग तो है ही, विशेष बात यह होती है कि इससे फलों में विशेष प्रकार का स्वाद भी आ जाता है। फलों को हम अलग अलग स्वाद के साथ खा सकते हैं, जैसे मीठी चटनी, मुरब्बा आदि।

फलों का वही स्वाद, रंग रूप बनाए रखने के लिए डिब्बा बन्दी का तरीका निकला है। केलिफ़ोरनिया, सिंगापुर और काश्मीर से बन्द डिब्बों में सब तरह के फल संसार के दूर दूर देशों में पहुँचते हैं और अपने

असली रूप, रंग, स्वाद और गुणों को अपने साथ ले जाते हैं। इन्हीं तरीकों की कृपा से सिंगापुर का अनन्नास, केलिफ़ोरनिया का स्ट्राबेरी और आड़, काश्मीर की नाशपाती, चेरी तथा उत्तर प्रदेश के आम हम किसी भी मौसम और किसी भी देश में खा सकते हैं।

फलों की डिब्बा बन्दी इस प्रकार की जाती है। ताजे और पके हुए फलों को धो कर एक खुले मुँह वाले डिब्बे में रख देते हैं। एक अलग बर्तन में पानी उबाल कर उसमें ज़रा सी चीनी छोड़ दी जाती है। चीनी नए कीड़े पैदा होने में रुकावट है, पर बहुत थोड़ी डालनी चाहिए ताकि फल की अपनी मिठास दब न जाए। पानी इतना हो कि उसमें फल अच्छी तरह डूब जाएं। अब इस उबलते हुए पानी यानी चाशनी को फलों वाले डिब्बे में डालकर डिब्बे को गरम पानी में रखा जाता है। इससे फल के भीतर या बोतल के आसपास के सब कीड़े नष्ट हो जाते हैं। आखिरी काम अब केवल यह रह जाता है कि डिब्बे को इस तरह मोहर लगाकर बन्द कर दिया जाए कि बाहर की हवा डिब्बे में किसी भी प्रकार न जा सके। मोहर लगाने के लिए अब ऐसी मशीनें निकल चुकी हैं कि एक अनजान आदमी भी डिब्बे को आसानी से बन्द कर सकता है। बन्द करते ही डिब्बे को ठंडे पानी में रख देते हैं। ऐसा करने से डिब्बे के अन्दर की चाशनी ठंडी हो जाती है।
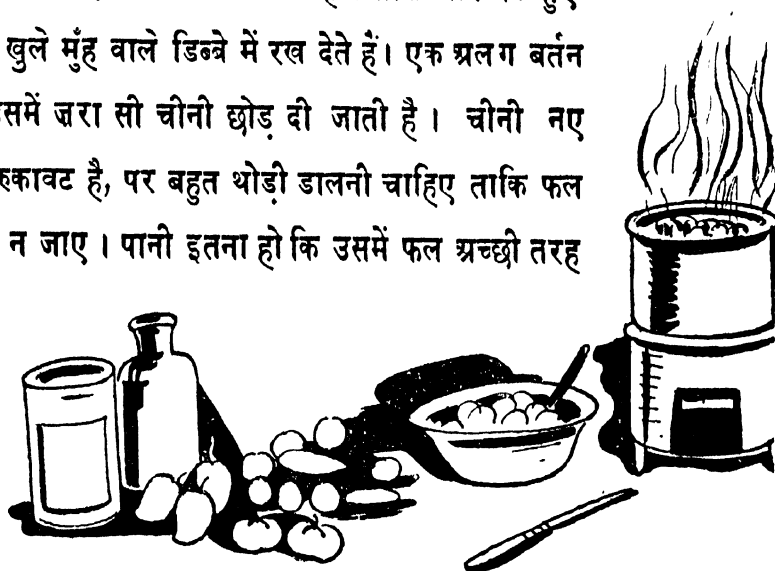
मीठे पानी के घोल की जगह नीबू और नमक का पानी भी इस्तेमाल

होता है, पर यह अधिकतर सब्जियों में बरता जाता है। बाकी सब तरीक़ा एक जैसा है। नीबू के पानी में ज़रा सी चीनी भी मिलाई जाती है। नीबू और नमक का प्रयोग ज़रा से फ़र्क के साथ अचार डालने में भी होता है। जिस चीज़ का अचार डालना होता है, उसकी फाँकें काट कर उनमें नमक मल दिया जाता है और धूप में सूखने डाल दिया जाता है। फिर अचार डालते वक्त उनमें नीबू का रस निचोड़ दिया जाता है अथवा सिरका डाला जाता है।

डिब्बा बन्दी अब बड़े पैमाने पर होने लगी है। इसमें मशीनों का प्रयोग होता है और सफ़ाई तथा स्वास्थ्य के नियमों का अधिक ध्यान रखा जाता है।
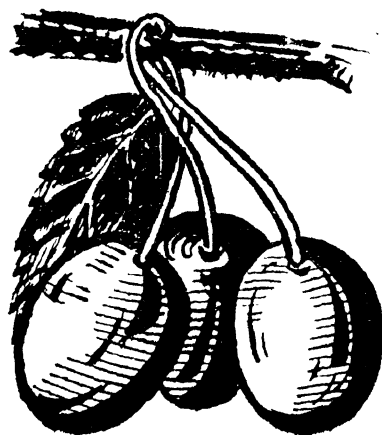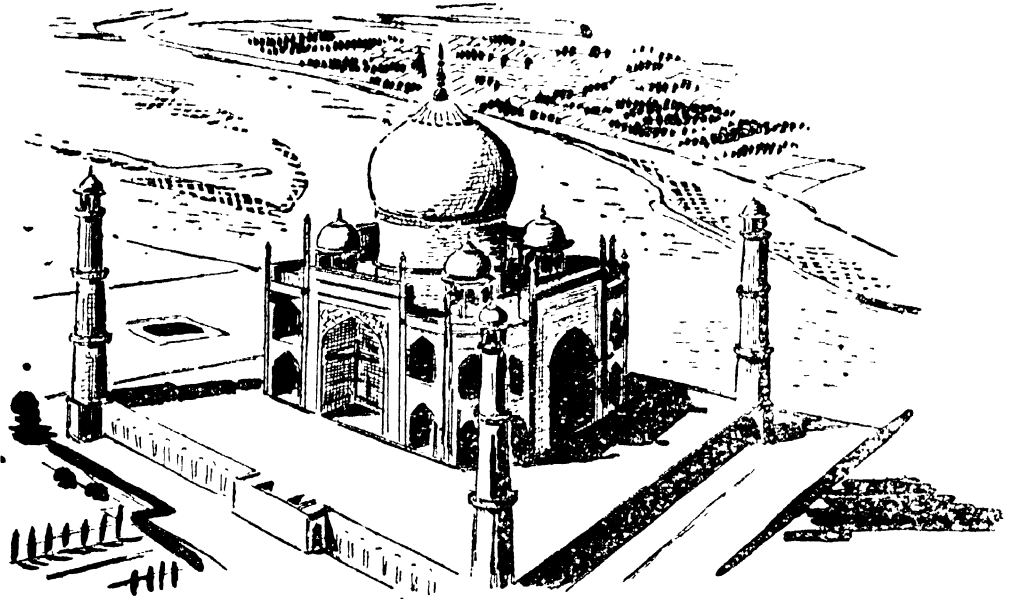
२८

ताज महल

आगरे का ताजमहल कई दृष्टियों से संसार की सबसे अच्छी इमारत मानी जाती है। कुछ लोगों ने इसको 'पत्थर में कविता' कहा है। यह मुग़ल सम्राट् शाहजहाँ की मलका मुमताज़ महल का मक़बरा है।

सम्राट् जहाँगीर और उनकी प्रसिद्ध मलका नूरजहाँ का नाम सबने सुना है। अर्जमन्द बानू या मुमताज़ महल नूरजहाँ की भतीजी थी। अर्जमन्द बानू के पिता का नाम अबुलहसन था। यह आसफ़ जाह आसफ़जाही के नाम से मशहूर हैं। मुमताज़ महल का जन्म १५९३ ई० में हुआ। १० मई सन् १६१२ ई० को उसका विवाह शहजादा खुर्रम के साथ हुआ। शहज़ादा

खुर्रम ही आगे चल कर शाहजहाँ के नाम से भारत का सम्राट् हुआ। शहज़ादा और अर्जमन्द बानू एक दूसरे से बेहद प्रेम करते थे। खुर्रम ने जब नूरजहाँ के व्यवहार से दुःखी होकर अपने पिता जहाँगीर से विद्रोह किया, तो उसे देश से निकाल दिया गया। इस संकट काल में

भी अर्जमन्द बानू ने उसका साथ न छोड़ा। इस प्रेम का फल उसे उस समय मिला जब उसका खुर्रम शाहजहाँ के नाम से तख़्त पर बैठा। उस समय मुमताज़ का दरजा बहुत ही ऊँचा था। यहाँ तक कि शाही मोहर उसी के पास रहती थी।

मुमताज महल बहुत ही दयालु और उदार थी। कहा जाता है कि वह हज़ारों रुपये रोज़ दान में देती थी। उसने न जाने कितनी अनाथ और असहाय लड़कियों के दहेज का प्रबन्ध अपनी ओर से किया। जब बादशाह कहीं दौरे पर जाता या चढ़ाई करता, तो मलका भी उसके साथ होती। एक बार दक्खिन के गवर्नर खानजहाँ लोदी ने बादशाह के खिलाफ़ सिर उठाया। बादशाह उसे दबाने के लिए दक्खिन की ओर गया। मलका भी उसके साथ थीं। उसी समय बुरहानपुर (खानदेश) में उनकी १४ वीं सन्तान शाहज़ादी गौहर आरा पैदा हुई। अपनी इस सन्तान को जन्म देकर मलका सदा के लिए सो गई। यह घटना २८ जून १६३१ की है।

शाहजहाँ पर इस घटना का बहुत असर हुआ। उसके शोक की सीमा

न थी। कहा जाता है कि इस शोक के कारण उसके बाल सफ़ेद हो गए और उसने कई महीने तक राज काज या दरबारी जलसों में कोई भाग न लिया।

मलका की लाश कुछ समय के लिए जैनाबाद के बाड़े में दफना दी गई। आगरा पहुँचते ही सम्राट् ने मलका के मकबरे के लिए एक जगह पसन्द की। यह जगह जयपुर के महाराज जयचन्द के अधिकार में थी। सम्राट् ने उसके बदले महाराज को दूसरी जगह उतनी ही ज़मीन दे दी। ६ महीने बाद सम्राट् की आज्ञा से मलका की लाश आगरे लाई गई और एक बार फिर कुछ दिन के लिए ताज बाग़ के उत्तर पच्छिमी कोने में एक गुम्बदनुमा इमारत में दफ़ना दी गई। आज कल इस जगह एक खुला हुआ कटहरा दिखाई देता है। इस कटहरे के चारों तरफ़ लाल पत्थर की दीवारें हैं। इसके पास ही एक बावली है।

उधर मक़बरा बनाने का काम तेज़ी से होने लगा। एशिया के सब देशों से बड़े बड़े कारीगर बुलाए गए। यह तो नहीं कहा जा सकता कि ताजमहल का नक़्शा किसने बनाया, पर यह बात अवश्य कही जा सकती है कि इसे बनाने में शाहजहाँ के शाही इंजिनियर लाहौर के उस्ताद अहमद का बड़ा हाथ था। उस्ताद अहमद ही ने दिल्ली का लाल किला और जामा मस्जिद बनवा कर अपनी योग्यता दिखलाई थी। उनकी सहायता के लिए और भी कई बड़े बड़े इंजिनियर थे। पूरे काम की देखभाल मकरमत खां और मीर अब्दुल करीम नाम के दो इंजिनियरों को सौंप दी गई थी। ताज का गुम्बद तुर्की के इस्माइल खाँ ने बनाया था। दरवाज़ों पर लिखे हुए कतबे अपने समय के सबसे बड़े कातिब अब्दुल हक़,

कटहरे की जाली के बेलबूटे

उपनाम अमानत खाँ शीराज़ी ने लिखे थे। इटली और फ्रांस के कारीगरों ने सुनहरे कटहरे पर सजावट का काम किया था। कहा जाता है कि इस सुनहरे कटहरे में ४० हज़ार तोला सोना लग गया था। बाद में शाहजहाँ ने सोने के कटहरे की जगह संगमरमर का

दरवाज़ों पर लिखे अरबी भाषा के कतबे का एक नमूना

कटहरा बनवा दिया जिसमें हीरे और जवाहरात जड़े हुए थे।

फ़ारसी की एक मशहूर किताब 'बादशाह नामा' के अनुसार ताज-महल की नीव में पत्थर और चूना भरा गया है। चबूतरा ईंटों और चूने के मसाले से बनाया गया है। चबूतरे के फ़र्श पर सफ़ेद संगमरमर के टुकड़े लगे हैं। इस तरह मक़बरे की पूरी इमारत बहुत पक्की नींव पर टिकी है।

असली मकबरा, पच्छिम की ओर की एक मस्जिद, पूरब की ओर उसका 'जवाब', एक मेहमान खाना और दक्खिन में सदर दरवाज़ा ये सब इमारतें लगभग १७ बरस में बनीं। जिलौख़ाना और बाहर के खम्भे वग़ैरह

बनने में कोई ५ बरस लगे। ये सब बाद में बनाए गए थे।

ताज की एक सुन्दर बुर्जी

ताजमहल में सफ़ेद संगमरमर काम में लाया गया है। यह पत्थर जयपुर और जोधपुर से मँगाया गया था। लाल पत्थर आगरे ही के रूपवास नामक स्थान से आया था।

ताजमहल और उसके साथ की इमारतों की लागत का सही अन्दाज़ा नहीं लग सकता। अनुमान किया जाता है कि इस काम पर उस समय लगभग ७ करोड़ रुपया ख़र्च हुआ होगा। ब्योरा तो ५० लाख के ख़र्च ही का मिलता है, पर यह फुटकर कामों और लगभग २० हज़ार मजदूरों की मजदूरी पर ही ख़र्च हो गया था। इसमें बड़े बड़े कारीगरों और इंजिनियरों का वेतन शामिल नहीं है। वे सरकारी नौकर थे। इस रक़म में पत्थरों और हीरे जवाहरात का ख़र्च भी नहीं जोड़ा गया। ये चीजें या तो सरकारी थीं या शाहजहाँ की निजी सम्पत्ति थीं।

ताजमहल के आसपास की इमारतें भी बहुत सुन्दर हैं, लेकिन ताजमहल की सुन्दरता से उनका क्या मुक़ाबला? इसीलिए दुनिया भर के दर्शक और कलाकार ताजमहल को देखकर दंग रह जाते हैं।

ऊपर लिखा जा चुका है कि ताजमहल दुनिया की सुन्दर से सुन्दर इमारतों में है। कला के पारखियों का कहना है कि ताजमहल की बनावट में अनेक देशों की कलाओं जैसे प्राचीन भारत, अरब, ईरान, चीन और इटली

की कला का सुन्दर संगम देखने को मिलता है ।

शाहजहाँ ने अपनी प्रिय बेगम की अमर यादगार के रूप में ताज महल बनवाया था। वह ताज की कला पर ऐसा मुग्ध था कि अपने आखिरी दिनों में उसे देख देख कर सुख और शान्ति पाता था।
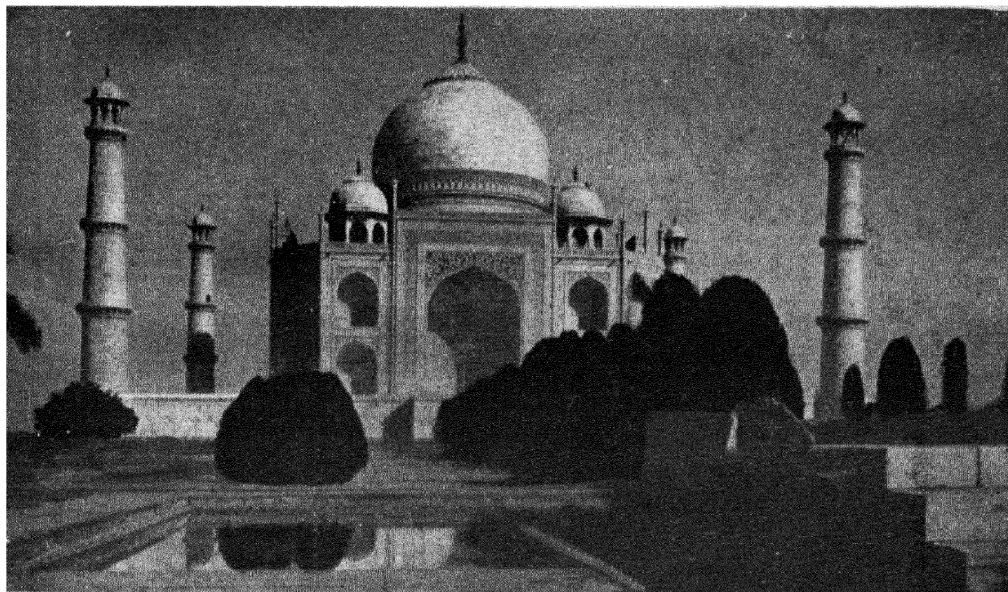
ताज महल
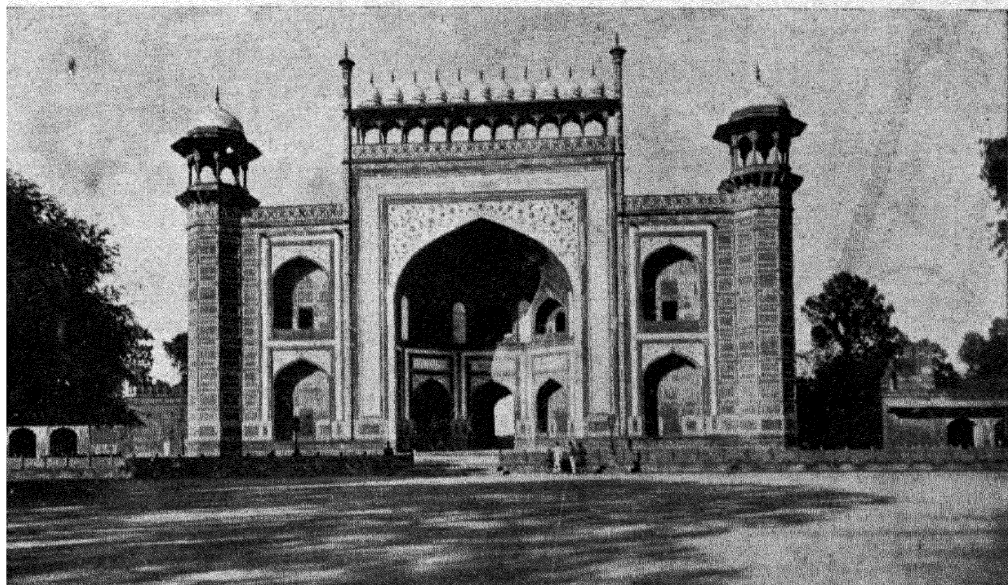
ताजमहल के दक्खिनी बाग़ का सुन्दर दरवाज़ा

दक्खिनी गोपुरम् और कमलिनियों वाला तालाब
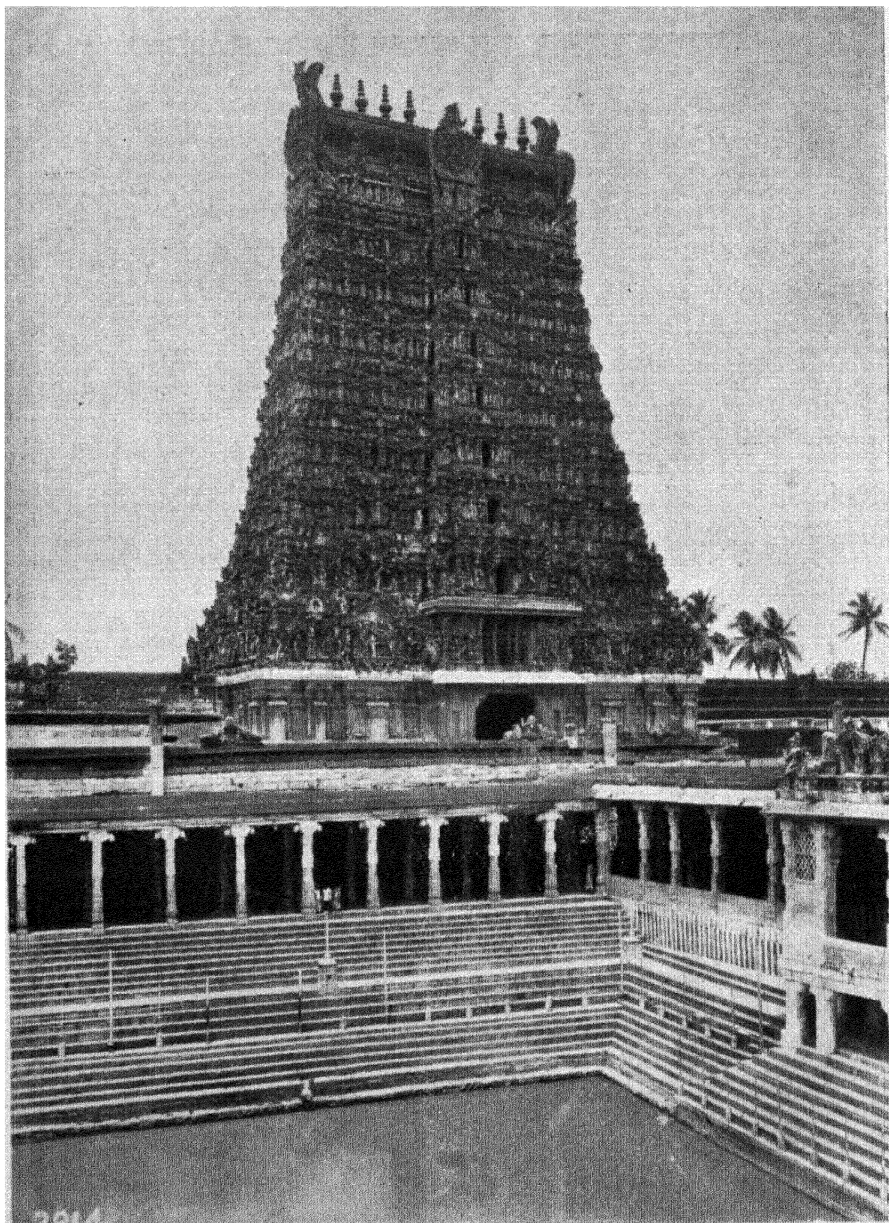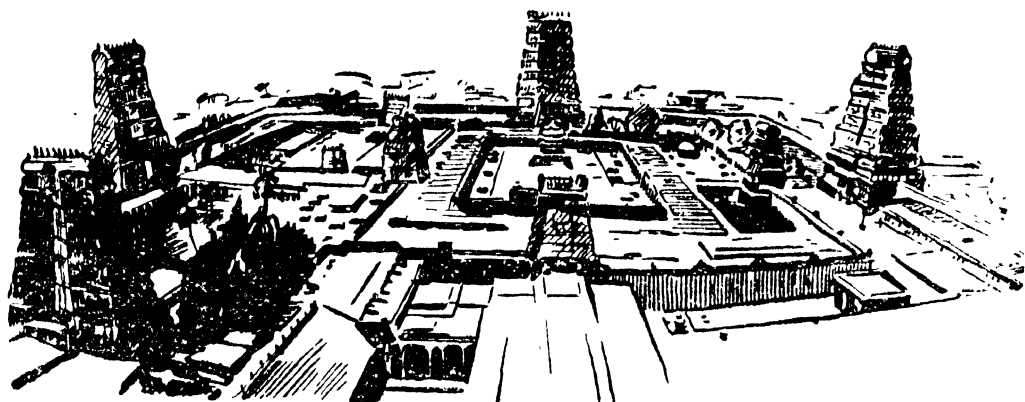
३१

मदुरा का मन्दिर

दक्खिन भारत में ईसा की सातवीं सदी से मन्दिर बनने शुरू हुए और तब से लगभग अठारहवीं सदी तक मन्दिर बनाने की कला में बराबर उन्नति होती गई। दूसरी कलाओं की भाँति, मन्दिर बनाने की कला भी राजवंशों के सहारे फली फूली, और इन्हीं राजवंशों के नाम पर मन्दिरों की बनावट की अलग अलग शैलियों यानी ढंगों के नाम पड़े। पल्लव, चोल, पाँड्य, विजयनगर और नायक इनमें खास शैलियाँ हैं।

इनमें नायक शैली आखिरी है और सबसे अधिक विकसित या बढ़ी चढ़ी है। इसका दूसरा नाम मदुरा शैली भी है। नायक राजाओं का राज्य १५५० ई० के आसपास शुरू हुआ। व्यापार, कला, साहित्य और धर्म का

पाँच शैलियाँ
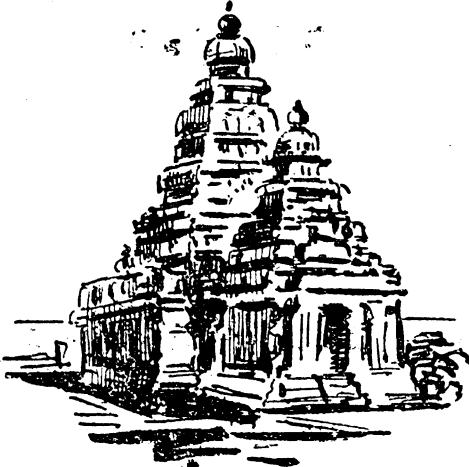
पल्लव—६०० से ९०० ई०

घोल—९०० से ११५० ई०

पाण्ड्य—११५० से १३५० ई०
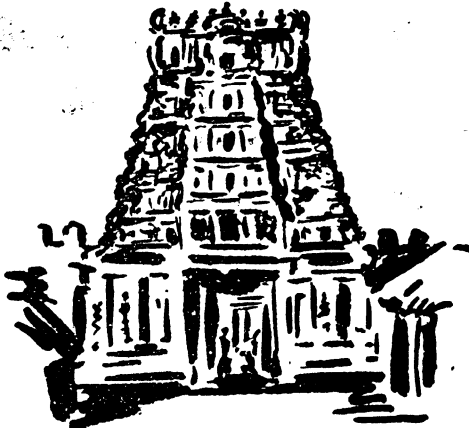
विजयनगर—१३५० से १५६५ ई०

नायक या मदुरा—१६०० ई० से—
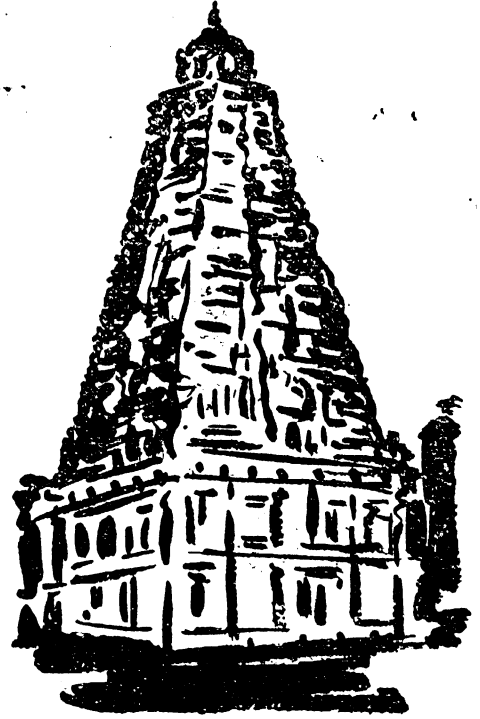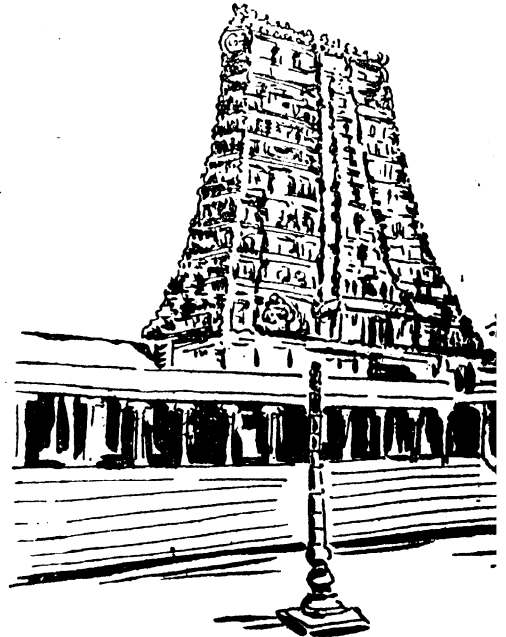
केन्द्र मदुरा, पांड्य राजाओं की राजधानी रहा था। नायक राजाओं ने भी उसे अपनी राजधानी बनाया। उनके राज्यकाल में बहुत अधिक मन्दिर बने। त्रिचिनापल्ली, श्रीरंगम्, चिदम्बरम् और रामेश्वरम् के मन्दिर इनमें खास हैं, लेकिन मदुरा का मन्दिर इस शैली का सबसे अच्छा नमूना है।
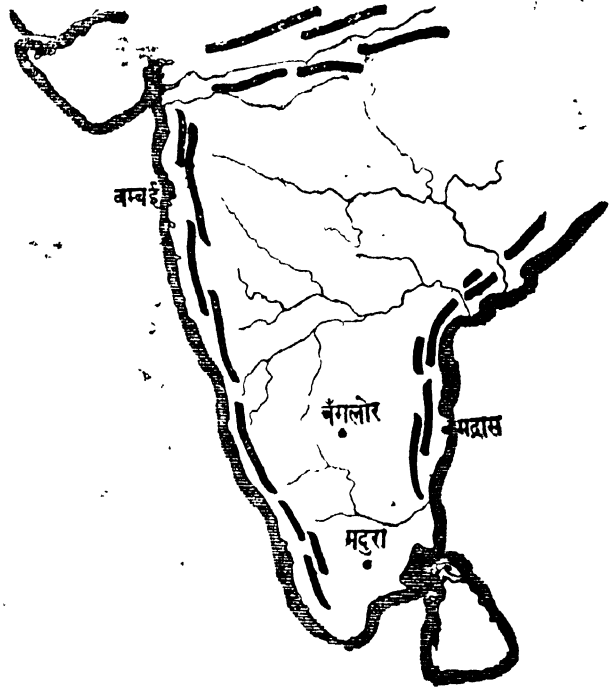
दक्खिन भारत के बड़े बड़े मन्दिरों का श्रीगणेश प्रायः बहुत छोटे छोटे मन्दिरों से हुआ। सभी राजवंशों ने मन्दिर बनवाए, इसलिए धीरे धीरे उनकी संख्या और आकार इतना बढ़ गया कि श्रीरंगम् जैसे बड़े मन्दिर एक अलग शहर जैसे जान पड़ते हैं। ऐसा लगता है कि मदुराका मन्दिर भी किसी पुराने देवस्थान पर बना हुआ है। समय समय पर इसके मन्दिरों की संख्या बढ़ती गई, परन्तु इसके मुख्य भाग थोड़े ही समय के भीतर बने थे।

मन्दिर की इमारत बड़ी अनोखी और मन पर प्रभाव डालने वाली है। इसके ऊँचे ऊँचे गोपुर अर्थात् चारदीवारी के दरवाजे, खम्भों वाले बरामदे या बड़े बड़े मंडप, पत्थर की बड़ी बड़ी मूर्तियाँ और खुदे हुए बेलबूटे तथा छत की रंगबिरंगी चित्रकारी देखने वाले को एक दम मोह लेती है।

भारत के कोने कोने से तीर्थयात्री और कला के प्रेमी यहाँ दर्शन करने आते रहते हैं।

शहर में पहुँचने से पहले कई मील से ही १५० फुट से भी अधिक ऊँचे गोपुर दिखाई पड़ने लगते हैं। पैदल आने वाले यात्रियों की थकी आत्मा उनके दर्शन से ही प्रसन्न हो जाती है।

मन्दिर तीन चारदीवारियों से घिरा हुआ है। चारदीवारियों के बीच के स्थान प्राकार कहलाते हैं। उनमें कई मंडप, मन्दिर, लम्बे बरामदे, गोदाम इत्यादि हैं। मुख्य मन्दिर दो हैं, सुन्दरेश्वर महादेव का और मीनाक्षी नाम से विख्यात पार्वती का।

मन्दिर की बाहरी चारदीवारी ८५० फुट लम्बी और ७२५ फुट चौड़ी है। चारदीवारी में सभी दिशाओं में ठीक बीचों बीच एक एक गोपुर है, परन्तु मुख्य गोपुर पूर्व की ओर है। गोपुर कई मंजिलों के हैं। नीचे चौड़े और ऊपर हर मंजिल पर कुछ सँकरे होते जाते हैं। नीचे की मंजिल पत्थर की है और ऊपर ईंट की। मंजिल के चारों ओर मूर्तियाँ इतनी अधिक हैं कि तिल रखने को भी खाली जगह नहीं दिखाई देती।
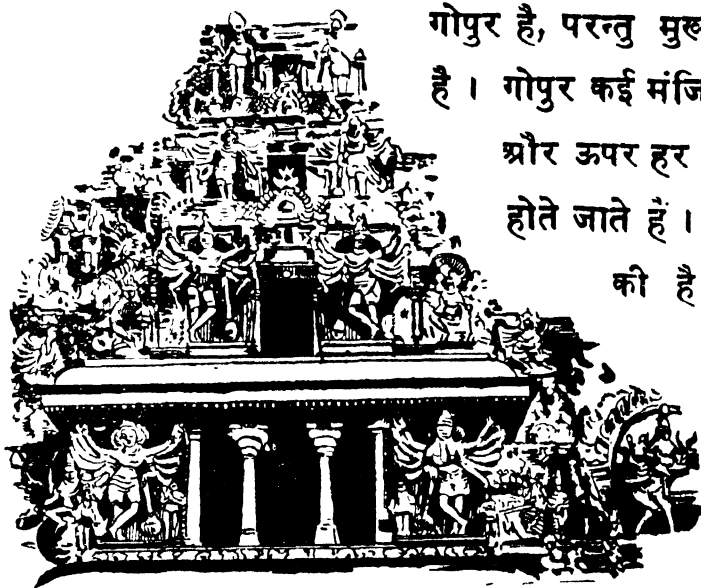
पूर्व के गोपुर से घुसते ही सामने एक खम्भों वाला खुला बरामदा

पड़ता है और उसके पीछे नन्दी मंडप है जिसमें शिवजी की सवारी नन्दी बैल की मूर्ति है। मन्दिर की दूसरी चारदीवारी की लम्बाई चौड़ाई १२०× ३१० फुट है और इसमें भी चारों ओर गोपुर हैं, किन्तु बाहरी चारदीवारी के गोपुरों से कुछ छोटे हैं। तीसरी चारदीवारी केवल २५०×१५६ फुट है और इसमें एक ही दरवाजा पूर्व की ओर है। असली मन्दिर इस चारदीवारी से घिरा है। मन्दिर के दो भाग हैं, भीतरी गर्भगृह जिसमें सुन्दरेश्वर महादेव की प्रतिमा है और उसके सामने खम्भों का मंडप जहाँ से लोग भगवान के दर्शन करते हैं। इन दोनों के बीच के रास्ते को अन्तराल कहते हैं। गर्भगृह की छत पर गुम्बद या कलश की शकल का एक छोटा शिखर या चोटी है।

मन्दिर के दक्खिनी भाग में शिव मन्दिर के बराबर पहली और दूसरी चारदीवारी के बीच में मीनाक्षी देवी अर्थात् पार्वती जी का मन्दिर है। मीनाक्षी का अर्थ है मछली जैसी सुन्दर आँखों वाली। यह पार्वती के बहुत सुन्दर रूप का नाम है, जैसे शिवजी के सुन्दर रूप का नाम सुन्दरेश्वर है। मीनाक्षी मन्दिर में गर्भगृह बीच में है और उसके चारों ओर खम्भों वाला मंडप है। इस मन्दिर की अलग चारदीवारी २२५×१५० फुट लम्बी चौड़ी है, किन्तु इसमें

सुनहली कमलिनियों वाला तालाब
और खम्भों वाला बरामदा

गोपुर दो ही हैं, पच्छिम और पूरब में। मीनाक्षी मन्दिर के सामने एक तालाब है जिसका तामिल नाम पोट्रामरई कुलम् अर्थात् सुनहली कमलिनियों वाला तालाब है। तालाब के चारों ओर खम्भोंवाला बरामदा है जिससे तालाब की शोभा बहुत बढ़ जाती है। इसकी छत पर रंग बिरंगे चित्र हैं जिनमें शिवजी के चौंसठ अनोखे कामों के दृश्य आंके गए हैं।

सुब्रह्मण्य अर्थात् शिव पार्वती के पुत्र कार्तिकेय का एक छोटा मन्दिर मीनाक्षी मन्दिर के द्वार की बगल में है। तालाब के पूरब में एक ऊँचा गोपुर है जिससे होकर दर्शक बाहर से सीधे ही भीतर के मन्दिर में आ सकते हैं। इस मन्दिर में कुल मिलाकर ११ गोपुर हैं। मन्दिर में कई मंडप हैं। उनमें से दो मंडपों की बात बता देना यहाँ काफी होगा। बाहरी चारदीवारी के भीतर उत्तर पूरब के कोने में सहस्र स्तम्भ मंडप है। इसमें खम्भों की संख्या ९८५ ही है, फिर भी इसे हजार खम्भों वाला कहा गया है। इसके खम्भों पर तरह तरह की मूर्तियाँ और बेल बूटे खुदे हैं और खम्भे इस खूबी से लगाए गए हैं कि उनकी पाँतों के बीच का दृश्य किसी ओर से भी देखने पर ऐसा लगता है जैसे एक लम्बा रास्ता हो। नायक वंश के राज्य की नीव डालने वाले विश्वनाथ के मन्त्री आर्यनाथ मुदली ने इस मन्दिर को सन् १५६० ई० के आसपास बनवाया था।

नायक राजाओं में तिरुमल नायक (१६२६ से १६५२ ई०) को इमारतें बनवाने का सबसे अधिक शौक़ था। मदुरा में उसका महल प्रसिद्ध है। इस मन्दिर में भी कुछ इमारतें बनवा कर उसने इसे काफी बढ़ा दिया। मन्दिर के मुख्य गोपुर के सामने सड़क की दूसरी ओर पुदु मंडप या वसन्त मंडप उसी का बनाया हुआ है। इसे तिरुमल की चोल्ट्री अर्थात्

पुदु मंडप का एक दृश्य
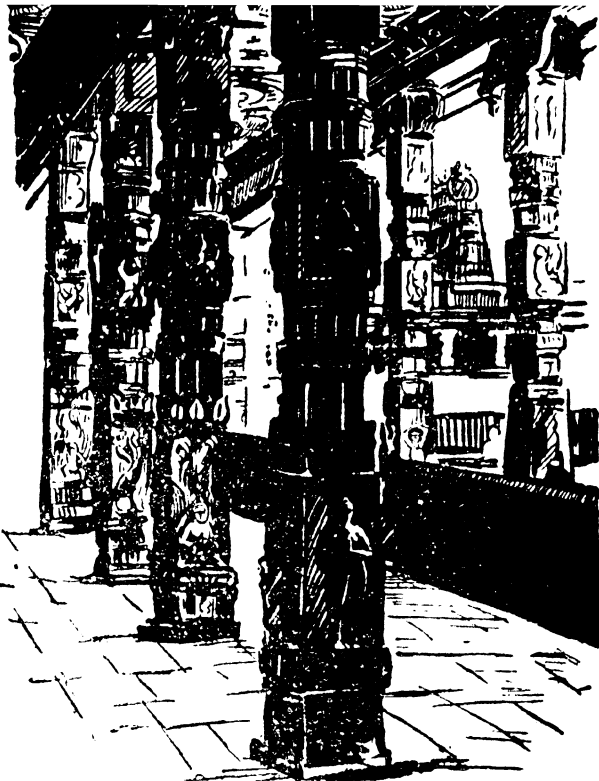
धर्मशाला भी कहते हैं। सन् १६२६ ई० से इसके बनाने में ७ साल लगे। यह मंडप लम्बे कमरे जैसा है। बीच के स्थान के दोनों ओर और दीवारों के साथ साथ खम्भों की पाँतें हैं। खम्भों में सुन्दर मूर्तियाँ और बेलबूटे तो हैं ही, साथ ही १० खम्भों पर नायक राजाओं की प्रतिमाएँ भी खुदी हैं।

मदुरा का मन्दिर बहुत अधिक स्थान घेरे हुए है। मन्दिर की चार दीवारी के भीतर दुकानें भी हैं। स्थापत्य कला अर्थात् मन्दिर की बनावट की शैली के विचार से तो यह मन्दिर सुन्दर और मन को मोहने वाला है ही, यहाँ की मूर्तिकला भी सुन्दर है। मन्दिर के खम्भों के सामने देवी देवताओं की बड़ी बड़ी मूर्तियाँ हैं। पशु पक्षी, तो ऐसे बनाए गए हैं जैसे पत्थर के न होकर सचमुच के हों। देवताओं की मूर्तियों और पशु पक्षियों को देखकर ऐसा लगता है जैसे मूर्तियाँ बनाने वालों ने पत्थर को खोदकर नहीं बल्कि हाथों से मींड़ कर या बड़े साँचों में ढालकर इन मूर्तियों को तैयार किया हो। इनमें उन पशुओं की मूर्तियाँ जिनका धड़ और सिर अलग अलग पशुओं के दिखाए जाते हैं, बहुत ही सुन्दर हैं। दीवारों और खम्भों पर बेलबूटे इस खूबी से खोदे गए हैं कि कपड़े पर कशीदे के काम

को भी मात करते हैं। देवी देवताओं की अलग मूर्तियों के सिवाय बहुत से दृश्य भी पत्थरों पर खोदे गये हैं। इन दृश्यों का सम्बन्ध रामायण, महाभारत या दूसरे पुराणों की कथाओं से है। यहाँ की मूर्तियों की किसी ने गिनती तो नहीं की, लेकिन कहा जाता है कि कुल मूर्तियाँ तीन करोड़ से भी अधिक हैं।

एक खम्भे पर खुदी राम और सीता की मूर्ति

मदुरा बहुत पुराने समय से द्रविड़ सभ्यता का खास केन्द्र रहा है। यहाँ पाँड्यों की राजधानी रही और चोल काल में यह एक खास नगर रहा। चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मुसलमानों ने इस पर अधिकार जमाया। लेकिन ५० साल बाद ही विजय-नगर के राजाओं ने इसे अपने राज्य में मिला लिया और नायकों ने फिर से इसे दक्खिन की राजधानी बनाया। ऐसे राजनीतिक उलट फेर होने पर भी मदुरा संस्कृति का केन्द्र बना रहा। मदुरा को इस गौरव के ऊँचे पद पर बैठाने में सुन्दरेश्वर और मीनाक्षी के मन्दिर का बहुत बड़ा हाथ है। इस समय हाथ के बुने कपड़ों के लिए भी मदुरा प्रसिद्ध है, लेकिन मदुरा का नाम सुनते ही यदि सुनने वाले के सामने कोई मूर्ति बरबस आती है, तो वह इस प्रसिद्ध मन्दिर की है।

३०

संगीत

घुमड़ते मेघों के स्वर पर जब मलार का राग अलापा जाता है, नदियों के किनारे जब वंशी की तान ऊँची उठती है, वीणा की झंकार जब रात के सन्नाटे में गूँजती है, तो सुनने वाला सुध बुध खो बैठता है। मनुष्य ही नहीं पशुओं और पक्षियों तक पर संगीत का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता।

संगीत का प्रकृति से बहुत ही गहरा सम्बन्ध है। मनुष्य ने प्रकृति से ही संगीत सीखा और अपने दुःख सुख के भावों को गीत में प्रकट किया।

संगीत का इतिहास बहुत ही मनोरंजक है। हर देश की अलग अलग दशा होती है। हर देश में अपने अपने ढंग से संगीत पनपा और बढ़ा।

यहूदी दुनिया की बहुत पुरानी कौम है। यहूदियों में संगीत का बड़ा मान था। उनके पैगम्बर बड़े संगीत प्रेमी थे। अब से कोई तीन हज़ार साल पहले उनके बीच संगीत की चर्चा होती थी। मिस्र की सभ्यता भी बहुत पुरानी है। वहाँ बाँसुरी पर गाने का खूब चलन था। मिस्र की कब्रों में बहुत ही सुन्दर बाँसुरियाँ मिली हैं। उनके यहाँ तीन तरह के बाजों का चलन था। उनमें एक बरबत भी था। झाँझ, मँजीरा और वायलिन जैसे बाजे उनके यहाँ न थे। त्योहारों और उत्सवों पर या किसी धर्म के काम के समय वे लोग नाचते गाते थे। राज दरबार में भी नाच गाना होता था। पेशेवर नाचने गाने वाले भी थे। नाच गाना सिखाने वाले स्कूल भी थे। अब से करीब ढाई हज़ार साल पहले यूनानियों ने मिस्र से गाने की विद्या सीखी।

मिस्र का ४ हज़ार साल पहले का बरबत

यूनान वाले पहले कविता और गाने को एक मानते थे। चारण या भाट जगह जगह घूमते रहते और गा गा कर कविता सुनाया करते थे। पिथागोरस ईसा से ५८२ वर्ष पहले हुआ था। पिथागोरस ने संगीत को ठीक रूप दिया। उसने दूर दूर की यात्राएं कीं। वह मिस्र भी गया और वहाँ से ठीक से संगीत सीख कर लौटा। अपने देश में आकर उसने संगीत को ताल स्वर में बाँधा और नियम कायदे बनाए। फिर तो नाटकों में भी गानों को जगह मिली। यूनान में तार वाले बाजों और फूंक कर बजाए जाने वाले बाजों का चलन था। यूनान वाले गाजे बाजे के साथ त्योहार मनाते थे। कोई २,४०० साल पहले तो ओलिम्पिक खेलों में जो यूनान

के राष्ट्रीय खेल थे, नगाड़े बजाने की होड़ होने लगी। इसी तरह एक खास त्योहार के समय बाँसुरी बजाने की भी होड़ होती थी। यूनानी बाँसुरी को शहनाई की तरह सीधी रख कर बजाते थे। एक बार एक बजाने वाले की बाँसुरी का मुंह किसी कारण से रुँध गया। उसने बाँसुरी टेढ़ी कर ली और बजाता रहा। तब से बाँसुरी को टेढ़ी करके बजाने का चलन हो गया।
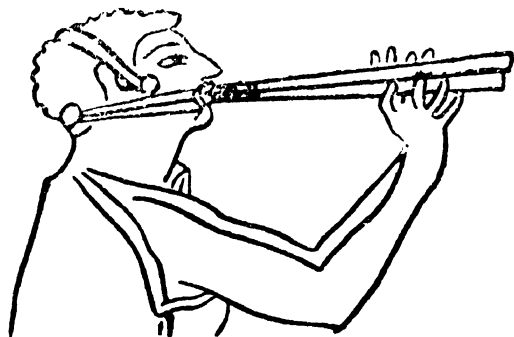
पुराने यूनान की दो मुंह वाली बाँसुरी। गालों पर चमड़े की पट्टी देखिए। यह इस लिए है कि हवा भरने से गाल न फट जाएं।

रोम ने संगीत का पाठ यूनान से पढ़ा, इसलिए वहाँ यूनान के ही बाजों का चलन रहा। वहाँ बाँसुरी का बहुत अधिक प्रचार हुआ। रोम में नाटक खेलते समय मीठी धुन में बाँसुरी बजाई जाती थी।

चीन वाले भी बहुत पुराने समय से संगीत प्रेमी हैं। कहते हैं कि चीन में संगीत का चलन महात्मा सिग लून ने किया। उन्होंने नदी के किनारे चिड़ियों के एक जोड़े को गाते सुना और उससे संगीत सीख कर उसका प्रचार किया।

हमारे देश के संगीत की भी कहानी बहुत अनोखी है। हमारे संगीत का अपना निरालापन है। भारत में कला और धर्म का चोली दामन का साथ है, इसीलिए संगीत को देवताओं से पैदा हुआ मानते हैं। कहते हैं कि भगवान शंकर ने पांच राग रचे, और पार्वती जी ने छठे राग की रचना की। हमारे संगीत में गाना, बजाना और नाच तीनों शामिल हैं।

सामवेद, दूसरे वेदों की ऋचाएँ और गाथाएँ कुछ गा कर पढ़ी जाती थीं और कुछ बिना गाए पढ़ी जाती थीं। पढ़ने में स्वर, ताल का ध्यान रखा जाता था।

ऋग्वेद में चार प्रकार के बाजों का वर्णन है। तार वाले बाजे, चमड़ा मढ़े हुए, धातु के और फूंक कर बजाए जाने वाले। अथर्ववेद में ताल स्वर के नियम बताए गए हैं। कई तरह के तारों वाले बाजों का वर्णन भी मिलता है। इनमें एक बाजा ऐसा था जिसमें १०० तार रहते थे। दमामों में भूमि दुन्दुभी खास थी। बलिदान के समय यह दुन्दुभी बजाई जाती थी। किसी गड्ढे पर चमड़ा फैला दिया जाता था। फिर किसी लकड़ी से चमड़े को पीटा जाता था।

धीरे धीरे नए नए बाजे निकलते गए और अनुभव से बजाने के नए नए ढंग भी निकले।

वेदों के समय के बाद सूत्रों का समय आता है। इस युग में कर्मकांड बहुत होते थे। कर्मकांडों में संगीत का खास स्थान था। इस काल में संगीत कला में और उन्नति हुई। इस समय तरह तरह के बाजे बजाने और उन्हें अलग अलग ढंग से बजाने की विधियाँ सोची गईं। इस समय के ग्रंथों में सौ तार की वीणा और अलबु वीणा के नाम मिलते हैं। लेकिन तब लोग संगीत को देवता की चीज़, बहुत पवित्र मानते थे। उसे अपने मनोरंजन की चीज़ न समझते थे।

इसके बाद रामायण, महाभारत का समय आया। संगीत पवित्र धार्मिक चीज़

भारत में तेईस सौ साल पहले प्रचलित वीणा।

तो अब भी रहा, लेकिन अब राज दरबारों में मनोरंजन का साधन भी बना। फल यह हुआ कि बड़े आदमी संगीत सीखने लगे और राजा लोग गवैयों का मान करने लगे। लेकिन संगीत को राज्य का सहारा तो मौर्यों के समय में मिला। गवैयों, बाजे बजाने वालों और नाचने वालों को राज्य से सहायता मिलने लगी।

कुशान वंश के सम्राट् कनिष्क के दरबार में महाकवि अश्वघोष रहते थे। वह कवि ही नहीं गायक भी थे। वह कविताएँ लिखते, फिर मंडली बना कर निकलते और लोगों को अपने गीत गा कर सुनाते थे।

अठारह सौ साल पहले की वीणा

गुप्त राजाओं का समय सुनहला समय माना जाता है। सचमुच यह समय सुनहला कहलाने का अधिकारी है। इस समय हमारे देश की कला और साहित्य की खूब उन्नति हुई। संगीत भी खूब बढ़ा। सम्राट् समुद्रगुप्त खुद संगीत प्रेमी और गायक थे। कुछ सिक्कों पर वे वीणा बजाते दिखाए गए हैं। इसी समय पुराण भी रचे गए थे। उनमें भी संगीत की चर्चा है। परन्तु संगीत पर सबसे अच्छा पुराना ग्रन्थ नाट्यशास्त्र है। इसकी रचना भरत मुनि

समुद्रगुप्त वीणा बजाते हुए

ने की है। उस समय संगीत के स्वर यति, मूर्च्छना और ग्राम में बाँटे जाते थे। फिर इन स्वरों को २१ विरामों में बाँटा जाता था। ये विराम श्रुति कहलाते थे। श्रुति का अर्थ है गीत का उतना भाग जो सुना जाता है। इन श्रुतियों के सहारे स्वर निर्माण किया गया था। भरत मुनि ने राग रागिनियों के बारे में कुछ नहीं लिखा। रागों की चर्चा तो बहुत बाद की चीज़ है।

हर्ष के समय में संगीत का बहुत ही अधिक मान था। नालन्दा विश्वविद्यालय में संगीत की शिक्षा मुफ्त दी जाती थी।

हर्ष के बाद के छः सौ साल भारत के इतिहास में बड़े परिवर्तन के थे। इसके बाद संगीत की चर्चा राजपूतों के दरबार में होती है। राजपूत राजा खुद संगीत जानते थे और कलाकारों का मान करते थे। पृथ्वीराज गाने और बजाने दोनों में बहुत प्रवीण थे।

तेरह सौ साल पहले की वीणा

अब तक हमने उत्तर भारत की चर्चा की है। अब तनिक दक्खिन भारत की ओर चलें। सातवीं और आठवीं सदी में दक्खिन में भक्ति आन्दोलन चला और पूरे देश में फैल गया। भक्ति आन्दोलन के फैलने में संगीत ने बड़ी सहायता पहुँचाई। भक्त कवियों ने जनता की समझ में आने वाली भा में गीत रचे और गा गा कर भक्ति का प्रचार किया। इस युग में मन्दिर संगीत के केन्द्र बन गए। मन्दिरों के पुजारियों और साधु सन्तों ने संगीत के प्रचार में बहुत हाथ बटाया।

दक्खिन भारत में भक्ति की जो लहर उठी, वह उत्तर भारत तक भी पहुँची। उत्तर भारत के गायक कवि जयदेव का नाम खास तौर से लिया जा सकता है। उनका 'गीत गोविन्द' बहुत सुन्दर गीत काव्य है। इसमें कृष्ण भगवान् की लीला मधुर पदों में गाई गई है। इस युग में संगीत के बहुत बड़े पंडित शार्ङ्गदेव हुए हैं। उन्होंने संगीत रत्नाकर नाम का एक बड़ा ग्रन्थ लिखा। शार्ङ्गदेव तेरहवीं सदी में हुए थे और दक्खिन के यादव राजाओं के दरबार में रहते थे।

भारत का परिचय मुस्लिम सभ्यता से होने पर फारस और अरब के संगीत का प्रभाव भारत के संगीत पर पड़ा। इस तरह संगीत विद्या के दो अलग अलग स्कूल बन गए—एक उत्तर भारत का संगीत, दूसरा दक्खिन भारत का संगीत या कर्नाटकी स्कूल।

चौदहवीं सदी के आरम्भ में अलाउद्दीन खिलजी के दरबार में एक बड़े कवि अमीर खुसरो थे। वे संगीत के बड़े जानकार थे। उन्होंने फ़ारस और अरब के संगीत को भारत के संगीत के साथ बड़ी ही सुन्दरता से मिलाया और बहुत सी नई नई मीठी धुनें निकालीं। ये धुनें पुराने हिन्दू संगीत से बहुत मिलती जुलती थीं। फिर भी ये उससे अलग थीं। खुसरो बहुत ही चतुर थे। उन्होंने कई बाजे भी निकाले। उन्होंने वीणा से सितार और मृदंग या पखावज से तबला ईजाद किया। अमीर खुसरो के समय में ही नायक गोपाल हुए हैं। बैजू बावरा भी इस समय के बहुत प्रसिद्ध गायक थे। उनका गाना सुनकर लोग तन बदन की सुध भूल जाते थे।

औरंगज़ेब के सिवा दूसरे सब मुग़ल बादशाह भी संगीत के बड़े प्रेमी

थे। उनके दरबारों में नामी गवैयों का जमघट लगा रहता था। अकबर तो इन सब से अधिक संगीत और कला के प्रेमी थे। प्रसिद्ध संगीतज्ञ तानसेन अकबर के दरबार के रत्नों में थे। इस समय बहुत से पुराने रागों में हेरफेर किया गया जैसे ध्रुपद।

मुहम्मद शाह रंगीले भी संगीत के बहुत बड़े प्रेमी थे। उनके दरबार के उस्ताद निआमत खां सदारंग का नाम सभी संगीत प्रेमी जानते हैं।

बैजू बावरा

तानसेन

उन्होंने संगीत की बड़ी उन्नति की। सदारंग गाने तो लिखते ही थे। उन्होंने ख़्याल को नए सुर में बाँधा। आजकल ख्याल उन्हीं के बाँधे सुर में गाया जाता है।

मुग़लों के समय में ही भारत में कई बड़े वैष्णव भक्त कवि हुए हैं। बंगाल में चैतन्य महाप्रभु थे जो भगवान श्री कृष्ण के अवतार माने जाते हैं। उत्तर प्रदेश में भक्त शिरो-

वीणा

शहनाई

सितार
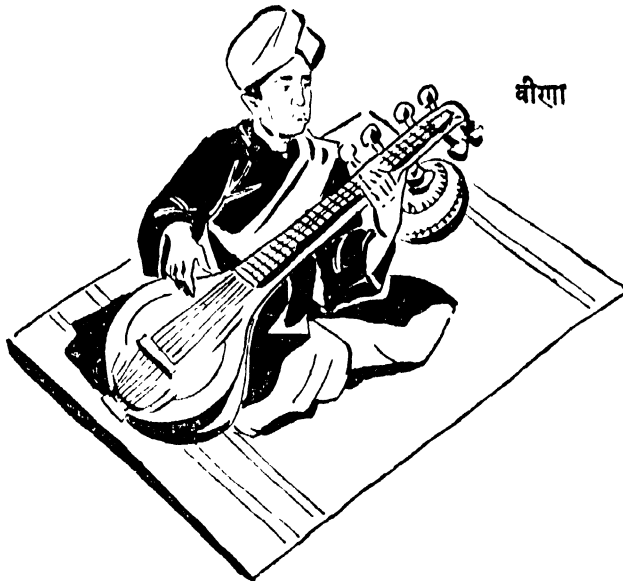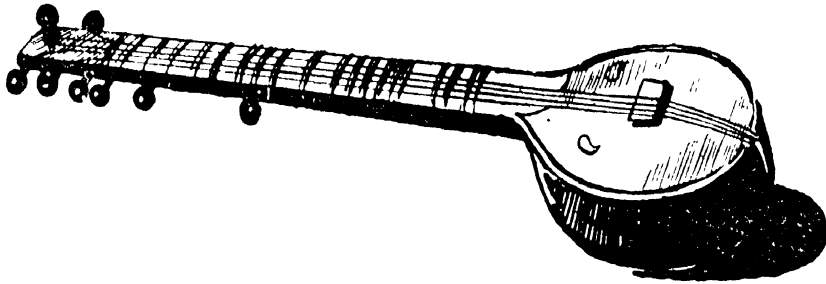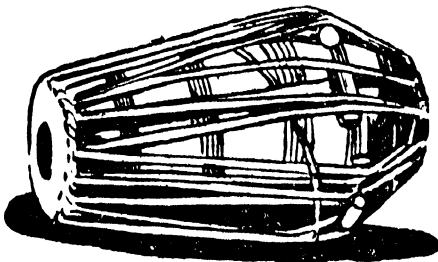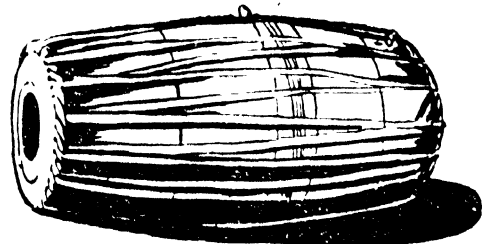
मृदंग

मणि तुलसीदास और सूरदास हुए थे। महाराष्ट्र में संत तुकराम और राजस्थान में मीरा बाई थीं। इन भक्तों से भी संगीत को बहुत बल मिला। इनके पद अलग अलग देशी ढंगों से गाए जाते थे। इस प्रकार बहुत से नए तर्जों का जन्म हुआ।

अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी भारत के इतिहास में बड़े परिवर्तन की रही। मुग़लों का राज्य टूट रहा था और अंग्रेजों का सिक्का जम रहा था। इस बीच संगीत को भारत के खास खास राजाओं और नवाबों ने सहारा दिया। इनमें लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। उस समय सभी बड़े बड़े गायकों ने दिल्ली से भागकर लखनऊ में शरण ली। यहीं संगीत के एक नए तर्ज ठुमरी का जन्म हुआ। परन्तु लखनऊ की भी दशा ठीक न रही और सभी गायक ग्वालियर, रामपुर, इन्दौर और दूसरी रियासतों में जा बसे। बाद में ये जगहें संगीत और नृत्य की अलग अलग शैलियों के केन्द्र बन गईं।

उन्नीसवीं सदी में राष्ट्रीय आन्दोलन चला। जनता जगी और सुगबुगाने लगी। संगीत पर भी इसका प्रभाव पड़ा। संगीत, नृत्य और नाटक राष्ट्रीय भावना के प्रचार के साधन बने। कांग्रेस के जलसों में राष्ट्रीय गीत एक खास तर्ज से गाया जाता। भातखंडे और विष्णु दिगम्बर जैसे संगीत

भातखण्डे

विष्णु दिगम्बर

के पंडितों ने संगीत में नए प्राण फूंकने का बीड़ा उठाया। १६१६ ई० में बड़ौदा में पहला संगीत सम्मेलन हुआ। इसमें उस समय की हालत पर अच्छी तरह विचार किया गया। अब हम जाग गए थे। अपनी कला और सभ्यता को पहचानने लगे थे। इसलिए यह माँग हुई कि ठीक ढंग से संगीत सिखाने का प्रबन्ध होना चाहिए। इसका फल यह हुआ कि गंधर्व महाविद्यालय और हिन्दुस्तानी संगीत सिखाने वाला मैरिस कालेज खुले।

भारत के संगीत का इतिहास तो बतलाया जा चुका। अब कुछ संगीत के रूप को भी जान लेना चाहिए। स्वर के उतार चढ़ाव के कुछ बँधे हुए नियमों के किसी खास गाने को राग कहते हैं। साल में छः ऋतुएं होती हैं। हर ऋतु का एक राग होता है। हर राग की पाँच रागिनियाँ होती हैं। इसी तरह हर राग के आठ पुत्र और आठ भार्या यानी पतोहुएं होती हैं। इन रागों को अलग अलग ठाठों में बाँधा गया है। परन्तु पंडित विष्णु नारायण भातखंडे ने इन रागों को १० 'ठाठों' में ही बाँधा है। हर राग का नाम किसी देवता, उस राग के बनाने वाले या उस राग के प्रेमी राजा के नाम पर रखा गया है। हर राग किसी खास ऋतु या रात दिन के किसी खास समय गाया जाता है। राग में कौन सा स्वर सबसे खास है, इसी के हिसाब से समय ठीक किया जाता है।

राग दो प्रकार के होते हैं—शुद्ध और संकीर्ण। शुद्ध राग में कोई और राग नहीं मिला रहता। जहाँ कई रागों को मिलाकर एक राग बनाया जाता है, उसे संकीर्ण कहते हैं। किसी राग के खास स्वर को वादी कहते हैं। यह पूरे राग पर छाया रहता है। उसके बाद जिस स्वर का सबसे अधिक प्रभाव होता है, उसे सम्वादी कहते हैं। जिस स्वर को राग

या रागिनी में बिलकुल छोड़ देते हैं, उसे विवादी कहते हैं ।

भारत के गाने कई तरह के हैं, जैसे ध्रुपद जिस के गाने वाले अब बहुत कम मिलते हैं, ख़्याल, टप्पा इसके गायक भी अब कम हैं, ठुमरी, ग़ज़ल, भजन और ग्राम गीत ।

इन पुराने संगीतों पर भी नए नए प्रभाव पड़ रहे हैं । कहा नहीं जा सकता कि आगे चल कर इनका यही रूप रहेगा या बदल जाएगा ।

जिस प्रकार भारत की सभ्यता कई कौमों की मिली जुली सभ्यता है, उसी प्रकार भारत के संगीत में भी कई देशों और कौमों का दान है । इस दान ने संगीत के भंडार को भरा है और उसमें बराबर निखार आया है ।
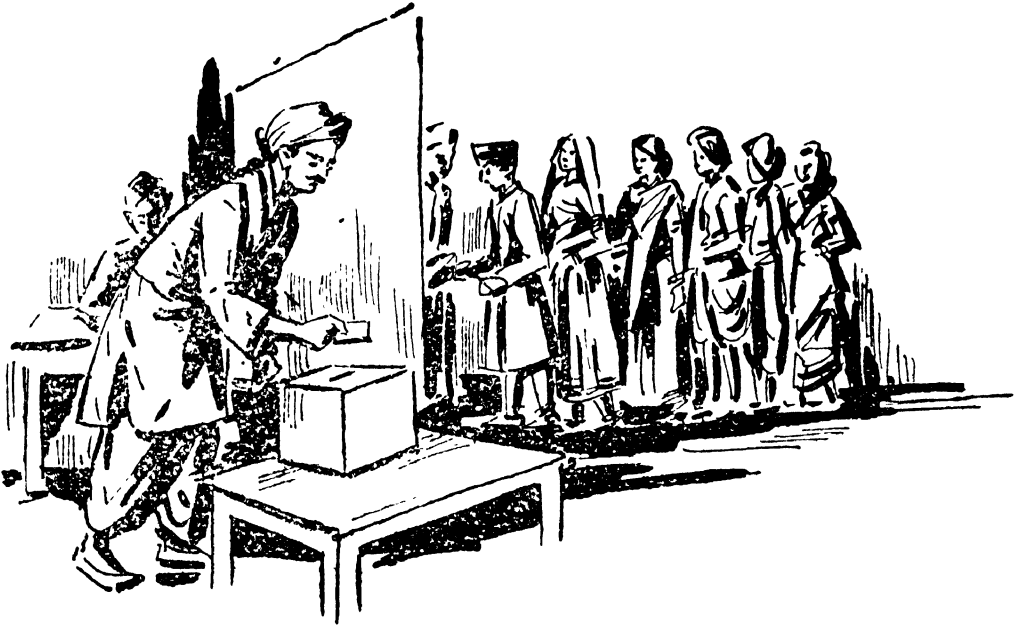
३१

राज्य प्रबन्ध के बदलते रूप

मनुष्य की गिनती गिरोह बनाकर रहने वाले प्राणियों में है। उसने धरती पर आने के समय से अब तक अनोखी उन्नति की है। इसका कारण मिल जुल कर रहना है। आदमी की उन्नति का इतिहास उसके मिल जुल कर रहने का इतिहास है। शुरू से ही मनुष्य कोशिश करता रहा है कि कैसे आदमी आदमी और टोली टोली के आपसी सम्बन्धों को अच्छा बनाएं और पूरे समाज को एक सूत्र में बांध दें।

पहले लोग छोटे छोटे समूह या टोलियां बनाकर रहते थे। शिकार

श्रौर ढोर चराना उनका काम था। शिकार या चरागाहों की खोज में ये टोलियाँ इधर उधर घूमा करती थीं। उस समाज में कोई भी चीज़ किसी एक श्रादमी की न थी। सब चीज़ें पूरी टोली की थीं। एक एक टोली एक एक वंश या कुनबा कहलाती। ये वंश श्राज जैसे छोटे छोटे न थे। एक एक वंश में बहुत लोग थे। कभी कभी वंश बढ़ जाने पर कई टोलियों में भी बँट जाता था।

एक ही वंश की टोलियाँ कभी कभी किसी जगह जत्थों में इकट्ठी हो जाती थीं। वैदिक समय में इस तरह इकट्ठा होने को 'ग्राम' कहते थे।

जब लोगों ने खेती बाड़ी करनी शुरू की, तो घर बनाकर बसने लगे। जिस ज़मीन पर श्रधिकार करते, वहाँ बस्तियाँ बनाकर रहने लगते। एक एक वंश की टोलियाँ कई बस्तियों या 'ग्रामों' में बस गईं श्रौर इस तरह 'कबीले' बन गए। हमारे देश में पुराने ज़माने में 'कबीलों' को 'जन' कहते थे श्रौर जिस इलाके में कबीले के लोग बस गए हों, वह 'जनपद' कहलाता था।

पहले टोलियों के पास न ज़्यादा धन था, न कमाने के बड़े साधन। इसलिए जो कुछ था, सब पर पूरी टोली का श्रधिकार था। सब को श्रपने हिस्से का काम करना पड़ता था, क्योंकि उसके बिना टोली का जीना दूभर हो जाता। लेकिन कमाने के साधन बढ़ने श्रौर श्रच्छे होने के साथ साथ कुछ लोगों ने इन पर श्रधिकार करना श्रारम्भ किया। निजी धन के साथ साथ समाज में लोगों के श्रधिकारों श्रौर कर्तव्यों का झगड़ा चला। ज़मीनों, पशुश्रों श्रौर हथियारों के लिए श्रलग श्रलग टोलियों में लड़ाइयाँ

भी होने लगीं। लड़ाइयों में सेना की अगुवाई, बस्तियों के प्रबन्ध और लोगों की निजी सम्पत्ति के अधिकारों की रक्षा के लिए और आपसी झगड़े निबटाने के लिए 'राज्य' की ज़रूरत जान पड़ी।

वेदों में ऐसा वर्णन मिलता है कि राजा की ज़रूरत युद्धों के कारण हुई और राजा का चुनाव किया गया।

उस समय देश छोटे छोटे राज्यों में बटा था। बहुत से राज्यों में 'गणतन्त्र' ढंग का राज्य रहा। ये गणतन्त्र दो प्रकार के थे। कुछ ऐसे थे जहाँ सब नागरिक एक सभा में इकट्ठे होकर राज काज चलाते थे। गण के मुखिया का भी सब मिलकर चुनाव करते थे। इन नागरिकों को पूरी स्वतन्त्रता थी। इन लोगों में बाक़ायदा वोट 'छन्द' लेने, नियम के साथ प्रस्ताव 'ज्ञप्ति' पेश करने और भाषण देने का चलन था। जब किसी बात का निबटारा न हो पाता तो उस पर विचार करने के लिए कमेटी 'उद्वाहिका' बनाई जाती। कुछ दूसरी तरह के थे उनमें परिवारों या गोत्रों के मुखिया 'बुद्ध' इकट्ठे होकर राज काज चलाते थे।

वैदिक युग के 'जन राज्य' या गण राज्य बाद में 'राज्य' या 'जनपद' कहलाने लगे। जनपदों को जीत कर 'महाजनपद' बनाए गए। भारत में मौर्य साम्राज्य से तीन चार सौ साल पहले कई 'जनपद' थे और सोलह बड़े बड़े जनपद या 'महाजनपद' बन गए थे। मगध के सम्राटों ने इन महाजनपदों और दूसरे जनपदों को जीत कर साम्राज्य की नींव रखी। मौर्य सम्राट् साम्राज्य बना कर पूरे राष्ट्र को एक करना चाहते थे।

भारत से बाहर पच्छिमी देशों में भी राज्य संस्था का विकास लगभग इसी रीति से और लगभग इसी समय में हुआ।

यूनान में छोटे छोटे कबीलों के कई 'जन राज्य' बने। एथेन्स, स्पार्टा, कारिन्थ वगैरा नगरों में छोटे छोटे राज्य थे। इन राज्यों की संख्या सैकड़ों में थी। राजकाज का ढँग अलग अलग था। कुछ राज्यों में गण-तन्त्रों को मिटा कर बली लोग खुद राजा बन गए थे। पर दूसरे बहुत से राज्यों में लोक तन्त्र के ढँग पर राजकाज चलता था। उदाहरण के लिए एथेन्स यूनान का एक खास नगर राज्य था जहाँ सब नागरिक इकट्ठे होकर अपना शासन चलाते थे। सभी बातें अधिक लोगों की राय से तय होती थीं। 'लोक सभा' में हज़ारों नागरिक बैठते थे। इन नागरिकों को भाषण देकर अपनी तरफ़ खींचने के लिए भाषण देने का खूब अभ्यास
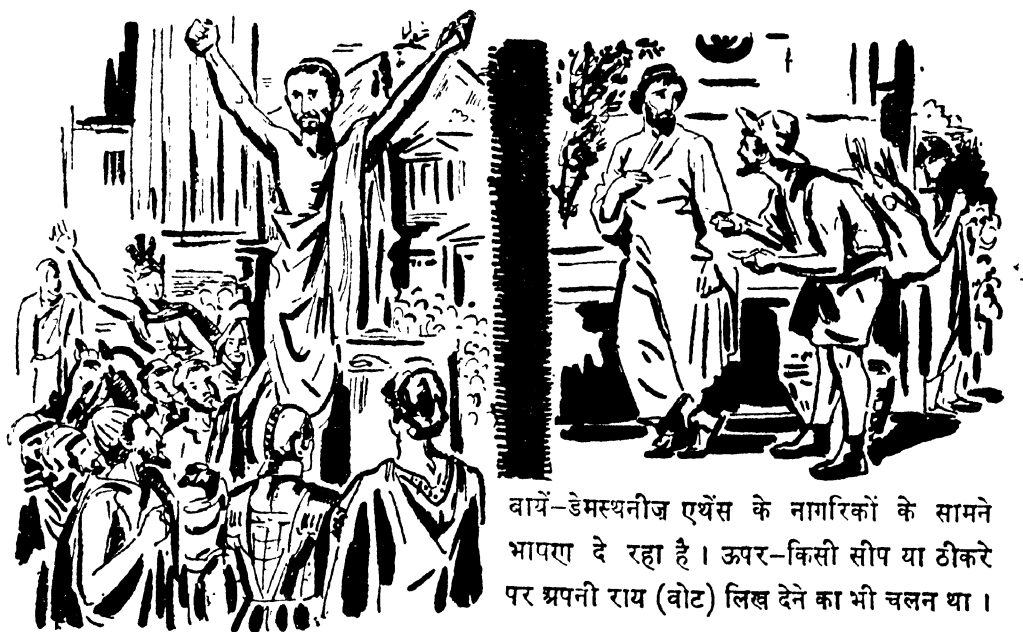
बायें—डेमस्थनीज़ एथेंस के नागरिकों के सामने भाषण दे रहा है। ऊपर—किसी सीप या ठीकरे पर अपनी राय (वोट) लिख देने का भी चलन था।

किया जाता था। वोट के समय नागरिक 'हाँ' या 'न' कह कर अपनी राय देते थे। जिसके पक्ष में आवाज़ ऊंची सुनाई पड़े, वह जीता हुआ माना जाता था। इसलिए लोगों को समझाया जाता था कि खूब चिल्ला कर

वोट दो। कानून सब नागरिकों को समान मानता था, इसलिए अफ़सर रखने के लिए लाटरी डाली जाती थी।

स्पार्टा में नागरिकों को स्वस्थ और मज़बूत बनाने पर बहुत अधिक ध्यान दिया जाता था। वे लोग छोटी आयु के बालकों को माता पिता से अलग कर विद्यालयों में भेज देते थे। वहाँ उन्हें बहुत कठोर नियम कायदे मानने पड़ते थे। परन्तु यहाँ का शासन कुछ ख़ास घरानों के ही हाथ में था, साधारण जनता के हाथ में नहीं। ये ख़ास घराने अपने को जनता से बड़ा और कुलीन मानते थे।

रोम में भी कई नगर राज्य थे जिनमें प्रजा राज्य के अफ़सरों का चुनाव करती थी। यहाँ भी अधिकतर राज्यों में राजकाज कुछ कुलीन परिवारों के हाथ में था। रोम में जनता और कुलीनों का भेद इतना बढ़ गया कि जनता ने इसका बहुत विरोध किया।

ईसा से कोई तीन सौ साल पहले भारत, यूनान और रोम सब जगह छोटे छोटे गणतन्त्रों और लोक तन्त्रों का अन्त हो गया और सम्राटों ने छोटे छोटे राज्यों को जीत कर साम्राज्य बनाने शुरू किए। यूनान में सिकन्दर, भारत में मौर्य सम्राट् और रोम में जूलियस सीज़र ने अपने अपने साम्राज्य बना लिए।

सिकन्दर

जूलियस सीज़र

सामन्त शाही :

इस तरह के साम्राज्य बनने के बाद सामन्त शाही का जन्म हुआ।

पराक्रमी सम्राट् सेना के बल पर बहुत से देशों को जीत कर अपने अधीन तो कर लेते थे, परन्तु उस ज़माने में ऐसे साधन न थे कि इन साम्राज्यों के दूर दूर के इलाकों का प्रबन्ध राजधानी से चलाया जाय। इसलिए सम्राट् दूर दूर के इलाकों में अपने सूबेदार रख लेते थे। ये सूबेदार या सरदार अपने इलाके में शासन करते थे, सेनाएं रखते थे और जनता से कर वसूल करते थे। शर्त यह थी कि ये लोग एक बँधी हुई रकम सम्राट् के ख़ज़ाने में हर साल जमा करें और लड़ाई के समय अपनी सेनाएं लेकर सम्राट् की सहायता को जाएं। परन्तु अक्सर बलवान सम्राटों के मरने के बाद साम्राज्य को कमज़ोर देखकर ये सरदार स्वतन्त्र हो जाते थे और फिर छोटे छोटे राज्य बना लेते थे। हमारे देश में मौर्य साम्राज्य बनने से लेकर मुगल साम्राज्य के अन्त तक बराबर ऐसा होता रहा। दुनिया के दूसरे देशों का भी यही हाल था।

आज के राज्य :

अठारहवीं सदी में यूरोप में विज्ञान की कुछ नई खोजें हुईं। इनमें भाप का इंजन मुख्य है। उसने समाज का काया पलट कर दिया। नए नए कल कारखाने खुले। इन कल कारखानों ने एक नया आन्दोलन छेड़ा। इस आन्दोलन ने सामन्तों का अन्त कर दिया और नए ढंग की सरकारें सामने आईं। इन सरकारों को जनता अपने चुने हुए लोगों के जरिए चलाने लगी।

राज्यों के रूप :

शुरू से ही राज काज चलाने के ढंगों में हेर फेर होते रहे हैं। राज्यों के चार रूप हमारे सामने हैं।

१—राज तन्त्र : इस शासन की बागडोर एक ग्रादमी के हाथ में रहती है। वह ग्रादमी ग्रपनी इच्छा से ग्रपनी समझ के ग्रनुसार राज चलाता है। ऐसा शासन स्वेच्छाचारी यानी एक ग्रादमी की इच्छा से चलने वाला भी कहलाता है। पुराने राजे महाराजे ग्रक्सर स्वेच्छाचारी थे ग्रौर उनका शासन "राजतन्त्र" कहलाता था।

२—वर्ग या श्रेणीतन्त्र : इसमें शासन किसी एक ग्रादमी के हाथ में नहीं रहता, बल्कि किसी खास जमात के हाथ में रहता है, जैसे कुछ कुल या परिवार मिलकर यह काम करते हों, तो इसे वर्गतन्त्र कहेंगे।

३—ग्रधिनायक तन्त्र : कोई ग्रादमी ग्रपने साहस, शासन करने की योग्यता, वीरता ग्रादि गुणों से सारी जनता को वश में करके या जोर जबरदस्ती, चालाकी, होशियारी से जनता के हाथों से सारी ताकत ग्रपने लिए माँग ले, ग्रौर फिर ग्रपनी मर्जी से शासन करे, तो इसे ग्रधिनायक तन्त्र या डिक्टेटरी कहते हैं। जर्मनी में हिटलर ग्रौर इटली में मुसोलिनी का शासन इसी प्रकार का था। पुराने समय में रोम में जूलियस सीजर ने ग्रौर फ्रांस में नेपोलियन ने ऐसे ही ग्रधिकार पा लिए थे।

४—लोकतन्त्र : ऊपर बताए तीनों ढंगों का शासन ग्राजकल ग्रच्छा नहीं माना जाता। ग्राज के संसार ने लोकतन्त्र को ग्रपनाया है। इस का ग्रर्थ यह है कि राज्य का प्रबन्ध लोगों की राय

से हो। जनता बिना किसी दबाव के अपनी मर्जी से मनचाहा हेर फेर कर सके। जनता खुद अपने राज्य की मालिक हो।

प्रतिनिधि तन्त्र :

लोक तन्त्र शासन कई प्रकार का हो सकता है। पुराने नगर राज्यों और 'गण तन्त्र' राज्यों के उदाहरण ऊपर दिए जा चुके हैं। वे छोटे छोटे राज्य थे। इसलिए सब लोग एक जगह बैठकर अपना मत देते थे। परन्तु आज के राष्ट्र यूनान और रोम के गण राज्यों जैसे छोटे छोटे नहीं हैं जहाँ नागरिक एक संथागार या लोक-सभा में इकट्ठे होकर शासन प्रबन्ध की हर बात पर मत दे सकें। इस कारण से "प्रतिनिधि तन्त्र" चला। आज के लोक तन्त्रों में जनता अपनी इच्छा का प्रतिनिधि चुन देती है। ये प्रतिनिधि थोड़े समय के लिए चुने जाते हैं। वह समय बीत जाने पर फिर प्रतिनिधियों का चुनाव होता है और जनता को मौका मिलता है कि सोच समझ कर जिसे चाहे, उसे प्रतिनिधि चुने।
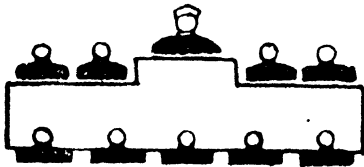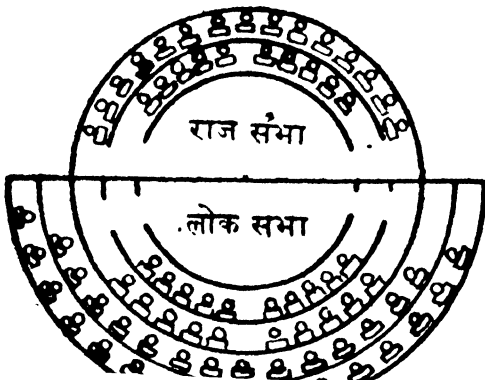
भारत में प्रतिनिधि तन्त्र सरकार का रूप

दल :

देश का शासन किस तरह चलाना ठीक होगा, इस पर लोगों की अलग अलग रायें होती हैं। एक राय या विचार वाले लोग मिलकर दल बना लेते हैं। चुनाव में अलग अलग दल वाले आदमी खड़े करते हैं। जनता सबकी बातें सुनती है। फिर जिसे वह पसन्द करती है उसे वोट देती है। लोकतंत्र शासन में कई दल ज़रूर रहते हैं।

धारा सभा :

जनता के चुने हुए प्रतिनिधि एक जगह इकट्ठे होकर शासन का काम चलाते हैं। प्रतिनिधियों की यह सभा कई नामों से पुकारी जाती है जैसे धारा सभा, विधान सभा, संसद, एसेम्बली या पार्लमेंट। यह सभा कानून बनाती है और इस बात की देखभाल करती है कि राज काज उसकी इच्छा के अनुसार होता है या नहीं।

मंत्रि मंडल :

ऊपर बताया गया है कि कई दल के लोग चुनाव लड़ते हैं। ऐसा हो सकता है कि किसी दल के ज्यादा और किसी के कम प्रतिनिधि चुने जाएँ। सभा में जिस दल के प्रतिनिधि अधिक होते हैं उस दल के नेता को शासन का भार सौंपा जाता है। वह अपने साथी चुनकर मंत्रिमंडल बनाता है। ये मन्त्री शासन के कामों का बंटवारा कर राजकाज चलाते हैं। परन्तु सब मन्त्री दल के नेता की बात मानकर एक 'टीम' की तरह काम करते हैं। जब तक मंत्रिमंडल पर प्रतिनिधियों के अधिक लोगों का विश्वास रहता है, मन्त्रिमंडल शासन का काम चलाता है। अगर प्रतिनिधि सभा के अधिक लोग कभी कह दें कि उनका मंत्रिमंडल पर विश्वास नहीं, तो उसको

तुरन्त हट जाना पड़ता है। फिर प्रतिनिधि सभा में जिस दल के अधिक लोग होते हैं, वह मंत्रिमंडल बनाता है।

प्रतिनिधि सभा अगर सरकार के खर्च के प्रस्ताव को रद कर दे, या सरकार के किसी खास प्रस्ताव को मानने से इन्कार कर दे, तो ऐसा समझा जाता है कि प्रतिनिधियों को मंत्रिमंडल पर भरोसा नहीं रहा।

परन्तु अगर मंत्रिमंडल यह समझे कि देश की जनता उसके साथ है और प्रतिनिधि सभा जनता की ठीक मुखियाई नहीं कर रही, तो वह प्रतिनिधि सभा को तोड़ कर फिर से चुनाव करा सकता है। नया चुनाव होने से यह बात साफ़ हो जाती है कि देश की जनता में से अधिक लोग किस नीति को पसन्द करते हैं।

राज्य का प्रधान :

प्रतिनिधि और मंत्रिमंडल चुनावों में बदलते रहते हैं, परन्तु राजकाज बराबर ठीक से चलता है। देश की भलाई के लिए यह जरूरी है कि मंत्री और प्रतिनिधि चाहे जो हों, राजकाज बराबर ठीक से चलता रहे। यह काम राज्य के कर्मचारी करते हैं। वे राज्य की मशीन के पुर्जे कहलाते हैं। कोई भी दल मंत्रिमंडल बनाए, इन कर्मचारियों का काम होता है बिना भेदभाव और पक्षपात के अपना काम करते रहना। इन्हें जो कुछ कहा जायगा, करेंगे। इनके विचार कुछ हों, ये अपनी टांग नहीं अड़ाएंगे।

परन्तु शासन की मशीन पर कर्मचारियों का अधिकार नहीं होता। पूरे राज्य का भार राज्य के प्रधान पर होता है। उसकी आज्ञा से सब काम होते हैं। कहीं कहीं पुराने राजा ही राज्य के प्रधान हैं। उनके अधिकार जरूर बहुत कम कर दिए गए हैं, जैसे इंग्लैंड में। जहाँ ऐसा नहीं है, वहाँ

कुछ समय के बाद जनता या उसके प्रतिनिधि इस पद के लिए किसी योग्य आदमी का चुनाव करते हैं, जैसा भारत में है।

राजा, प्रधान या राष्ट्रपति राज्य का सिरताज होता है। राज्य की सेना, खजाना और सारी शक्ति पर उसका अधिकार होता है। उसके नाम से ही सब राज काज चलता है, परन्तु उसके कुछ अधिकार रहते हैं। उन्हीं के भीतर मंत्रिमंडल की सलाह से वह सब हुक्म देता है।

आदमी अपने समाज को ठीक रखने और उन्नति करने के लिए राज प्रणाली में बराबर हेर फेर करता हुआ आज लोकतंत्र की मंजिल पर पहुँचा है। लोकतंत्र में जनता के प्रतिनिधि जनता के लिए शासन करते हैं। जनता की चौतरफ़ा उन्नति और व्यक्ति को पूरी आज़ादी लोकतंत्र के उसूल हैं।

३२

खुले मैदान के खेल

खेल दो तरह के होते हैं। खुले मैदान के खेल और घर के खेल। घर के खेलों का उद्देश्य अधिकतर मन बहलाव होता है, जैसे ताश, शतरंज, गंजफ़ा, चौपड़, कैरम, टेबुल टेनिस वगैरा।

हर खेल के कुछ नियम होते हैं। नियम खेल की जान हैं। टोली का नायक या कप्तान किसी खिलाड़ी को मैदान में जो जगह सौंप दे, उस पर जी जान से डट जाना उस खिलाड़ी का धर्म हो जाता है। खेल के मैदान में कोई जगह छोटी या बड़ी नहीं होती। छुटपन या बड़प्पन अपनी जगह पर सुस्त पड़ जाने या डट जाने में है। अब हम आपको खुले मैदान के कुछ बड़े खेल बतलाएँगे।

१—फुटबाल

यह खेल शुरू में रोम में खेला जाता था। ब्रिटेन वालों ने यह खेल उन्हीं से सीखा। इस में ग्यारह ग्यारह खिलाड़ियों की दो टोलियाँ या टीमें होती हैं। यह खेल एक घंटे का होता है। मैदान के दोनों सिरों पर आमने सामने दो दो बल्लियां लगा दी जाती है। इन दोनों बल्लियों के बीच की जगह गोल कहलाती है। गेंद को इन बल्लियों के बीच से बाहर करने से जीत होती है। इनके बीच से गेंद को निकालना गोल करना कहलाता है।

फुटबाल के खेल में दोनों टीमें अपने अपने खिलाड़ियों को इस प्रकार खड़ा करती है। एक एक खिलाड़ी गोल पर खड़ा रहता है। इसे गोल कीपर यानी गोल का रखवाला कहते हैं।

इसके आगे दाहिनी और बाईं ओर एक एक खिलाड़ी रहते हैं। इनको फुल बैक यानी पीछे रह कर गोल की रक्षा करने वाले कहते हैं।

फुल बैकों के आगे तीन आदमी और खड़े रहते हैं। एक एक दाहिने बायें और एक बीच में। इनको हाफ़ बैक यानी अपने पाले के अधियारे पर रक्षा करने वाले कहते हैं।

इनके आगे दोनों टीमों के पांच पांच खिलाड़ी रहते हैं। ये फार्वर्ड यानी अगुवा कहलाते हैं। दोनों टीमों के फार्वर्ड पूरे मैदान में बढ़ कर खेलते हैं।

मैदान के बीचों बीच एक लकीर खिची रहती है। खेल शुरू होते समय दोनों तरफ़ के फार्वर्ड इस लकीर के पास अपने अपने पाले में खड़े हो जाते हैं। तब चमड़े की एक गेंद लाकर इस लकीर के बीचों बीच रखी जाती है। एक आदमी खेल की निगरानी के लिए रहता है। इसे रेफरी

फुटबाल का मैदान

गोल
गोलची
लाइन
गोल एरिया
पेनल्टी एरिया
लेफ़्ट बैक
राइट हाफ़
सेन्टर हाफ़
लेफ़्ट हाफ़
राइट आउट
राइट इन
सेन्टर फार्वर्ड
लेफ़्ट इन
लेफ़्ट आउट
आधे फ़ील्ड
१० गज
की लाइन
११५ गज
४४ गज
१८ गज
२० गज
६ गज
८ गज
१८ गज
७५ गज
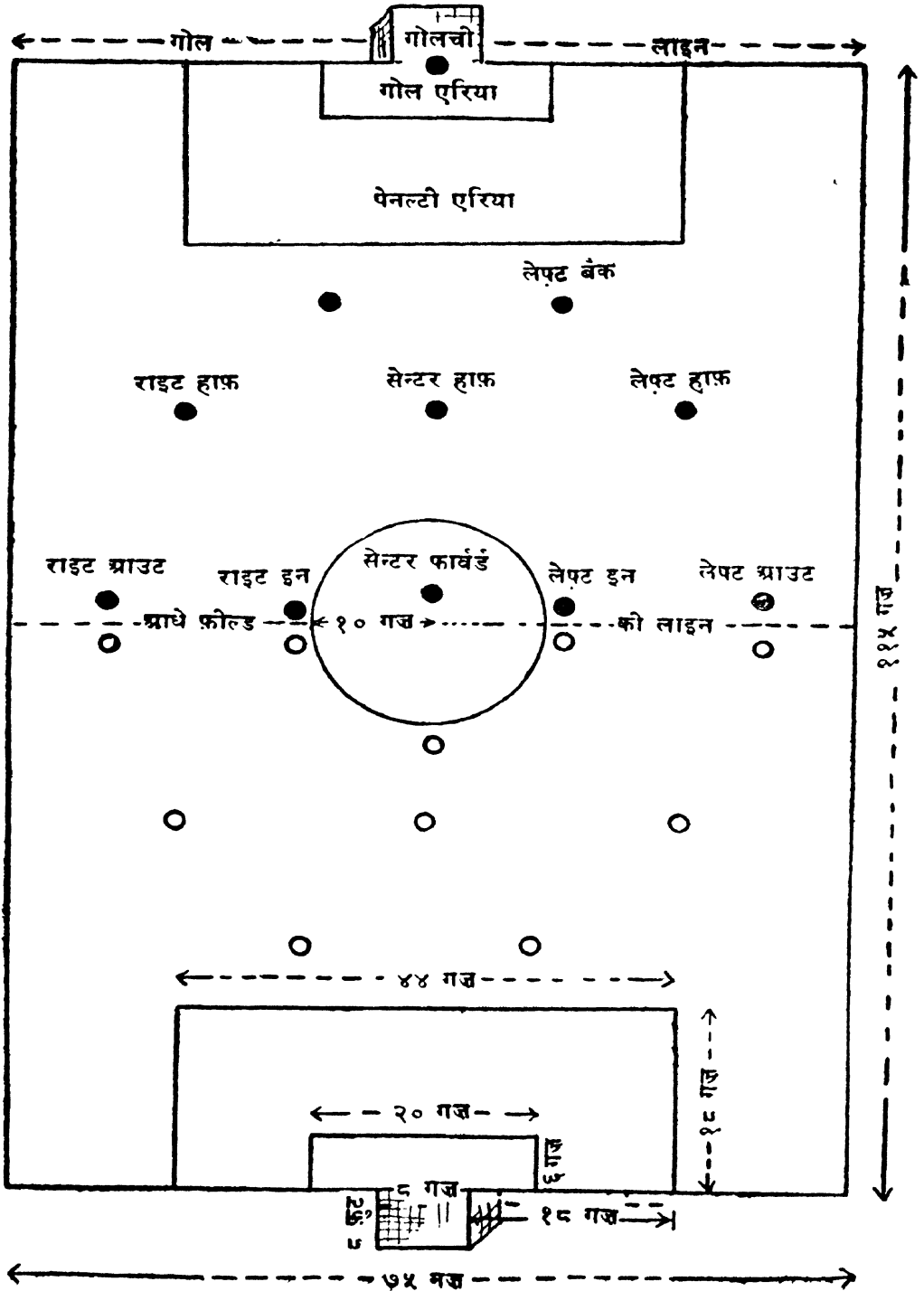
कहते हैं। रेफरी के सीटी बजाने पर खेल शुरू होता है। जिस टीम की बारी होती है, उसका बीच वाला फार्वर्ड पैर से गेंद को ठोकर मारता है। इसे किक लगाना कहते हैं। इसके बाद खेल आरम्भ हो जाता है।

दोनों टीमें कोशिश करती हैं कि गेंद उनके पाले में न आने पाए और वे उसे किक करती हुई दूसरी टीम के गोल की तरफ़ ले जाएं और गोल कर दें। फार्वर्ड गेंद को दूसरी टीम के पाले की तरफ़ बढ़ाते हैं। दूसरी टीम के फार्वर्ड रोकते हैं। अगर वे चूक गए, तो हाफ़ बैक रोकते हैं। अगर गेंद उनसे भी न रुकी, तो फुल बैक रोकते हैं। यदि वे भी न रोक सके, तो गोल कीपर पैर से किक लगाकर या हाथ से पकड़ कर गेंद को दूसरे पाले की ओर फेंक देता है। जब गोल कीपर भी नहीं रोक पाता और गेंद गोल के बीच से निकल जाती है, तो जिसके गोल से गेंद निकल जाती है, वह टीम हार जाती है।

गोल कीपर के अलावा और कोई खिलाड़ी गेंद को हाथ से नहीं छू सकता। गेंद को मैदान के चौगिर्दा या सीमा के भीतर रखना पड़ता है। उसके भीतर ही खेल होता है।

इस खेल के खिलाड़ियों में ताकत होनी चाहिए। फार्वर्डों को दौड़ने का भी अभ्यास होना चाहिए। पूरी टीम का मिलकर खेलना भी जरूरी है। कोई खिलाड़ी गेंद को अपने पास न रखे, बल्कि दूसरे पाले के खिलाड़ी के पास आते ही अपने दूसरे साथी को बढ़ा दे। इस तरह एक दूसरे को गेंद देते हुए गोल तक ले जाए।

भारत में कलकत्ते की कई टीमें फुटबाल में बहुत प्रसिद्ध हैं। मोहन बगान और ईस्ट बंगाल के नाम खास तौर पर लिए जा सकते हैं।

१—हाकी

हाकी में हिन्दुस्तान ने काफ़ी नाम कमाया है। १९२८ ई० से अब तक हमारा देश संसार के सब देशों से हाकी में विजयी रहा है। ध्यानचन्द हाकी का जगत प्रसिद्ध खिलाड़ी है। उसे जादूगर कहते हैं। इंडियन हाकी एसोसियेशन की स्थापना १९२० ई० में हुई थी। यह संस्था हाकी में हमारे देश की शिरोमणि संस्था है। इससे पहले १८९६ ई० में आगाखां हाकी टूर्नामेंट की स्थापना हो चुकी थी और इससे हिन्दुस्तान में हाकी के खेल को काफ़ी उत्साह मिला था।

भारत में यह खेल यूरोप से आया। यूरोप में हाकी का चलन बहुत पुराना है। इंग्लैंड में एक समय लोगों को हाकी खेलने का शौक इतना बढ़ा कि स्त्रियों का भी हाकी असोसियेशन बनाया गया।

हाकी का खेल फुटबाल के खेल से अनेक बातों में मिलता है। इस में भी ग्यारह ग्यारह खिलाड़ियों की दो टीमें होती हैं। हाकी के खिलाड़ी भी फुटबाल के खिलाड़ियों की तरह खड़े होते हैं। पांच आगे बढ़ने के लिए और छः बचाव के लिए रहते हैं।

हाकी पैर से नहीं खेली जाती। हाकी खेलने के लिए लकड़ी का एक डंडा होता है। इसे स्टिक कहते हैं। इसकी गेंद छोटी और कड़ी होती है। गेंद डंडे से मारी जाती है। स्टिक वज़न में १८ से २४ औंस तक होती है। गोल कीपर और बैक भारी स्टिक से खेलते हैं और फ़ारवर्ड हल्की से।

इस खेल में हाथों की जादूगरी और पैरों की फुर्ती देखने लायक होती है। आगे बढ़ने वाले एक ओर के खिलाड़ी गेंद को अपनी स्टिक के सहारे ऐसे चलाते हैं जैसे गेंद डंडे के साथ चिपकी हुई हो। दूसरी ओर के खिलाड़ी

हाकी का मैदान

गोलची
राइट बैक
लेफ्ट बैक
२५ गज की लाइन
७ गज
राइट हाफ़
सेन्टर हाफ
लेफ्ट हाफ
राइट आउट
राइट इन
लेफ्ट इन
लेफ्ट आउट
सेन्टर फार्वर्ड
१०० गज
२५ गज की लाइन
१५ गज
४ गज
५५ से ६० गज
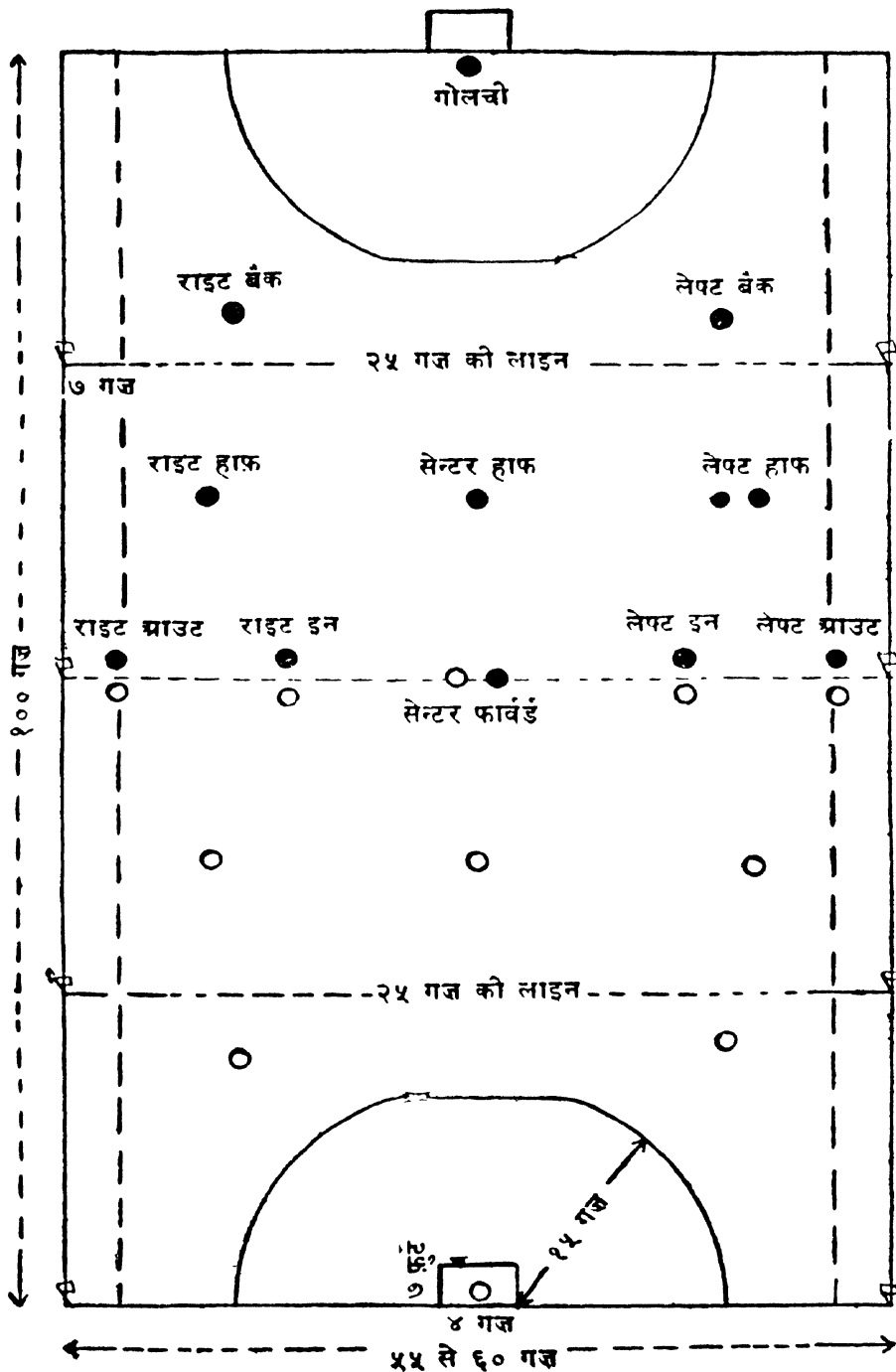
के सामने पड़ते ही उसे पलक मारते अपने दूसरे साथी के पास पहुँचा देते हैं। कभी बाईं ओर कभी दाईं ओर गेंद उड़ती सी दिखाई देती है।

लेकिन दूसरी ओर के खिलाड़ी भी चिड़ियों की भांति उड़कर गेंद को बीच में ही रोक कर दूसरी ओर धावा बोल देते हैं। गोल तब होता है जब हाफ़ बैकों और फुल बैकों को पार कर और गोल कीपर को बेबस करके गेंद गोल के डंडों के बीच से निकल जाए।

३—क्रिकेट

इस खेल में ग्यारह ग्यारह खिलाड़ियों की दो टोलियाँ या टीमें होती हैं। इन में से एक एक टीम बारी बारी से खेलती है। यह खेल गेंद और बल्ले से खेला जाता है।

मैदान के बीचों बीच एक चटाई सी बिछी रहती है। इसके दोनों छोरों पर तीन तीन डंडे गड़े रहते हैं। इनको विकेट कहते हैं।

खेलने वाली टीम के दो खिलाड़ी एक एक विकेट के सामने हाथ में बल्ला लेकर खड़े हो जाते हैं। अब दूसरी टीम का कप्तान अपने साथियों को खड़ा करता है। एक खिलाड़ी विकेट के पीछे गेंद पकड़ने के लिए खड़ा किया जाता है। दो खिलाड़ी दोनों विकेटों के पास गेंद फेंकने के लिए खड़े होते हैं। बाकी आठ मैदान में इधर उधर खड़े हो जाते हैं। इनका काम भी गेंद पकड़ना है।

गेंद फेंकने वाला एक तरफ़ के विकेट के पास से सामने के विकेट को गिराने के लिए गेंद फेंकता है। खेलने वाली टीम का जो खिलाड़ी उस विकेट के पास रहता है, वह अपने बल्ले से गेंद को मार कर दूर कर देता है। अगर वह हटा न सके और गेंद जाकर विकेट से छू जाय, तो वह

नायडू दिलीपसिंह अमरनाथ

उमरीगर ध्यानचन्द हजारे
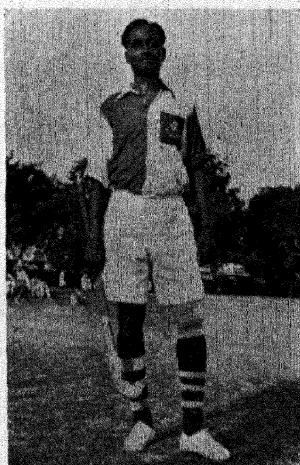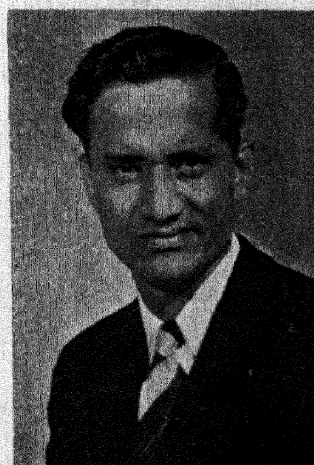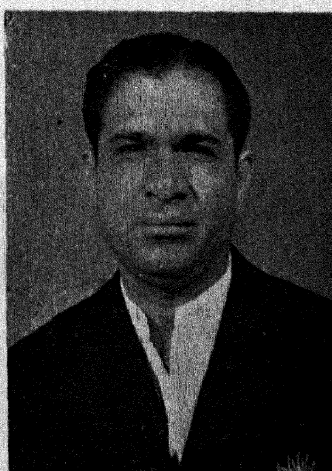
खिलाड़ी खेल से बाहर हो जाता है। इसे आउट होना कहते हैं। तब खेलने वाली टीम का कप्तान उसकी जगह बैठे हुए खिलाड़ियों में से एक को भेजता है।

गेंद मारते ही खेलने वाली टीम के दोनों खिलाड़ी दौड़कर एक दूसरे की जगह पर पहुँच जाते हैं। अगर एक बार दोनों खिलाड़ी एक दूसरे के विकेट तक पहुँच जाएं, तो एक दौड़ या रन माना जाता है। इसी प्रकार वे जितनी बार दौड़ सकें, उतने ही रन बनेंगे। वे लोग रन न बना सकें, इसमें दूसरी टीम वाले रुकावट डालते हैं। गेंद पर बल्ले की चोट पड़ते ही दूसरी टीम के खिलाड़ी लपक कर गेंद को पकड़ लेते हैं और विकेट से छुआने की कोशिश करते हैं। अगर दौड़ने वाला विकेट तक न पहुँचा हो और गेंद विकेट से छुआ दी जाय, तो वह खिलाड़ी आउट हो जाता है।

आउट करने का एक और ढंग भी है। गेंद बल्ले से मारने पर यदि उछल जाय और उसे दूसरी टीम का खिलाड़ी हाथ में लपक ले, तो खिलाड़ी आउट माना जाता है।

यदि खिलाड़ी गेंद को इतनी जोर से मारे कि वह मैदान के छोर तक पहुँच जाय, तो बिना दौड़े चार रन मान लिए जाते हैं। यदि गेंद मैदान से बाहर निकल जाए, तो छः रन मान लिए जाते हैं।

एक छोर से छः बार गेंद फेकने के बाद छः बार दूसरे छोर से

गेंद को विकेटों से छुआकर उन्हें गिरा देता है और चिल्लाता है 'आउट'।

खेल ठीक से खेला जा रहा है या नहीं इसकी देखरेख के लिए एक आदमी होता है। वह अम्पायर कहलाता है। अम्पायर ऐसा आदमी होता है जो क्रिकेट का अच्छा खिलाड़ी हो और खेल की बारीकियों को समझ सके। वह किसी भी टीम का पक्ष नहीं लेता।

क्रिकेट में इंग्लैंड, आस्ट्रेलिया, भारत, वेस्ट इंडीज़ और पाकिस्तान ने बहुत नाम किया है। भारत के लाला अमरनाथ, वीनू मनकड, हज़ारे, उमरीगर, मुश्ताक संसार के श्रेष्ठ खिलाड़ियों में माने जाते हैं। प्रिंस दिलीप सिंह ने क्रिकेट खेलने में नाम कमाया था और उनकी बड़ी धाक थी।

४—कबड्डी

फुटबाल, हाकी और क्रिकेट बाहर से आए हैं। इनके सामान पर बहुत पैसे खर्च होते हैं। खेल का मैदान भी बहुत रुपये और मेहनत से तैयार किया जाता है। कुछ देशी खेल ऐसे हैं जिनमें किसी सामान की ज़रूरत नहीं। फिर भी बड़े मज़े में खेले जा सकते हैं। उनमें आनन्द भी खूब आता है। कसरत भी हो जाती है। कबड्डी ऐसा ही खेल है।

चाँदनी रात में या शाम के हलके हलके प्रकाश में खिलाड़ी इकट्ठे होते हैं। एक बड़े से गोले में बीचोंबीच एक लकीर खींच दी जाती है। इस तरह दो पाले बन जाते हैं। एक एक टीम एक एक पाले में खड़ी हो जाती है।

अब एक टीम का एक खिलाड़ी 'कबड्डी कबड्डी' कहता हुआ दूसरी ओर के खिलाड़ियों में घुसता है। घुसने वाला कोशिश करता है कि सामने वाले किसी खिलाड़ी को छूकर बिना पकड़ाई दिए वापस अपने पाले में आ जाय। उधर दूसरी ओर वाले इस ताक में रहते हैं कि

खिलाड़ी की आँख बचाकर उसको पकड़ लें। बिना पकड़ाई दिए वह जिसे छू लेता है, वह आउट हो जाता है। यदि पकड़ा जाता है तो वह खुद आउट हो जाता है। जिस टीम के सब खिलाड़ी आउट हो जाते हैं, वह हार जाती है।

इस खेल में चौकन्नापन, फुर्ती और बल की बड़ी ज़रूरत है। कबड्डी बोलने वाला देखता रहता है कि उसको पकड़ने के लिए कैसे घेरा जा रहा है। उधर किसी न किसी को आउट किए बिना आना भी बेकार है। इसलिए वह ऐसा चलता है कि घिर न जाय और मौक़ा पाते ही शेर की तरह झपट कर किसी को छू ले और वापस चला आए।

उसके झपट्टा मारते ही सामने वाले खिलाड़ी तड़प कर उसको पकड़ लेते हैं। यदि उसकी साँस टूट गई, तो वह आउट हो गया। लेकिन अगर वह अपने को छुड़ा ले या पकड़ने वालों को खींच कर बीच की रेखा तक ले आए तो पकड़ने वाले आउट हो गए।

अपने पाले में लौटते हुए भी पूरी सावधानी रखनी पड़ती है। दूसरी टीम के फुर्तीले खिलाड़ी लौटते ही उसका पीछा करते हैं।

१९१८ के बाद इस खेल में बहुत से हेर फेर हुए हैं। १९३६ ई० में यह खेल बर्लिन के अन्तर्राष्ट्रीय खेलों के मौके पर खेला गया था।